जनवरी-मार्च, 2025

ISSN- 2455-1309

साहित्य भारती

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

उषा-दर्शन

- अज्ञेय

मैं ने कहा-
डूब, चाँद !
रात को सिहरने दे
कुइँयों को मरने दे
आक्षितिज तम फैल जाने दे !
पर तम
थमा और मुझी में जम गया।
मैं ने कहा-
उठ री लजीली भोर-रश्मि, सोयी
दुनिया में तुझे कोई
देखे मत, मेरे भीतर समा जा तू
चुपके से मेरी यह हिमाहत
नलिनी खिला जा तू ।

वो प्रगल्भा मानमयी
बावली-सी उठ सारी दुनिया में फैल गयी !

साहित्य भारती

प्रबन्ध सम्पादक
राजबहादुर

सम्पादक
डॉ. अमिता दुबे

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

साहित्य भारती

त्रैमासिक
वर्ष : 28, अंक : 1
जनवरी–मार्च, 2025

सम्पादकीय कार्यालय
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
6, महात्मा गांधी मार्ग,
हजरतगंज, लखनऊ–226 001
email : sahityabharti1976@gmail.com

पत्रिका प्राप्ति–स्थान
पुस्तक विक्रय–केन्द्र
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
6, महात्मा गांधी मार्ग,
हजरतगंज, लखनऊ–226 001
दूरभाष : 0522–2614470

साहित्य भारती शुल्क

एक प्रति : रु0 25.00, वार्षिक शुल्क : रु0 100.00
आजीवन शुल्क : रु0 3,000.00
सदस्यता शुल्क : निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के नाम से ड्राफ्ट/एटपार चेक द्वारा

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में लेखकों के विचार उनके अपने हैं,
उनके विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है।

सम्पादकीय

साहित्य की गौरवशाली परम्परा में यदि हम गोस्वामी तुलसीदास की पंक्तियाँ 'कीरति भनिति भूति भल सोई, सुरसरि सम सब कहँ हित होई' का स्मरण करते हैं तो प्रेमचन्द जी की यह उक्ति भी हमारा मार्गदर्शन करती है-

'जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें गति और शान्ति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं।'

प्रेमचन्द जी की बात के सापेक्ष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है-

'साहित्य के अन्तर्गत वह सारा वाङ्मय लिया जा सकता है जिसमें अर्थ-बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा चमत्कारपूर्ण अनुरंजन हो तथा जिसमें ऐसे वाङ्मय की विचारात्मक समीक्षा या व्याख्या हो।'

साहित्य के सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध है-

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं हैं।

साहित्य के बिना देश मुर्दा है तो क्या साहित्य समाज की, देश की धड़कन है। दिल धड़कता है तो मनुष्य के जिंदा रहने का सबूत होता है। देश और समाज में जीवंतता साहित्य से ही आती है। यद्यपि इतिहास सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों का आकलन करता है परन्तु सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों में श्वांस बनकर धड़कने का काम साहित्य के माध्यम से होता है। आज भी जब कहीं जलप्रवाह होता हैं तो जयशंकर प्रसाद जी की पंक्तियाँ स्मरण हो आती है-

हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगें नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था ऊपर हिम था,

एक तरल था एक सघन था,
एक तत्त्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।।

जड़ या चेतन के बीच का द्वन्द्व प्रत्येक समाज की नियति है। जब द्वन्द्व है तब दुविधा है जब दुविधा है तब 'नवनीत' का निकलना अवश्यम्भावी है जिसे साहित्य का प्रदेय कहा जा सकता है। साहित्यकार का दायित्व बहुत बड़ा है उसे समाज के आगे मशाल लेकर चलना है जिसमें विचारों की चिन्गारी प्रज्वलित होती है और ये ही विचार महायज्ञ का स्वरूप ले लेते हैं तब समाज अपनी-अपनी समिधा के साथ उस महायज्ञ में आहुति देता है तब कोई चिंतक कहता है-

साहित्य के साधकों ने अनुपम उधान को सदैव अपने हृदय के रक्त से सींचा है। यही कारण है कि इसका परिमल हमारे मुरझाते हुए हृदय को हर-भरा कर देते है।

संस्कृत की उक्त जो भर्तृहरि जी के माध्यम से सदा दोहरायी जाती है-

साहित्य-संगीत-कला विहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छ-विषाणहीनः।
तृण न खादन्नपि जीवमानस्तद्,
भागधेयं परम पशूनाम।।

के मर्म को समझते हुए हमें दृढ़ता से विचार करना चाहिए-साहित्य, संगीत और कला से रहित पुरुष बिना पूँछ और सींग के साक्षात् पशु ही है। वह बिना तृण खाये हुए जो जीता है यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

क्योंकि समाज नष्ट हो सकता है, राष्ट्र भी नष्ट हो सकता है किन्तु साहित्य का नाश कभी नहीं हो सकता। क्योंकि साहित्य शब्द-शब्द जोड़कर सृजित होता है। शब्द की मूल्यवान इकाई 'अक्षर' हैं और 'अक्षर' ब्रह्म है जिसका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं हो सकता इसलिए साहित्य कालजयी होता है और साहित्यकार की यश काया सदा विराजमान रहती है।

शब्द साधकों को अनन्त शुभकामनाएँ।

डॉ. अमिता दुबे
प्रधान सम्पादक
मो0- 9415551878

साहित्य भारती

अनुक्रम

आलेख

सांस्कृतिक चेतना के कवि पलटू दास	डॉ0 वंदना श्रीवास्तव	01
जननी सकल भरत सनमानी	डॉ0 कृष्णमणि चतुर्वेदी 'मैत्रेय'	06
जयशंकर प्रसाद के नाटक	हरीश कुमार शर्मा	11
अमृतलाल नागर की धरोहर	डॉ0 अनिल रस्तोगी	16
विद्यानिवास मिश्र के निबन्ध	डॉ0 विजय आनन्द मिश्र	18
दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें	डॉ0 शिव ओम अम्बर	28
व्यंग्य के पर्याय : हरिशंकर परसाई	बसन्त राघव	31
सांस्कृतिक कवि : केदारनाथ अग्रवाल	डॉ0 कृष्ण बिहारी लाल पाण्डेय	37
अज्ञेय और उनका काव्य	डॉ0 सुरेश उजाला	42
सोहनलाल द्विवेदी का बाल साहित्य	डॉ0 सुरेन्द्र विक्रम	45
कृष्ण और बसंत	सुनीता सिंह	51

कहानी

मस्तेपुर की पूजा	डॉ0 अनिल मिश्र	59
ढुकनी	श्यामल बिहारी महतो	65
लड़ाई	विनय दास	73
निमंत्रण	कृष्ण कुमार 'कनक'	80
सेतुबंध	डॉ0 संगीता सक्सेना	90
यादगार सफर	राजेश शुक्ल	96

कविता

ढूँढ रहा	मिकी पासी	98
प्रतीक्षा	ज्ञानेन्द्र पाण्डेय	99
माँ का चेहरा	मनोज शाह 'मानस'	100
हार जाने का सुख, बस यूँ ही	डॉ0 रश्मि श्रीवास्तव	101

मैं फकीर, क्या पता,	जय प्रकाश त्रिपाठी	103
उम्मीद, घाव हरे,		
उच्छ्वास	प्रकाश गोधवानी	106
विचार		
साहित्य के सामाजिक सरोकार	ओम प्रकाश मिश्र	107
साहित्य में मौलिकता	डॉ0 बद्री प्रकाश पंचोली	110
'रंग' के रंग	त्रिवेणी प्रसाद दुबे 'मनीष'	112
स्वस्थ पर्यावरण सुरक्षित जीवन	दिनेश कुमार तिवारी	115
अन्य भारतीय भाषाओं से		
वीर सिंह का साहित्य चिंतन	नव संगीत सिंह	119
निखट्टू	मूल- डॉ. सदानंद देशमुख भाव0 भगवान वैद्य 'प्रखर'	122
लोक साहित्य		
लोक जीवन में गोदना	डॉ. मन्नू राय	133
लोकमाता आहिल्याबाई होलकर	डॉ. राकेश चन्द्र गुप्त 'विक्रमी'	136
संस्थान समाचार		139

रचनाकारों से

- *'साहित्य भारती' त्रैमासिक के लिए साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाएँ, लेख, कहानी, कविता आदि आमंत्रित हैं।*
- *रचनाएँ स्पष्ट, हस्तलिपि में अथवा टंकित कागज के एक ओर हों, तथा रचनाकार का सम्पर्क सूत्र यथा पूरा पता, मोबाइल अथवा फोन नम्बर, ई-मेल अवश्य लिखें।*
- *अस्वीकृत रचनाएँ वापस नहीं की जातीं। अतः एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।*
- *साहित्य भारती में प्रकाशित रचना के मानदेय से पत्रिका की एक वर्ष की सदस्यता दी जाती है। अतः वर्ष में सामान्यतः एक ही रचना प्रकाशित की जाती है।*
- *रचना प्रकाशित होने पर लेखकीय प्रति प्रेषित की जाती है।*
- *प्रकाशित रचना की मौलिकता का सम्पूर्ण दायित्व रचनाकार का होगा।*
- *रचना के साथ अपना बैंक खाते में नाम (अंग्रेजी के बड़े अक्षरों में), निरस्त चेक/बैंक विवरण IFSC कोड सहित भी भेजने का कष्ट करें।*

- सम्पादक

सांस्कृतिक चेतना के कवि पलटू दास

➲ डॉ0 वन्दना श्रीवास्तव

संत कबीर दास के साथ उत्तर प्रदेश में जिस निर्गुण संत परंपरा का आरंभ हुआ उसमें समय व परिस्थिति के साथ परिवर्तन होते रहे हैं। संत साहित्य को समृद्ध करने में उत्तर प्रदेश के संतों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में विशेष रूप से संतों का प्रभाव शिवनारायणी संप्रदाय, अवध में आपा पंथ, पलटू दास का आखाड़ा, साईदाता संप्रदाय, प्रयाग में मलूक पंथ आदि प्रमुख थे। भुड़कुड़ा के संतों की शिष्य परंपरा भुड़कुड़ा से बाहर निकल कर अनेक स्थानों में फैली और इन शिष्यों ने अपनी-अपनी गद्दियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थापित कीं। यथा-गुलाल साहब के शिष्यों की चितबड़ा, बलिया की परंपरा के देवकी नंदन महाराज, भीखा साहब के शिष्य गोविंद साहब की अहिरौली (अयोध्या) गद्दी, गोविंद साहब के शिष्य पलटू साहब का अखाड़ा (अयोध्या) की संत परंपरा आदि।

पलटू दास उत्तर मध्य काल के अन्तिम प्रमुख संत माने जाते हैं। उनके संत स्वभाव, मानवीयता व उदारता से प्रसन्न होकर तत्कालीन नवाब शुजाऊद्दौला ने गोपालपुर, सिड़हीर आदि चौदह गाँव उन्हें दिये तो पलटू दास की प्रतिक्रिया थी कि -

आकाश पाताल मृत्यु लोक चौदहों भुवन,
दास पलटू कहै तहां होवे अमल मेरा।
रामचन्द्र की चाकरी कबहुँ न आवै टूट,
रोटी कपड़ा ना घटे पलटू दास अटूट।।

पलटू साहब बेपरवाह फकीर थे। ऐसा संत यदि नवाब का आग्रह ठुकरा दे तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। उनके लिए तो चाहे दिल्ली का तख्त हो या आगरा की गद्दी सब व्यर्थ है। वे अपने मन के राजा हैं और उनका हृदय ही उनका सिंहासन है -

"हम तो बेपरवाही मियाँ वे,
हमको अब का चाहीं।
दिल दिल्ली मन तख्त आगरा,
चलै सबर दे माहीं।"

पलटू दास के अखाड़े के महंत रहे आचार्य प्रभुदास जी ने उपलब्ध बानियों के आधार पर उनकी वाणियों का संकलन 'पलटू साहब की शब्दावली' नाम से किया है जो 14 प्रकरणों में विभक्त है। खेद का विषय है कि अब इसकी एक मात्र प्रति पलटू दास के अखाड़े में ही उपलब्ध है जो जर्जर अवस्था में है। वहाँ वर्तमान में साधना कर रहे साधक राम प्रसाद दास जी के माध्यम से मुझे इस पुस्तक को पढ़ने का अवसर मिला आई.सी.एस.एस.आर. की शोध परियोजना 'उत्तर प्रदेश के संत कवि और उनके काव्य का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन' हेतु उनके इस सहयोग के लिए और आई.सी.एस.एस.आर. को यह

परियोजना स्वीकृत करने के लिए मैं आभार व्यक्त करती हूँ। इस अखाड़े के वर्तमान व्यवस्थापक उसका पुनः मुद्रण करवाना चाहते हैं किन्तु अर्थाभाव इस पुनीत कार्य के आड़े आ रहा है। वेलवेडियर प्रेस प्रयाग से पलटू दास की कविताओं का संग्रह तीन भागों में 'पलटू साहब की बानी' नाम से प्रकाशित हुआ है। 1000 पदों के इस संग्रह में कुण्डलिया, रेख़ता, झूलना, अरिल, कवित्त, सवैया सम्मिलित है। वियोगी हरि 'आत्मकर्ष' नाम का एक ग्रंथ पलटू दास द्वारा लिखा जाना मानते हैं। किन्तु यह पुस्तक मुझे बहुत प्रयास के बाद भी प्राप्त नहीं हो सकी।

उत्सव, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, व्यवहार, संस्कार, भोजन, वस्त्र, आभूषण, गीत, छन्द, भाषा इन सबसे मिलकर संस्कृति का निर्माण होता है। अतः सायास व अनायास दोनों ही प्रकार से ये संत लोक तक अपनी बात पहुँचाने के लिए लोक संस्कृति का आश्रय लेते हैं। पलटू दास की बानियों से स्पष्ट है कि लोक कभी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होता। संस्कृति वह आधार है जिसकी नींव पर उनका काव्य भवन खड़ा है। भारतीय संस्कृति समन्वय की संस्कृति है। यह समन्वय पलटू दास में भी दिखायी देता है। कबीर से अनेक स्थलों पर समानता रखने वाले पलटू कबीर से इस अर्थ में भिन्न हो जाते हैं कि कबीर सर्वदा सगुण का खण्डन करते हैं, किन्तु पलटू निर्गुण ब्रह्म को तो स्वीकार करते हैं किन्तु सगुण का हमेशा खंडन नहीं करते। वे कई स्थलों पर सगुण व निर्गुण का समन्वय करते भी दिखायी देते हैं। उन्होंने आरती के पाँच पद लिखे हैं जिनमें दो पद भगवान राम की आरती के हैं। पलटू अखाड़े में वर्तमान समय में साधना कर रहे राम प्रसाद जी बताते हैं कि राधा स्वामी सत्संग में भी पलटू साहब द्वारा रचित आरती गायी जाती है और इन्हें अत्यन्त सम्मान से देखा जाता है।

पलटू दास के अखाड़े में एक मंदिर बना हुआ है जिसमें राम जानकी, लक्ष्मण, हनुमान जी की प्रतिमाएँ और जगन्नाथ स्वामी व गरुड़ देव के चित्र हैं। राम प्रसाद जी बताते हैं राम दरबार की मूर्ति पहले हॉल में थी किन्तु तीन पीढ़ी पहले के महंत ने इसे इंदिर में स्थापित किया। यह इस अखाड़े की समन्वयात्मक दृष्टि का ही परिचायक है।

भारत एक उत्सव प्रधान देश है। उत्तर प्रदेश के त्योहारों में होली व दीपावली सर्वप्रमुख हैं। निर्गुण संतों ने होली का वर्णन आध्यात्मिक होली के रूप में किया है। पलटू साहब भी होली के माध्यम से अपनी साधना को व्यक्त करते हुए कहते हैं -

"होरी होरी हो रावल होरी।
प्रेम को रंग चुवाइ कै सजनी पिया को वै बोरी।
ज्ञान अबीर लिहे दोउ हाथे, सुरति निरति पिचकोरी।
घूँघट को पट खोलि के खेलों अंचल की छोरी।।
पलटू दास शिव-शक्ति, चिरंजीवी कीव रहै यह जोरी।।"

इसी प्रकार दीपावली का त्योहार भी उत्तर प्रदेश के प्रमुख त्योहारों में है जिसका वर्णन संतों ने किया है। दीपावली एक त्योहार नहीं त्योहारों की शृंखला है। धनतेरस से लेकर भैयादूज तक के त्योहारों का वर्णन पलटू दास ने किया है -

"फिरि फिरि नहीं दिवारी दियना लीजै बार।
दियना लीजै बार महल में ह्वै उंजियारा।
उदय होय ससि भान अमावस मिटै अँधियारा।
ज्ञान होय परगास कुमति जूआ में हारै।
दुतिया खंडन करै एक को बैठि बिचारै।
रचि रचि तीसौ सखी अभूषन प्रेम बनाई।
गोबरधन मन पूजि बहुरि सब घर को आई।...

ये उत्सव भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। जीवन में उल्लास बनाए रखने के साथ ही सामाजिक व पारिवारिक सौहार्द के लिये भी ये उत्सव आवश्यक है। हर पर्व, त्योहार या उत्सव से जुड़ी कुछ खास परम्पराएँ होती हैं। उत्सवों के

अवसर पर भोज का आयोजन किया जाता है। हर पर्व व त्योहार की अपनी भोज्य सामग्री, अपने पकवान होते हैं। पर्वों पर आयोजित यह भोज भी अपने आप में एक उत्सव ही होते हैं। हलवा, खीर, मालपूआ, बताशा आदि भोज तथा व्रत त्योहार में विशेष रूप से बनने वाले व्यंजन हैं जिनका वर्णन पलटू साहब के साहित्य में मिलता है। घर में कोई शुभ कार्य होने पर या विशेष सम्मानित अथवा प्रिय व्यक्ति के लिये विशेष भोजन बनाना भारतीय परंपरा है। पलटू इसका वर्णन करते हुए कहते हैं -

"नये-नये कलसन में बाम्हन जल भरत रोज,
नये-नये बासन में भोजन बनाई है।
दाल-चावल बीनि-बीनि करते अभिनिया हम,
छत्तिस व्यंजन षट रस भली-भाँति से बनाई है।
सोने के थार में परोसि के हम आगे धरे,
एक सीत अपने हाथ कबहुँ ना पाई है..."

साधारण भोजन जो उस समय उत्तर प्रदेश के जन-सामान्य में प्रचलित था वह भी पलटू की बानियों में दिखायी देता है। जैसे दाल, भात, रोटी पूर्वी उत्तर प्रदेश का मुख्य भोजन है। पलटू दास जी अपनी 'गारी' में इसका वर्णन करते हैं -

"अनुभव चौक प्रेम की पतरी,
भाव भक्ति से बनाई कि हांजी।
तत्तु अवटि कै दाल-भात भा,
निर्गुन रोटिया पोआई कि हांजी।।"

छत्तीस व्यंजन भारतीय परंपरा में स्वीकार किए गये हैं। पलटू भी छत्तीस व्यंजन की बात करते हैं-'छत्तीस व्यंजन रहै सबरसे' किन्तु ये भी बताते हैं कि कई बार ये छत्तीस व्यंजन सेहत के लिये हानिकर भी होते हैं। पलटू कहते हैं-

"गिरहस्थी में जब रहे पेट को रहे हैरान।
..साग मिल्यौ बिनु लोन रही तब ऐसी धारा।
आये हरि की सरन बहुत सुख तब से पाई।
लुचुई चारो जून खांड और खोवा खाई।
लेड्डु पेड़ा बहुत सेंत कोउ खाता नाहीं।
जलेबी चीनी कन्द भरा है घर में माहीं।...."

समाज में मदिरा सेवन हमेशा से प्रचलित है पलटू इससे अपरिचित नहीं हैं। ये ऐसा नशा है जिसके बिना मन व्याकुल रहता है। उसे कहीं चैन नहीं आता। प्रीतम से प्रेम भी ऐसा ही नशा है। वे अपनी कुण्डलियाँ में कहते हैं-

"एकर दारू यही मिलै जौं प्रीतम प्यास।"

भोजन के संदर्भ में वे कहते हैं कि 'भोजन आतुरी कीजिये' किन्तु अनमेल भोजन व्यर्थ है। मन की अन्यमनस्कता अथवा उतावली भोजन को बेस्वाद कर सकती है। अबोध आत्मा के लिए वे अनमेल भोजन का वर्णन करते हैं-"हींग लगाइस भात में भूल गई है नार।"

अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। अतिथि का आगमन हर्ष का संचार करता है। पैर दबाकर अतिथि के पग पखारना, गाय के गोबर से चौका लीपना, भोजन करवाना, आदि अतिथि सत्कार का अंग है। पलटू अतिथि का सत्कार करते हुए कहते हैं-

"...गोड़ दाबि मैं देऊँ चरन वै सेवा करिहौं।
चौका देइहौं लीपि बहुरि मैं पानी भरिहौं।।
पैड़ा देऊँ बहुरि सबन कै जूठ उठावों।।..."

भारतीय संस्कृति में सोलह संस्कार माने जाते हैं, जो गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक अर्थात मनुष्य के जीवनारम्भ से लेकर मृत्यु तक किए जाते हैं। सभी संस्कारों में विवाह संस्कार एक प्रमुख संस्कार है जिसका वर्णन प्रायः सभी संतों ने किया है। पलटू साहब भी हिन्दू विवाह संस्कार की रीति वर यात्रा, मंगल गान, माड़ो छाना, पवित्र, जल से कलश भराना, अग्नि के चारों ओर भाँवर लेना, कोहबर आदि का वर्णन अपनी आध्यात्मिक उक्तियों में करते हैं-

"साधु संत मिलि चले हैं बराती यम से नाता तोरी।

पाँच सभी मिलि मंगल गावै मातु पिता की चोरी।
मन खंभा तन माड़ो छाया प्रेम के क्लस धरो री।
ब्रह्म अग्नि लै आहुति दीन्हों चौरासी मुख मोरी।
कोहबर जात कंथ उठि बोले अंक में अंक मिलो री।।...
"

समाज में विभिन्न अवसरों, वर्गों, व्यवसायों आदि के आधार पर वेशभूषा, पहनावा आदि में अंतर होता है। साथ ही क्षेत्र के आधार पर भी पहनावे में अंतर आता है। पलटू की निरीक्षण शक्ति प्रबल है। योगी की मृगछाला, युवती की लाल चूनर, गृहस्थों व योगियों दोनों में समान रूप से प्रयुक्त होने वाली गुदरी सभी पलटू की बानियों में स्थान पाते हैं-

".....हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल।
जोगिया के मिर्गछलवा, हो आपन पट चीर।
दूनी कै सियब गुदरिया हो, होइ जावै फकीर।।..."

इसी प्रकार लहंगा, पचरंग जोड़ा, मुस्लिम युवतियों का बुरका आदि का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है।

आभूषण, शृंगार आदि का वर्णन भी पलटू की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। भारतीय संस्कृति में सोलह शृंगारों की गणना की जाती है। पलटू कहते हैं-

"सोरहो सिंगार बनाइ कै जी,
झमकि झमकि चली प्यारी।"

घँघरा अंगिया पहन कर, घुँघरू, नथ, बाजूबंद, काजल, सिंदूर आदि से सज-धजकर अपने प्रिय को रिझाने के लिए तैयार नायिका का वर्णन करते हुए पलटू दास कहते हैं-

"...ज्ञान ध्यान कै घुंघुर बांधौ,
लटकि लटकि गुन गाऊँगी।
अंगिया सुमति प्रेम की सारी,
नबन नथ लटकाऊँगी।
घँघरा पहिरि बिबेक घेरिकै,
अंजन शील बनाऊँगी।
बाजूबंद आनंद पहिरि कै,
शब्द से मांग भराऊँगी।।....."

पलटू साहब के काव्य में प्रयुक्त तेल फुलेल, पैरों में आलता लगाना, काजल, सिंदूर आदि के वर्णन शृंगार प्रसाधनों के वर्णन के कुछ उदाहरण हैं।

मनोरंजन और क्रीड़ा के विविध रूप भिन्न-भिन्न कालों में प्रचलित रहे हैं। शिकार खेलने की परंपरा भारत में प्राचीनकाल से रही है। पलटू साहब भी इसका वर्णन करते हैं-'जंगल-जंगल में फिरों घर में रहे सिकार'। चौपड़ का खेल प्राचीनकाल से ही भारत में खेला जाता रहा है। 84 खानों वाला यह खेल पासे से खेला जाता है। पलटू इस खेल का वर्णन ईश्वर प्राप्ति के अर्थ में करते हैं-

"जो मैं हारौं राम की, जो जीतौं तौ राम।...
पासा फेंकौ ज्ञान, नारद बिस्वास चलावौं।
चौरासी घर फिरै अड़ी, पौबारह नावौं।
कच्ची मारौं पाँच रैनि दिन सत्रह भाखौं।"

मुसलमानों के आगमन के साथ भारत आया खेल चौगान यहाँ के मुस्लिम शासकों में काफी लोकप्रिय रहा। इस खतरनाक खेल में बजने वाले ढोल एवं इस खेल की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए पलटू कहते हैं-

"ज्ञान का ढोल बजाय चौगान में,
कफन को बांधि मैदान चढ़ना।"

तत्कालीन उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्सों में प्रचलित वाद्य यंत्रों का प्रयोग भी पलटू साहब विभिन्न संदर्भों में करते हैं। जैसे 'जेकरे बाजें तूर तहाँ का डफ़्फ़ बजावें', 'लीजे डफ़्फ़ बजाय सुभग मानुष तन पाया।', 'नाचौ घूँघट खोलि ज्ञान का ढोल बजाओ', 'ज्ञान का ढोल बजाओ' आदि देखे जा सकते हैं। यहाँ युद्ध के साजो समान, उत्तर प्रदेश के लोकजीवन में पायी जाने वाली धातुएँ, यहाँ के पेड़-पौधे,

पशु-पक्षी, कीट-पतंगे सभी पलटू साहब के काव्य में स्थान पाते हैं।

भूत प्रेतों पर विश्वास लोक विश्वास का अंग है। टोना-टोटका, भूत भागने के अनेक तरीके लोक में प्रचलित हैं। टोटका के कारण अपनी सुध-बुध, भूख-प्यास सब भूल जाने का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

"...तन की सुध रहि जात जाय मन अँतै अटका।
बिसरी भूख पियास किया सतगुरु ने टोटका।
दतुइन करी न जाय नहीं अब जाय नहाई।
बैठा उठा न जाय फिरी अब नाम दुहाई।..."

इसी प्रकार-'खाला कै घर नाहीं', 'कौड़ी नहीं संग कारोरनि जोरि कै। अरे हाँ पलटू गये हैं राजा रंक लंगोटी छोरि कै', 'लरिका रहै बगल में तेरे, सहर ढोल दै छानी।', कफ़्फ़न बांधि कै खेंचो सुरति कमान', 'सब अंधरन के बीच एक है काना राजा', नाचन को ढंग नाहिं है कहती आँगन टेढ़', 'निमक-हरामी आदि कहावतें उनकी बानियों में स्थान-स्थान पर मिलती हैं।

पलटू साहब ने अपने समय में प्रचलित सभी प्रमुख छंदों यथा कुण्डलिया, रेख़ता, साखी, सबद, अरिल, कवित्त, सवैया के साथ ही लोक छंदों बारहमासा एवं झूलना का भी प्रयोग किया है। अपनी कुण्डलिया एवं रेख़ता के लिए प्रसिद्ध पलटू जब लोकप्रिय छंद झूलना लिखते हैं तो उसके सभी प्रकारों पर दृष्टि डालते हैं। झूलना कहीं 26 मात्राओं का तो कहीं 37 मात्राओं का माना गया है। झूलना के अंत में क्रमशः गुरु और लघु होते हैं तथा अंत मगण से होता है। परशुराम चतुर्वेदी, बताते हैं कि साहित्य जगत में एक झूलना और भी रचा जाता है जिसमें चार के स्थान पर दो ही पंक्तियाँ होती हैं। पलटू दास ने सभी प्रकार के झूलना लिखे हैं। उनके द्वारा लिखे गये झूलना की संख्या लगभग 68 है।

बारहमासा उत्तर प्रदेश व बिहार का प्रमुख लोकछंद है जो वर्ष के बारह महीनों को आधार बनाकर लिखा जाता है। बारहमासा साहित्य की एक ऐसी विधा है जो प्राचीनकाल से ही रची जा रही है। संत साहित्य में भी प्रायः सभी संतों ने बारहमासे रचे हैं। पलटू साहब भी इस परंपरा का पालन करते हैं। आषाढ़ मास से आरंभ करते हुए पलटू ज्येष्ठ मास पर अपने शृंगारिक बारहमासे का समापन करते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में विवाह आदि शुभ प्रसंगों में 'गाली' गायी जाने की परंपरा है। पलटू साहब इन गारियों से परिचित हैं। वे भी इस लोक परंपरा का पालन करते हैं और 'शब्द गारी' लिखते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"हमरे समधिन देइ भोली हो, अब सकस भई वाली चोली हो।
रसिया से उठि बोली हो, उन्ह चोली को बन्द खोली हो।।
सैज समै नहिं डोली हो, उन्ह तोरा गैब खटोली हो।
पान दिहा एक ढ़ोली हो, वह संग न छोडै पोली हो।।
उलटि पलटि हम तौली हो, वाके लगी प्रेम की गोली हो।
पलटू दास चित छोली हो, यह गारी रतन अमोली हो।।"

निःसन्देह पलटू दास की बानियाँ लोक संस्कृति छटा से भरपूर हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश की संस्कृति, वहाँ की मान्यतायें, भाषा, छंद सभी पलटू के काव्य को आधार देते हैं। उनका सम्पूर्ण काव्य लोक-चेतना से युक्त लोकमंगल का काव्य है। सांस्कृतिक विरासत को संभालने, सुरक्षित रखने और उसे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तरित करने में ये काव्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उनकी स्वानुभूति में ही विश्वानुभूति है। समानता, सह-अस्तित्व, समरसता और बंधुत्व का प्रसार इनका उद्देश्य है।

श्री जे.एन.पी.जी. कॉलेज
लखनऊ
मो0 7754929451

जननी सकल भरत सनमानी

➲ डॉ. कृष्णमणि चतुर्वेदी 'मैत्रेय'

भारतीय मनीषा की उदात्त परंपरा अनादिकाल से ज्ञान-विज्ञान के अनन्त सागर का मंथन करते हुये 'जननी की महिमा' का प्रतिपादन करती रही है। उपनिषद् में 'मातृदेवो भवः' कहा गया जिसे लक्ष्य करके यज्ञ ने युधिष्ठिर से पूछा-"पृथ्वी से भारी क्या है ?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि "माता का गौरव पृथ्वी से अधिक है।"..... माता गुरुतरा भूमे। 'दुर्गा सप्तशती' में कहा गया है कि-'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। अर्थात् संसार में कुपुत्र होना सम्भव है किन्तु कहीं भी कुमाता नहीं होती। मातृसमं तीर्थम्। माता के सदृश कोई तीर्थ नहीं, इतना ही नहीं लंका में स्वयं परब्रह्म श्रीराम यह उद्घोषणा करते हैं कि जननी एवं जन्मभूमि का महत्त्व स्वर्ग से भी बढ़कर होता है-

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

भरत :

जब किसी कृत्य से हृदय को चोट लगती है तब पुनः जुड़ाव आसान नहीं होता। माता कैकेयी ने जो कुचक्र रचा उसे देखकर भरत जी जीवन भर के लिये उनसे रूठ गये। चित्रकूट की सभा में वे यहाँ तक कह पड़े-"कैकेयी की कुमति ऐसी है जिसका सारा संसार साक्षी है।" जननी कुमति जगतु सबु साखी। भरत जी की दृष्टि में कैकेयी सारे अनर्थ की जड़, कुबुद्धि एवं पापी है। वे कदम-कदम पर उनकी भर्त्सना करते हैं और उनके लिये आदर्श भाव का परित्याग कर देते हैं।

माता की तीव्र भर्त्सना करने वाले भरत जी अपने समाज के साथ शृंगवेरपुर पहुँचे। संध्या हो गयी अतः सबने वहीं डेरा डाला। भरत एवं शत्रुघ्न ने माता कौसल्या के पास जाकर कोमल मधुर वचनों से उन्हें सत्कृत किया और मार्ग जनित श्रम दूर करने हेतु उनका पैर दबाने लगे। भरत जी अथाह भक्ति भण्डार हैं, वे शान्त भाव से सभी माताओं की सेवा करते हैं-

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी।
जननीं सकल भरत सनमानी।।

'जननी सकल' में कैकेयी भी आती हैं जिन्हें अन्य माताओं की तरह भरत जी ने सम्मान तो दिया लेकिन चरण कदाचित् नहीं दबाया। जो भरत जीवन भर कैकेयी से क्षुब्ध रहे वे श्रीराम के इस आदेश से नतमस्तक होकर मातृसत्ता को महिमामण्डित किये होंगे-सेएहु मातु सकल सम जानी। हो सकता है कि इसीलिये भरत जी ने वहाँ सेवाधारम निभाया। वैसे यह भी प्रमाण मिलता है कि भरत जी ने पूरे जीवन भर कैकेयी से बात नहीं की-

कैकेयी जौलौं जियति रही।
तौलौं बात मातुसो मुँह भरि भरत न भूल कही।। 1।।
मानी राम अधिक जननीतें जननिहु गँस न गही।

सीय-लखन रिपुदवन राम रुख, लखि सबकी निबही।।2।।
लोक-बेद-मरजाद दोष-गुन-गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम-सनेह सही।। 3।।

भरत प्रेम-समाधि के योगी हैं, उन्हें जो ठेस लगी है उसके चलते वे कैकेयी से दूर रहना चाहते हैं। अगली चौपाई पर ध्यान देने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है; भरत ने ऐसी युक्ति निकाली जिससे 'सेएहु मातु सकल सम जानी' का पालन भी हो गया और उन्हें कैकेयी से मुख भर बात भी नहीं करनी पड़ी। 'पादसेवन' करते तो वार्ता का क्रम जारी हो सकता था अतः वे माता कौसल्या की सेवा में लग गये और शत्रुघ्न को कैकेयी की तरफ लगा दिया-

भाइहि सौंपि मातु सेवकाई।

लोक-साहित्य के अनुसार भरत राम के बिना जी नहीं सकते। वे माता कौसल्या से अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं। दृश्य अयोध्या का है, जहाँ भरत निश्चित करते हैं कि भोर होते ही राम को मनाने जायेंगे।

जननी हम न जियब बिनु रामा।
राम लखन का बन मा पठऊ पिता गये सुरधामा।।
हम तोहरी कुटिया तजि देबै जेवना भये बिहाना।
होत भोर हमहू बन जाबै, आये अवध न कामा।।

यदि राम राजा बनकर अन्य किसी विधान से रावण का संहार करते तो कदाचित् रामायण जैसा मंगलदायी महाकाव्य नहीं बन पाता। अब इसे कैकेयी का योगदान माना जाय अथवा विधि का विधान ? कैकेयी के कार्य की सराहना किसी ने भी नहीं की जिसका सप्रमाण उद्धरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। द्रष्टव्य है श्रीराम से लेकर अन्य विभूतियों की अभिव्यक्ति-

कैकेयी दोषी थी अथवा निर्दोष?

भरद्वाज जी के कथनानुसार कैकेयी ने जो करतूत की उसके पीछे सरस्वती जी की अहम् भूमिका थी-"तात कैकेइहिं दोसु नहिं गई गिरा मति धूति।" जब तक कैकेयी अपने विवेक में थी तब तक वे मंथरा के बहकावे में नहीं आई। समाचार सुनकर वे प्रसन्नता व्यक्त करती हैं कि यदि कल राम का तिलक होगा तो वे मंथरा को मुहमाँगा पारितोषिक प्रदान करेंगी। दासी को डाँटकर पूछती हैं-"राम मुझे प्राणों से प्रिय हैं फिर उनके तिलक में तुझे क्षोभ क्यों?"

प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें।
तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरे।।

स्वयं राघवेन्द्र सरकार के मुख से यह उद्घोष हो चुका है कि माता कैकेयी को वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरु एवं साधु-सभा का सेवन नहीं किया-

दोषु देहिं जननिहि जड़ तेई।
जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।।

फिर भी एक नहीं कई लोगों ने दोषारोपण किया। राम आधारहीन वक्तव्य नहीं दे सकते, जगत में उनकी प्रतिष्ठा 'सत्यसंध' के रूप में की जाती है। वे कटु अभिव्यक्ति में भी रुचि नहीं रखते हैं, तो क्या उनके कथनानुसार कैकेयी निर्दोष थीं? राम गुरु एवं साधु सभा दोनों का सेवन करते हैं- गुर पद कमल पलोटत प्रीते। तथा-

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान।।

गुरु एवं साधु सभा का सेवन करने वाले राम कैकेयी को दोषी मानते हुये यह संभावना व्यक्त करते हैं कि 'कहीं वह महाराज दशरथ का प्राण न ले बीते और कौशल्या तथा सुमित्रा को जहर देकर मार न डालें। कैकेयी के स्वभाव एवं खोटे कर्म की चर्चा करते हुये वे कहते हैं-

क्षुद्रकर्मा हि कैकेयी द्वेषादन्यायमाचरेत्।
परिदद्याद्धि धर्मज्ञ गरं ते मम मातरम्।।

रघुनाथ जी के इस कथन से सिद्ध होता है कि कैकेयी निर्दोष नहीं है भले ही सुधारवादी उनके पक्ष में चिल्लाते रहें। यही नहीं भरत का राजा बनाने जैसी योजना

की नींव कैकेयी के विवाहकाल में ही पड़ गई थी। महारानी का विवाह इसी शर्त पर किया गया कि उनका पुत्र ही राजगद्दी का अधिकारी होगा। इसका प्रमाण भी श्रीराम के कथन से प्रस्फुटित होता है-

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्कमनुत्तमम्।।

कैकेयी की कुटिलता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है? विवाहकालिक शर्त को दृष्टि में रखकर ही उसने भरत के लिये राजगद्दी माँगी। यदि वे परमार्थ की दृष्टि से राम को बन पठाईं तो भरत को किस अभिप्राय के तहत राजा बनाने पर तुल गईं? भक्त शिरोमणि गो. तुलसीदास इस बारे में स्पष्ट राय प्रस्तुत करते हैं। पात्रों के कथोपकथन से हटकर यदि कवि का मत देखा जाय तो बात आइने की तरह साफ हो जाती है। कोपभवन में जब कैकेयी रोषपूर्वक उठ खड़ी हुई तब उनके लिये 'कुटिल' शब्द का प्रयोग किया गया-

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी।
मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी।।

अयोध्या के नर-नारी कैकेयी की कठोर निंदा करते हैं-"कुटिल, कठोर, कुबुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंश रूपी वन के लिये आग बन गई"-

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी।
भइ रघुबंस बेनु बन आगी।।

इतना ही नहीं नगरवासी कैकेयी की कुचाल से इतना क्षुब्ध हुये कि सभी उसे करोड़ों गालियाँ देने लगे-

एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं।
देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं।।

इसके अतिरिक्त कुटिल कठोर मुदित मन बरनी।... मोर अभागु मातु कुटिलाई।... कुटिल रानि पछितानि अघाई। आदि अर्द्धाली से भी कैकेयी की कुटिलता सिद्ध होती है। जब मंथरा सिखा-पढ़ाकर उन्हें दक्ष कर रही थी। उस समय रूपक द्वारा गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि 'विपत्ति (कलह) बीज है, दासी (मंथरा) वर्षा ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि उस बीज को बोने के लिये जमीन हो गयी; उसमें कपट रूपी जल पाकर अंकुर फूट निकला; दोनों वरदान उस अंकुर के दो पत्ते हैं जिसका अंत में दुःख रूपी फल होगा।' यही कैकेयी-करतूति की समीक्षा है।

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी।
भुँइ भइ कुमति कैकेई केरी।
पाइ कपट जलु अंकुर जामा।
बर दोउ दल दुख फल परिनामा।।

रघुवंश की बड़ी बूढ़ी नारियाँ तथा ब्राह्मणों की पत्नियाँ रानी को समझाने का भरसक प्रयास करती हैं। अपने निर्णय पर अड़ी कैकेयी किसी का सम्मान नहीं करना चाहती, कारण-'कुटिल प्रबोधी कूबरी।' उस समय रानी ने सबको ऐसे घूरा जैसे भूखी बाघिनि हरिनियों को देखती हो। असाध्य रोग की भाँति व्यर्थ जानकर सभी कैकेयी को मंदबुद्धि एवं अभागिनी कहकर चल देती हैं-

ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी।
चलीं कहत मतिमंद अभागी।।

महाराज दशरथ को 'धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। विरुद उनकी दूरदर्शिता के गुण को भी दर्शाता है। इन गुणों के साथ-साथ वे भविष्यद्रष्टा भी थे जिन्हें अपने चारों पुत्रों पर दृढ़ विश्वास था। कैकेयी का अपराध अक्षम्य है। महाराज की आत्मा चीत्कार कर उठी; भविष्य को रेखांकित करते हुये उन्होंने कैकेयी को जो अभिशाप दिया उससे भी रानी का दोष सिद्ध होता है।

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई।
सब गुन धाम राम प्रभुताई।।
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई।
होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई।।
तोर कलंकु मोर पछिताऊ।

मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ।।
फिरि पछितैहसि अंत अभागी।
मारसि गाइ नहारू लागी।।

बाल्मीकि रामायण में उन्होंने कैकेयी को धर्म त्याग करने वाली-'त्यक्तधर्मा' नारी कहकर पूर्ण मनोयोग से त्याग दिया-

अनुगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निं पर्यणयं च यत्।
अनुजानामि तत् सर्वमस्मिल्लोके परत्र च।।

अर्थात् मैंने जो तेरा पाणिग्रहण किया है और तुम्हारे साथ अग्नि की परिक्रमा की है, तेरे साथ का वह सारा सम्बन्ध इस लोक एवं परलोक के लिये भी त्याग देता हूँ।

आलोच्य कैकेयी का स्वभाव विशेष तौर पर वहाँ द्रष्टव्य है जब भरत जी ननिहाल से घर आये। अभी पति की अर्थी घर में पड़ी है। फिर भी रानी इतना आनंदित हैं जैसे कोई भीलनी जंगल में आग लगाकर प्रसन्न हो। उन्हें अयोध्या के सुख-दुःख से कोई लेना-देना नहीं, उस हृदय विदारक स्थिति में भी 'नैहर' कुशलता के प्रति अधिक चिंतित हैं। क्या यही त्याग-बलिदान की मीमांसा है? द्रष्टव्य है महारानी का हर्ष-

कैकेई हरषित एहि भाँती।
मनहुँ मुदित दव लाइ किराती।।
सुतहि ससोच देखि मन मारें।
पूँछति नैहर कुसल हमारें।।

स्पष्टवादिता के लिए सुमन्त्र जी अयोध्या में प्रसिद्ध थे। वे अन्याय नहीं सहन कर सके इसलिये ताना देकर कैकेयी की भर्त्सना करने से पीछे नहीं हटे।

नह्यकार्यतमं किंचित्तव देवीहि विद्यते।
पतिघ्नीं त्वामहं मन्ये कुलघ्नीमपि चान्ततः।।

अर्थात् इस जगत् में ऐसा कोई कुकर्म नहीं है जिसे तुम न कर सको; मैं तो समझता हूँ कि तुम पति की हत्या करने वाली तो हो ही; अन्ततः कुलघातिनी भी हो।

सुमंत्र जी ने अपने ताने में यह भी कहा कि कैकेयी अपनी हठी माँ का संस्कार पाई है। कहावत है-जइसे काकरि वइसे बीया। जइसे माई वइसे धीया।। कैकेयी की माता-किसी साधु के वर से कैकेयी के पिता अश्वपति तिर्यक् योनि के समस्त प्राणियों की बोली समझते थे। एक रात जृम्भ नाम के पक्षी की आवाज सुनकर वे हँस पड़े। कैकेयी की माँ ने उनके हँसने का कारण जानना तो चाहा राजा ने कहा-"यदि मैं कारण बता दूँगा तो मेरी मृत्यु हो जायेगी।" रानी हठ कर बैठी-"मरो या जीवित रहो, मुझे कारण बताओ।" राजा चिंतित होकर पुनः वर देने वाले साधु के पास गये और उनका निर्देश पाकर रानी को घर से निकाल दिया। यह कथा वाल्मीकि रामायण सर्ग 35 में आई है जिसे सुमन्त्र जी ने रोष पूर्वक कैकेयी को सुनाया।... ऐसे अकाट्य प्रमाण से क्या कैकेयी का दोष सिद्ध नहीं होता है? सुमंत्र जी का उपदेश महारानी को अच्छा नहीं लगा अतः वे विष का घूँट पीकर रह गईं।

गुरुदेव कैकेयी को दुराचारिणी एवं कुटिल मानते हैं। श्रीरामचरितमानस में सामासिक भाव से उन्होंने कैकेयी के कुटिलपन की चर्चा की। राजसभा में भरत जी को वे कैकेयी की करतूति सुनाते हैं-

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी।
कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी।।

रानी की बुद्धि को जैसे लकवा मार गया और वे जड़ होकर रह गई। जब जानकी जी वल्कल धारण करती हैं तब वसिष्ठ जी से नहीं रहा गया और कैकेयी को बहुतेरा समझाने का प्रयास किया। निष्पक्ष भाव से उन्होंने महारानी के अवगुणों को व्यक्त करते हुये सुधरने का परामर्श दिया। गुरुदेव ने कैकेयी की जो समीक्षा की वह एक कुलीन नारी के लिये शूल से कम नहीं था।

अतिप्रवृत्ते दुर्मेधे कैकेयि कुलपांसनि।

वंचयित्वा तु राजानं न प्रमाणेऽवतिष्ठसि।।

अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन करके अधर्म की ओर पैर बढ़ाने वाली दुबुर्द्धि कैकेयी! तू केकयराज के कुल की जीती जागती कलंक है। अरी तू राजा को धोखा देकर सीमा के भीतर नहीं रहना चाहती।

'दुर्मेधा' शब्द 'कैकेयी' के लिये ही नहीं 'अहल्या' हेतु भी प्रयुक्त हुआ है जो विश्वामित्र के मुख से निःसृत हुआ-'मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात्।' यद्यपि अहल्या एवं महारानी कैकेयी में पर्याप्त अन्तर था तथापि दोनों की मति विपरीतगामी हो गई थी। जहाँ अहल्या अपने कुकृत्य हेतु पश्चाताप से भर गई वहीं कैकेयी को भी अपने अपराध की अनुभूति हुई, जिन राम, लखन एवं सीता को वन का संत्रास दिया उन्हीं की सरलता देखकर वे अघाकर पछताती हैं-

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई।
कुटिल रानि पछितानि अघाई।।

मनुष्य को चाहिये कि वह सोच-विचारकर ही कदम उठाये। एक बार कलंक का टीका लग जाता है तो मरणोपरांत भी नहीं छूटता। वाणी को भी नाप-तौलकर निकालना चाहिये। कैकेयी समाज, परिवार तथा पुत्र की निगाह में गिर गईं। उनका बर्ताव सुमति पूर्ण रहा होता तो आज भी लोग अपनी पुत्री का नाम 'कैकेयी' रख सकते थे। यदि वे जननी न होतीं तो इस अक्षम्य अपराध हेतु भरत उन्हें कठोर से कठोर दण्ड देते। सुमति होती है तो प्रेम बढ़ता है और प्रेम से भवन में सुख-शान्ति का वातावरण सृजित होता है। भरत भ्रातृत्व प्रेम की मूर्ति हैं, शृंगवेरपुर में अग्रज के भय से वे कैकेयी का सम्मान करते हैं-

जननीं सकल भरत सनमानी।।

पता- ग्राम-सहिनवां, पोस्ट-गोसैसिंहपुर,
जिला-सुलतानपुर, उ.प्र.-228131
मो0- 7080510018

सुर नर मुनि कोउ नाहि,
जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहिं,
भजिअ महा माया पतिहि।
- तुलसीदास

जयशंकर प्रसाद के नाटक

➲ हरीशकुमार शर्मा

महान साहित्यकार जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य को वरदान की तरह मिले। तीन बड़े रूपों में उनकी साहित्यिक पहचान है। छायावाद के वे प्रवर्तक कवि हैं, जिन्होंने 'कामायनी' जैसा आधुनिक खड़ी बोली हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य रचा है। कथा-साहित्य में प्रेमचंद के समानांतर स्कूल चलाने वाले वे कहे जाते हैं और नाटक का पूरा एक युग उनके नाम से जाना जाता है। हिंदी नाटक का उद्‌भव तो भारतेंदु युग में हो गया था और उसने इस युग में काफी गति भी पकड़ी, पर द्विवेदी युग में आकर उसमें थोड़ा ठहराव आ गया। परंतु, यह प्रसाद थे कि जिन्होंने पुनः नवजागरण के संदर्भ में नाटक विधा की उपयोगिता को समझते हुए उसे अपनाया और उत्कर्ष प्रदान किया। उनका अपने युग पर ऐसा जबरदस्त प्रभाव है कि हिंदी नाटक की विकास यात्रा में एक युग प्रसाद युग के नाम से जाना जाता है। जयशंकर प्रसाद की बड़ी देन हिंदी नाटक को यह है कि उन्होंने युग-संदर्भ में उसकी क्षमता को पहचाना और उसका उपयोग किया। उन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे और उन नाटकों में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया कि जो उनके युग की परिस्थितियाँ थीं। इस तरह से उन्होंने अतीत का सहारा लेकर अपने वर्तमान की पीड़ा को ही मुखरित नहीं किया, उससे निकलने के लिए जनता को प्रेरित भी किया।

प्रसाद जी ने दर्जन-भर से भी अधिक नाटकों की रचना की, जो इस प्रकार हैं-'सज्जन-, 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'चंद्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूंट' और 'ध्रुवस्वामिनी'। इनमें से कुछ, जैसे-'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'करुणालय', 'कामना', 'कल्याणी परिणय' तथा 'एक घूंट' एकांकी की श्रेणी में भी रखे जा सकते हैं। 'एक घूंट' को तो हिन्दी के प्रथम एकांकी के रूप में भी परिगणित किया जाता है। प्रसाद जी के प्रायः सभी प्रमुख नाटक ऐतिहासिक हैं जिनके द्वारा उन्होंने अपने वर्तमान की समस्याओं का समाधान अतीत में खोजा है। इस तरह से उनके सभी बड़े नाटक उनकी राष्ट्रीय चिंता और सामाजिक चिंतन से अनुप्राणित कहे जा सकते हैं।

जहाँ तक उनके नाट्य-शिल्प की बात है तो उसमें प्राचीन और नवीन, प्राच्य एवं पाश्चात्य का समुच्चय देखने को मिलता है। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त के शब्दों में, "नाट्य शिल्प की दृष्टि से प्रसाद जी के नाटकों में पूर्वी और पश्चिमी तत्त्वों का सम्मिश्रण मिलता है। जहाँ उनके नाटकों में कथावस्तु, रस, नायक, प्रतिनायक, विदूषक, शीलनिरूपण, सत्य और न्याय की विजय में भारतीय नाट्य साहित्य की परंपराओं का पालन हुआ है, वहाँ पाश्चात्य नाटकों का संघर्ष एवं व्यक्ति-वैचित्र्य का निरूपण भी उनकी

रचनाओं में हुआ है। भारतीय नाटकों की रचनात्मकता इनमें भरपूर मिलती है। तो दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों की कार्य-व्यापार की गतिशीलता भी उनमें विद्यमान है। भारतीय नाटककार सुखांत को पसंद करते हैं, पश्चिम के कलाकार दुखांत को। प्रसाद ने अपने नाटकों का अंत इस ढंग से किया है कि हम उन्हें सुखांत भी कह सकते हैं और दुखांत भी। न उन्हें सुखांत कह सकते हैं और न दुखांत। वस्तुतः उनका अंत एक ऐसी वैराग्यपूर्ण भावना के साथ होता है जिसमें नायक की विजय तो हो जाती है, किंतु वह फल का उपयोग स्वयं नहीं करता। उसे प्रतिनायक को ही लौटा देता है। इस प्रकार के विचित्र अंत को प्रसादांत की संज्ञा दी गई है।" डॉ. विजयेंद्र स्नातक के अनुसार, "प्रसाद जी के नाटकों में शिल्प की दृष्टि से संस्कृत नाटक अँग्रेजी नाटक तथा बांग्ला के नाटकों का प्रभाव भी लक्षित किया जा सकता है। वस्तु योजना, नायक परिकल्पना तथा रस-दृष्टि से ये संस्कृत नाटकों के निकट प्रतीत होते हैं। अंकों और दृश्यों का विभाजन, वस्तु संगठन एवं पात्रों की सृष्टि में वे सेक्सपीयर के नाटकों के समीप लगते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में इब्सन और बर्नार्ड शा के नाटकों के प्रभाव की झलक मिलती है।"

आगे वे लिखते हैं-

"प्रमुखतः प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। विषय और रचना-शिल्प की दृष्टि से 'स्कंदगुप्त' प्रसाद जी का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। स्कंदगुप्त और देवसेना के चरित्र जिस शैली में अंकित हुए हैं वह पाठक और दर्शक के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। 'चंद्रगुप्त' नाटक में कथावस्तु ऐतिहासिक होने पर भी युगबोध की छाया उभरती है। इस नाटक में उन्होंने जिन चरित्रों की अवतारणा की है वे अत्यंत प्रभावशाली चरित्र हैं। 'अजातशत्रु' भी उनका एक ऐतिहासिक नाटक है जिसमें तात्कालिक घटनाओं को आधुनिक भावबोध के साथ प्रस्तुत किया गया है। किन्तु, यह नाटक उतना सफल नहीं बन पड़ा, जितने उनके अन्य ऐतिहासिक नाटक हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' का प्रसाद के नाटकों में एक विशेष स्थान है। यह नाटक पुनर्विवाह की समस्या को कौशल के साथ चित्रित करता है। 'कामना' और 'एक घूंट' उनके अन्य उल्लेखनीय नाटक हैं। 'कामना' संस्कृत के चंद्रोदय की शैली का अन्योपदेशिक नाटक है। इसमें विभिन्न विचारों को प्रतीक रूप में रंगमंच पर उपस्थित किया गया है और उनके द्वारा मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास की कथा प्रस्तुत की गई है। समूचे नाटक में एक अंक और एक दृश्य है। 'एक घूंट' भी इसी शैली का नाटक है। आधुनिक एकांकी की शैली का इसमें अभाव है। प्रसाद जी के नाट्य-विषयक प्रयोग की दृष्टि से इसका महत्त्व है।'

कथा तत्त्व की दृष्टि से देखें तो जयशंकर प्रसाद के प्रायः सभी प्रमुख नाटकों की कथाभूमि ऐतिहासिक है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। शेष 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'राज्यश्री' आदि के कथानक भारतीय इतिहास के मौर्य युग, गुप्त युग तथा हर्षवर्धन युग से लिए गए हैं। इन नाटकों के ऐतिहासिक कथानक प्रसाद जी ने मात्र भारत के गौरवमय स्वर्णिम अतीत को दिखाने के लिए रखे हैं, यह बात नहीं है। वास्तव में तो उन्होंने इतिहास में जाकर उन परिस्थितियों को खोजने का प्रयास किया है, जिनके माध्यम से वे अपने वर्तमान की चर्चा कर सकें, उसकी समस्याओं पर विचार कर सकें, उन समस्याओं के कारणों को सामने रख सकें और उनसे निजात पाने के लिए देशवासियों को प्रेरित कर सकें। इसलिए प्रसाद जी का ऐतिहासिक नाटक लिखना 'गड़े मुर्दे उखाड़ना' भर नहीं था, अपितु अपने समय के देश की दारुण दशा पर विचार करना था। उनके नाटक देशवासियों में राष्ट्रीय गौरवबोध भरने, अपनी समस्याओं को समझने, अपनी हीन-दशा से

उबरने, अपनी कमजोरियों को पहचानने, सोते से जागने और अपनी अंतर्निहित शक्ति को महसूस कराने के लिए लिखे गए हैं। उनके प्रत्येक नाटक में कुछ-न-कुछ षड्यंत्रकारी हैं जो देश को कमजोर करते हैं। इससे बाहरी लोगों को फायदा उठाने का मौका मिलता है। देश के पराधीनता काल में अपने नाटकों के द्वारा नवजागरण की लहरें उठाने वाले प्रसाद जी अपने नायकों एवं उनके सहयोगियों के माध्यम से यह दिखाते हैं कि देश को स्वतंत्र, सुरक्षित और सशक्त बनाने के लिए संगठन आवश्यक है, देशवासियों की एकता आवश्यक है, जिसे आवश्यकता पड़ने पर निजी हितों का त्याग और बलिदान करना चाहिए। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में वे राष्ट्ररक्षा के साथ-साथ स्त्री-मुक्ति और उसके अधिकारों का प्रश्न भी उठाते हैं।

प्रसाद जी के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं तो स्वभावतः पात्र भी कुछ तो इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं और कुछ कल्पित हैं। जो इतिहास-प्रसिद्ध पात्र हैं, उनके चरित्र-चित्रण में भी लेखक ने थोड़ी-बहुत छूट ली है। डॉक्टर विजयेंद्र स्नातक के अनुसार, "प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में गौतम बुद्ध, चाणक्य, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी आदि ऐतिहासिक पात्रों की अवतारणा एवं इनको नए युगबोध के साथ संपर्क करके शत-प्रतिशत ऐतिहासिक रूप में चित्रित नहीं किया है।"

डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में प्रसाद जी के नाटकों के पात्रों पर टिप्पणी करते हुए लिखा गया है-"शायद ही हिंदी के किसी अन्य लेखक ने भारतीय संस्कृति, समृद्धि, शक्ति और औदात्य का ऐसा भास्वर चित्र प्रस्तुत किया हो। इन नाटकों में जो चरित्र उभरे हैं वे शील, शक्ति और औदात्य के प्राणवंत विग्रह हैं। इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों में नया जीवन भर दिया गया है। गौतम बुद्ध, चाणक्य, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी आदि ऐतिहासिक पात्र हैं, पर प्रसाद के नाटकों में इनका जो रूप उभरा है वह इतिहास की उपलब्धि नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने इतने विविध प्रकार के पात्रों की सृष्टि की है कि उनके माध्यम से पूरा युग ही सजीव होकर उपस्थित हो गया है।"

बच्चन सिंह ने अपनी 'हिंदी नाटक' नामक पुस्तक में प्रसाद जी के नाटकों के पात्रों का इन चार श्रेणियों में रखकर विवेचन किया है-

1. महत्त्वाकांक्षी पात्र-इनमें राज्यश्री का विकटघोष, अजातशत्रु का कुणीक और विरुद्धक, स्कंदगुप्त का भटार्क तथा अन्यान्य नाटकों की छलना, शक्तिमती, सुरमा, अनंतदेवी और विजया जैसे स्त्री पात्र आते हैं जो अपनी निजी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए राष्ट्रहित को तिलांजलि देने में भी संकोच नहीं करते।

2. मातृभूमि के उद्धारक पात्र-इनमें स्कंदगुप्त, चाणक्य, चंद्रगुप्त मौर्य, अलका आदि आते हैं जो राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता के लिए सब कुछ उत्सर्ग कर देने को तत्पर है।

3. भारतीय नारीत्व के प्रतिनिधि पात्र-इनमें मल्लिका, कल्याणी, ध्रुवस्वामिनी आदि नारियाँ आती हैं।

4. गीतिमय नारी पात्र-देवसेना, मालविका और कोमा आदि ऐसे स्त्री-पात्र हैं जो अपने गीतों से नाटकों को जीवंत बनाते हैं और पात्रों में उत्साह भरते हैं।

इनके अतिरिक्त विदूषक, सूत्रधार, नट-नटी आदि की योजना भी उनके नाटकों में रहती है।

नाटक में कथोपकथनों या संवादों का बहुत महत्त्व होता है, क्योंकि अधिकांश कथा को इन्हीं के सहारे आगे बढ़ाया जाता है। इस तरह से कथा-विकास को गति देने, पात्रों का चरित्रोद्घाटन करने तथा लेखकीय मंतव्य को प्रकट करने की दृष्टि से नाटक में संवादों की प्रमुख भूमिका होती है। प्रसाद जी के नाटक ऐतिहासिक होने से उनके अधिकांश पात्र बड़े गरिमाशाली हैं। इस कारण से उनके

संवाद भी राजा, रानी, मंत्री, सेनापति आदि पदों की स्थिति के अनुसार गरिमामय होते हैं। संस्कृत के शब्दों की बहुलता के कारण उनके पात्रों के संवादों की भाषा एक सामान्य हिंदी पाठक के लिए कठिन हो जाती है। ऊपर से संवादों में दर्शन का पुट उन्हें और दुरूह बना देता है। यों उनके नाटकों के संवाद बड़े ओजस्वी होते हैं जो संपूर्ण वातावरण और पात्रों के व्यक्तित्व को सफलतापूर्वक प्रस्तुत कर देते हैं। उनके संवादों में सूक्तियों का बहुतायत में प्रयोग हुआ है और हास्य-व्यंग्य का भी सुंदर समावेश कहीं-कहीं देखने को मिल जाता है।

संवादों की संस्कृतनिष्ठ भाषा तथा उनमें गहन दार्शनिकता का समावेश जिसके कारण संवादों का लंबा होना प्रसाद जी के नाटकों के संवादों को दुरूह बना देता है। इस कमजोरी को आलोचकों ने लक्षित किया है। उदाहरण स्वरूप देखें 'चंद्रगुप्त' नाटक में आम्भीक द्वारा सिंहरण से यह पूछे जाने पर कि तुम्हारी बातचीत में कुछ रहस्य है, सिंहरण के उत्तर का व्यंग्य कैसे भाषा की कठिनता में दबकर खो जाता है-"हाँ-हाँ, रहस्य है! यवन आक्रमणकारियों के पुष्कल स्वर्ण से पुलकित होकर, आर्यावर्त की सुख-रजनी की शांति-निद्रा में, उत्तरापथ की अर्गला खोल देने का रहस्य है। क्यों राजकुमार! संभवतः तक्षशिलाधीश बाल्हीक तक इसी रहस्य का उद्‌घाटन करने गए थे?"

अपने नाटकों में देशकाल-वातावरण के निर्माण में प्रसाद जी सिद्धहस्त हैं। युगीन प्रवृत्तियों का सम्यक् निदर्शन कर प्रसाद जी ने तत्कालीन देश, काल और वातावरण को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक में चित्रित युग का सामाजिक-धार्मिक-आर्थिक परिवेश, सभ्यता और संस्कृति, देश के भीतर चलने वाले कुचक्र तथा बाहरी आक्रमणकारियों के खतरे आदि को लेखक ने बड़ी कुशलता से उभारा है। पात्रों की वेशभूषा और वार्तालाप, रंग-सज्जा आदि के माध्यम से भी सजीव वातावरण रचा गया है। विशेष बात यह है कि नाटकों का वातावरण इस तरह से रचा गया है कि सैकड़ों-हजारों साल दूर होते हुए भी वह युग लेखक के युग में प्रासंगिक सिद्ध होता है।

प्रसाद जी के नाटकों पर एक आरोप यह भी है कि उनकी भाषा क्लिष्ट है। वास्तविकता तो यह है कि उनके नाटकों के कथानक का धरातल सुदूर इतिहास में प्रतिष्ठित है, जबकि देश में संस्कृत, पाली और प्राकृत जैसी भाषाओं का बोलबाला था। अतः भाषा में सजीवता लाने के लिए उसका संस्कृतनिष्ठ होना स्वाभाविक है। प्रसाद जी का मानना था कि 'सरलता और क्लिष्टता पात्रों के भावों और विचारों के अनुसार भाषा में होगी ही और पात्रों के भावों और विचारों के आधार पर भाषा का प्रयोग नाटकों में होना चाहिए।' उनके नाटकों की भाषा क्लिष्ट लगने का एक कारण यह भी है कि प्रसाद जी कवि थे और उनकी काव्यमयता का गुण उनके नाटकों की भाषा में भी साफ परिलक्षित होता है।

प्रसाद जी के नाटकों का एक बड़ा दोष यह माना गया है कि वे रंगमंच के अनुकूल नहीं हैं। भाषा की क्लिष्टता, लंबे-लंबे स्वगत-कथन एवं वार्तालाप, दर्शनशास्त्र की सूक्ष्म एवं जटिल उक्तियों का समावेश, दृश्यों की भरमार, गीतों की अधिकता, वातावरण की गंभीरता आदि वे कारण गिनाए जाते हैं, जिनसे प्रसाद जी के नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। स्वयं प्रसाद जी भी अपने नाटकों की इस सीमा से अनभिज्ञ नहीं थे। इसलिए उन्होंने लिखा है कि "यदि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरुचि-संपन्न सामाजिक हों और पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जाए तो यह नाटक अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।" तात्पर्य यह कि प्रसाद जी अपने नाटक सामान्य दर्शकों के लिए नहीं लिखे हैं। सुरुचि-संपन्न सामाजिकों के लिए लिखे हैं। इसलिए वे यह मानते थे कि बजाय इसके कि

उनके नाटक रंगमंच के अनुकूल हों, रंगमंच का ही उनके नाटकों के अनुकूल निर्माण व विकास किया जाए।

डॉ. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के अनुसार "प्रसाद की कठिनाई यह थी कि वे जिस प्रकार के नाटक लिखना चाहते थे, उनके अनुरूप रंगमंच हिंदी में नहीं था। पारसी रंगमंच सस्ती जनरुचि का पोषक था, अतः प्रसाद के लिए उसे अपनाने का प्रश्न ही नहीं था। उधर हिंदी का शौकिया रंगमंच नितांत अविकसित था। फलतः प्रसाद ने साहित्यिक रंगमंच की स्वयं कल्पना की और इस मानसिक रंगमंच की पृष्ठिभूमि में ही अपने नाटक लिखे। यदि रवींद्रनाथ ठाकुर की तरह वे भी व्यावहारिक और बहिर्मुखी रहे होते तो संभव था कि उनके हाथों हिंदी रंगमंच का वैसा ही निर्माण हो गया होता जैसा कि रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा बंगला रंगमंच का हुआ। प्रसाद जी अपने काल्पनिक रंगमंच को व्यवहारिक रूप नहीं दे सके, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके नाटक अन्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट होने पर भी अभिनय की दृष्टि से सफल न हो पाए।" (565)

नाटक शिक्षा और संस्कार देने का एक श्रेष्ठ माध्यम है, साहित्य में शायद सर्वश्रेष्ठ भी। प्रसाद जी स्वयं भी ऐसा ही मानते थे-"नाटक में जितनी शिक्षा हो सकती है, उतनी प्रायः किसी में नहीं प्राप्त हो सकती।" स्पष्टतया जयशंकर प्रसाद के सभी नाटक सोद्देश्य हैं। वे मात्र मनोरंजन के लिए नहीं लिखे गए हैं। सस्ती रुचि वाले दर्शकों के लिए नहीं लिखे गए हैं। अपने नाटकों की कथाभूमि के लिए उन्होंने इतिहास को चुना तो यह अकारण नहीं था। अपने 'विशाख' नाटक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि "हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें हमें पूर्ण संदेह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बढ़ाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।

स्पष्ट रूप से उनका उद्देश्य अतीत को आधार बनाकर वर्तमान की समस्याओं का समाधान खोजना था और देशवासियों के भीतर सोए हुए गौरव, स्वाभिमान, उत्साह और आत्मविश्वास को जगाना था। साथ ही रूढ़िबद्ध हो चुकी जड़ मान्यताओं का शास्त्रीय दृष्टि से समाधान खोज कर उनको सही परिप्रेक्ष्य देना था।

पता- प्रोफेसर-हिन्दी विभाग,
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश- 272202
मो0- 9436053279

रहिमन निज मन की बिया
मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहें लोग सब
बाँटि न लैहें कोय।
- रहीम

अमृतलाल नागर की धरोहर

➲ डॉ. अनिल रस्तोगी

अमृतलाल नागर जी को नाटक का शौक नया नहीं पुराना था। उनके पिता श्री राजा राम जी लखनऊ के शौकिया रंगमंच के श्रेष्ठ अभिनेताओं में से थे। बचपन में नागर जी ने भी अपने मित्रों की टोली के साथ नाटक खेले थे। एक-आध बार अपने स्कूल में और तीन-चार बार अपने मोहल्ले में। फिर नौकरी के चक्कर में ये शौक कहीं खो गया और वे मुम्बई चले गए 1940 से 1947 तक। सात वर्ष मुंबई में व्यवसाय के रूप में संवाद निर्देशक काम किया। हालांकि इस दौरान कई दिनों तक उन्हें डबल रोटी और चाय पर रहना पड़ा, पर अपने को स्थापित कर कुँवारा बाप, उलझन, बहू रानी, पराया धन, किसी से न कहना आदि फिल्मों के डायलॉग्स लिखे और कई फिल्मों में डबिंग का काम भी किया जैसे रूसी फिल्म ज़ोया, नसीरुद्दीन इन बुखारा, शुभलक्ष्मी की तमिल फिल्म मीरा। सन् 1948 में लखनऊ वापस आ जाने पर पुराना शौक नए सिरे से जागा। उन दिनों बा अपने दिन के खाली समय में निर्धन घरों के नन्हें-मुन्नों को पढ़ाने का शौक था उनकी पाठशाला के बच्चों को अक्सर शनिवार के दिन छोटे-छोटे नाटक और कभी-कभी छाया नाटक खिलाने लगे। वे कल्पना के अनेक खेल उनसे करवाते। अभिनेता बनाने से पूर्व बच्चों की कल्पनाशीलता को निश्चित करते और वैसा ही काम लेते। यह क्रम चल पड़ा और उन्होंने नगर में जगह-जगह नवयुवकों में थिएटर का शौक जगाया। धीरे-धीरे अभिभावकों ने उनके कहने से अपनी लड़कियों को भी नाटक में हिस्सा लेने की अनुमति दे दी। 6 वर्षों तक उनकी शामें घर में ही नाटक कराने में बीतीं। विश्वविद्यालय, पत्रकार संघ, स्कूलों और मोहल्ले के उत्सवों में भी वे नाटक कराने लगे। इस शौक ने उन्हें दोहरा अनुभव दिया। एक तो अभिनेताओं द्वारा विभिन्न चरित्र कराते हुए उनकी कल्पनाशीलता बढ़ी।

उनके अनुभव उनके गोदान नाटक में अच्छे तरह प्रस्तुत होते हैं। सन् 1955 में नवयुग कन्या विद्यालय में कालेज भवन बनवाने के लिए नागर जी ने आयोजकों के साथ गोदान नाटक कर चन्दा वसूल करने का प्ला बनाया। टिकट फटाफट बिक गए 3,000 दर्शकों में से। 1,000-1,500 मजदूरों के साथ संभ्रांत परिवार के लोग भी आये। नागर जी ने रिवॉल्विंग स्टेज के अभाव में रिवॉल्विंग सेट्स बनवाया। नाटक में रेडियो के कलाकारों ने भाग लिया जो पहले से ही बहुत प्रचलित थे। सब दर्शक पूर्वाग्रह से प्रेरित बैठे थे कि नाटक तो बहुत अच्छा होना ही है। रिवॉल्विंग सेट बत्ती के इशारे पर जादू-सा घूम रहा था इसके लिए कुलियों को बीसों रिहर्सल कराये। गाय को मंच पर लाया गया पर वो प्रकाश से न भड़के इसलिए उसके भी रिहर्सल कराये गए। मंच खुलते ही होरी का घर दिखा, होरी

के घर के बाहर आते ही बिजली स्विच के संकेत पर मंच पर अँधेरा हुआ, होरी का घर तीन टुकड़ों में बटकर घूम गया, होरी के घर के बाहर गाँव का गलियारा, दूर पर खेत, गाँव की गलियाँ मकानों के द्वार दिखाई पड़ने लगे और पंडाल तालियों से गूंज पड़ा, पर तभी एक जासूस ने सूचना दी की मंच घुमते ही बिजली की कड़-कड़ाहट सी होती थी इसलिए मंच घुमते वक्त माइक बंद करवा दिए गए, पर किसी टेक्निकल फाल्ट से माइक बिल्कुल बंद हो गए और दर्शकों तक आवाज पहुँचनी ही बंद हो गयी। दर्शकों से शोर उठने लगा उन्हें लगा कि किसी दुश्मन की कार्यवाही है नतीजतन पर्दा बंद कर माइक ठीक कराकर नाटक जहाँ छोड़ा था वहाँ से फिर शुरू किया गया। तीन घण्टे तक नाटक चला और मंच से लेकर दूर सीमा तक एक सा रंग बंधा रहा तब उनकी सांस में सांस आयी। पहले तो वे समझे की किसी दुश्मन ने ये हरकत की थी पर बाद में समझ में आया कि आम जनता अगर रसवश होती है तो दुश्मनों की हरकतें कुछ भी बुरा नहीं कर सकतीं। उनका मानना था की दुःख के दृश्य में यदि जनता हँस पड़े तो दुश्मनों को दोष देना अपने आप को धोका देना है। इसी तरह यदि कोई ये कहे की जनता आर्ट नहीं समझती तो उसे भी वे नहीं मानते। उनका मानना था कि कला में यदि दम है तो पढ़े-लिखे व बेपढ़े दोनों को एक साथ और यकसां प्रभावित करती है। अंतर केवल इतना ही होता है कि समुन्नत चेतन व्यक्ति के पास कला का मर्म बखानने के लिए उचित शब्द होंगे और बेपढ़ा कुछ का कुछ बखानेगा पर बखानेगा अवश्य। नागर जी को नाटक देखने का भी बहुत शौक था अच्छा पान, अच्छी भाँग व अच्छे नाटक उनकी कमजोरी कही जा सकती है। उन्होंने मेरे कई नाटक देखे और उत्साहवर्धन किया। मेरे नाटक पंछी जा पंछी आ जिसके मैंने 400 से भी अधिक प्रदर्शन किये, 100 प्रदर्शन पूरे होने पर नागर जी ने सब कलाकारों को सम्मानित किया। मुझे उनके लिखे दो उपन्यासों बूँद और समुद्र जिसे सबा ज़ैदी ने निर्देशित किया था व् नाच्यो बहुत गोपाल जिसे मशहूर कवि शैल चतुर्वेदी के बेटे विशाल चतुर्वेदी ने प्रोड्यूस व डायरेक्ट किया था, में अभिनय करने का सौभाग्य मिला। प्रसिद्ध साहित्यिक क्रिटिक व भाषाविद् डाक्टर राम विलास ने अपनी पुस्तक पाँच रत्न में नागर जी का बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा है उनका लिखना है "हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पंडित अमृत लाल नागर बहुत ही दिलचस्प आदमी हैं। देखने में शरीफ भी लगते हैं, जिस शहर जिस मोहल्ले में रहते हैं, हर तरह के आदमियों खासकर साहित्य के नशेबाजों को उनकी तलाश रहती है, हंसी ठहाके, ऊँची आवाज में बहस, बच्चों से चुहल, कभी गुस्से में धारा प्रवाह भाषण और सुनने वाले सन्नाटे में और कभी खुद कुछ मिनटों को चुप क्योंकि मुँह में नया पान दबाया है। सोने का समय छोड़कर नागर जी ज्यादातर बातें ही किया करते हैं और जब कोई नहीं होता तो कागज पर कलम चलाते हुए अपने पाठकों से बातें करते हैं। उनमें एक जन्मजात कला की वे हर तरह की मंडली में घुल-मिल जाते सिर्फ विद्या या धन के मद में भूले हुए, गंभीरता का ढोंग रचनेवालों से उनकी पटरी नहीं बैठती।" नागर जी का घर साहित्यकारों, फिल्मकारों का एक तीर्थस्थल हुआ करता था। शहर में आने वाला हर साहित्यकार उनकी ड्योढ़ी पर तक जाना अपना सौभाग्य समझता था। हिंदी साहित्य को अमूल धरोहरों से समृद्ध करने वाले नागर जी अंत तक नवीनता और सर्वोत्तमता की खोज में लगे रहे। उनकी एक ही तमन्ना थी कि लिखते-लिखते कोई ऐसी चीज मेरी कलम से निकल जाए की मैं सदा के लिए इंसान के दिल में जगह बना लूँ।

पता - 223/153 रस्तोगी टोला,
राजा बाजार, लखनऊ (उ0प्र0)
पिन- 226003
मो0- 9415087160

विद्यानिवास मिश्र के निबन्ध

➲ डॉ. विजय आनन्द मिश्र

हिंदी निबंध के विकास में आचार्य विद्यानिवास मिश्र का विशेष योगदान रहा है। विद्यानिवास मिश्र को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद उनकी परंपरा को विकसित करने वाले एक आत्म व्यंजक एवं ललित निबंधकार के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई है। आचार्य रामचंद्र तिवारी ने विद्यानिवास मिश्र के संबंध में लिखा है-"उनके व्यक्तित्व में संस्कृत साहित्य की अभिजात सत्य चेतना आधुनिक भावबोध एवं लोक जीवन की स्वच्छंद प्राणमयी रस धारा का अद्‌भुत सामंजस्य है।" सन् 1953 में विद्यानिवास मिश्र का पहला निबंध संग्रह "छितवन की छांह" प्रकाशित हुआ था। उसकी भूमिका में आपने लिखा है-"वैदिक सूक्त के गरिमा में उद्‌गम से लेकर लोकगीतों के महासागर तक जिस अभिक्षण प्रवाह की उपलब्धि होती है उसे भारतीय भावधारा का मैं स्नातक हूँ। मेरी मान्यताओं का वही शाश्वत आधार है। मैं रेती में अपनी डोंगी नहीं चलना चाहता हूँ और न जमीन के ऊपर बने रूखें तालाबों में छपकोरी खेलना चाहता हूँ।" विद्यानिवास मिश्र भारतीय भावधारा से पूर्णता संलग्न रहने वाले निबंधकार हैं जिससे उन्हें उन विचारधाराओं और चिंतन पद्धतियों से बराबर टकराना पड़ा है, जो भारतीयता को विनष्ट करने पर तुली थी। यही कारण है कि उनके निबंधों में इस प्रकार की टकराहट देखने को मिलती है। हल्दी दूध (1955 ई.), कदम की फूली डाल (1956 ई.), तुम चंदन हम पानी (1957 ई.), आँगन का पंछी और बंजारा मन (1963 ई.), मैंने सिल पहुँचाई (1966 ई.), बसंत आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं (1972 ई.), मेरे राम का मुकुट भींग रहा है (1974 ई.), परंपरा बंधन नहीं (1976 ई.), कंटीले तारों के आर-पार (1976 ई.), कौन तुम फुलवा बिना निहारी (1980 ई.), निज मुख मुकुर (1981 ई.), भ्रमरानंद के पत्र (1981 ई.), तमाल के झरोखे से (1981 ई.), संचारिणी (1984 ई.), अंगद की नियति (1984 ई.), अस्मिता के लिए (1984 ई.), लगो रंग हरि (1985 ई.), गाँव का मन (1985 ई.), नैरन्तर्य और चुनौती (1988 ई.), भाव पुरुष श्री कृष्ण (1990 ई.), होड़ हम (1991 ई.), जीवन अलभ्य है जीवन सौभाग्य है (1991 ई.), देश, धर्म और साहित्य (1992 ई.), नदी, नारी और संस्कृति (1993 ई.), फागुन दुई रे दिना (1994 ई.), बूँद मिले सागर में (1994 ई.), पीपल के बहाने (1994 ई.), शिरीष की याद आई (1995 ई.), भारतीय चिंतन धारा (1995 ई.), साहित्य का खुला आकाश (1996 ई.), लोक और लोक स्वर (2000 ई.), गिर रहा है आज पानी (2001 ई.), स्वरूप विमर्श (2001 ई.), गाँधी का करुण रस (2002 ई.) आदि आपके प्रसिद्ध निबंध संग्रह हैं। दो विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंधों में जिस समाज को व्यक्त किया है वह परंपरा बद्ध समाज रहा

है, इतिहास बद्ध नहीं। परंपरा के अर्थ को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-"परंपरा का अर्थ है पर के भी जो परे हो, श्रेष्ठ से भी जो श्रेष्ठत्तर हो, जो ना कभी भूत हो, ना भविष्य, जो सतत वर्तमान हो, जो कभी सिद्ध ना हो, निरंतर साध्य हो, परंपरा इसलिए साधना का पर्याय है।" यही कारण है कि वह राम और कृष्ण को इतिहास पुरुष नहीं माना बल्कि उन्हें सनातन के वीर पुरुष मानकर उनकी पूजा की है। विद्यानिवास मिश्र नाम वर्तमान के वस्तु आदि दृष्टि के कारक के रूप में, वैज्ञानिकता के नकली दंभ को मानते हैं। वे वैज्ञानिकता को मानवीय जीवन मूल्यों को भौतिकवादी चिंतन परंपरा से युक्त मानते हैं। इसके प्रभाव पर बात करते हुए यह स्वीकार करते हैं-"इस वस्तुवादी दृष्टि के कारण प्रकृति के प्रति हमारा आत्मीय भाव समाप्त होता जा रहा है। हम में भेद दृष्टि बढ़ती जा रही है। हमारी संवेदना क्षीण होती जा रही है। हमें इससे मुक्त होना होगा और अपनी परंपरागत विरासत को स्वीकार करते हुए जीवन में रस की तलाश करनी होगी। भारतीय मनीषा अमृत की खोज करती आई है। यह खोज और कुछ नहीं जीवन को रस में, आनंद में, उल्लास में, मानना है। मृत्यु हमारे लिए जीवन का पुनराम्भ है। इसलिए भारतीय मृत्यु की आशंका से त्रस्त नहीं होता।" आचार्य रामचंद्र तिवारी आचार्य विद्यानिवास मिश्र जी के निबंध भारतीयता की पहचान की समीक्षा करते हुए लिखा है-"प्राय सभी निबंधों में भारतीय संस्कृति को नए संदर्भ में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। बौद्धिक धरातल पर उच्चतर मूल्य की व्याख्या में रत मिश्र जी का रस, सिक्ता मन ठेंठ गाँव का है। इसी मन ने मिश्र जी को नकली जिन्दगी जीने से बचाया है। इसी के बल पर मिश्रा जी व्यक्ति व्यंजन निबंधों की एक नई दुनिया रचने में सफल हुए हैं।"

संस्कृति पुरुष पंडित विद्यानिवास मिश्र का जन्म 14 जनवरी, 1926 में गोरखपुर, उत्तर प्रदेश के दक्षिणांचल के एक गाँव पकड़डीहा (बांसगाँव तहसील) में हुआ था। पंडित विद्यानिवास मिश्र के पितामह पंडित मुनिवर मिश्र संस्कृत व्याकरण के प्रख्यात विद्वान और शिष्य वत्सल गुरू के रूप में देवरिया जिले के एक संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाचार्य रहे जो पूर्वांचल के लोक मानस में आज भी समादित हैं। पंडित विद्यानिवास मिश्र जी की माता श्रीमती गौरी देवी करुणा की मूर्ति थी तथा उनके पिता पंडित प्रसिद्ध नारायण मिश्र गोरखपुर के प्रख्यात वकील थे। जो बाद में गोरखपुर विश्वविद्यालय के विधि विभाग में आचार्य भी रहे। आचार्य विद्यानिवास मिश्र अपने पितामह की स्नेह छाया में पहले बड़े शिशु माँ पर वाचिक परंपरा के रूप में रामायण, महाभारत की कथाओं का बीज रोपन कर डाला था। आगे चलकर अपने पितृव्य पंडित मुनिवर मिश्रा से संस्कृत व्याकरण और साहित्य के रसपान का अवसर आपको मिला। साथ ही माँ और पत्नी से लोकगीतों के महासागर का परिचय हुआ। मिश्र जी के तीन सहोदर भाई प्रोफेसर महेश्वर मिश्र, डॉक्टर यज्ञेश्वर मिश्र (भौतिकशास्त्र के आचार्य) तथा दो दयानिधि मिश्र (सेवानिवृत्ति आई.पी. एस.) हैं। मिश्रा जी की एकमात्र पुत्री श्रीमती मंजुला शुक्ला और जय माता प्रोफेसर देवेंद्र शुक्ल केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, नई दिल्ली में कार्यरत थे। आपकी धर्मपत्नी उधर माना श्रीमती राधिका देवी थी जो साक्षात् अन्नपूर्णा थी।

पंडित विद्यानिवास मिश्र जी की प्राथमिक शिक्षा गाँव के निकट प्राथमिक विद्यालय बिशनपुर गोरखपुर से आरम्भ होकर राजकीय जुबिली इंटर कॉलेज, गोरखपुर से होईस्कूल 1939 और सेंट एंड्रयूज इण्टर कॉलेज, गोरखपुर से 1941 में इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने तक चली बाद में आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1943 में स्नातक तथा 1945 में संस्कृत विषय में एम.ए. किया। "पाणिनीय व्याकरण की विश्लेषण पद्धति" शीर्षक पर गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में 1957 से

1968 तक प्राध्यापक/उपाचार्य रहे। पंडित विद्यानिवास मिश्र को हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, प्राकृत, अपभ्रंश, अवेस्ता, ओल्ड पर्शियन, उर्दू, बांग्ला, मैथिली और भोजपुरी पर भी अधिकार था। इसके साथ ही पाश्चात्य साहित्य के चिंतन विमर्श ने और अमेरीका तथा अनेक देशों के भ्रमण और प्रवास ने उनकी भारतीयता को पुष्ट किया। नॉर्वे पश्चात चिंतन से आतंकित हुए ना ही उसके अनुयायी या अनुसरण करता बने। आचार्य विद्यानिवास मिश्र इंग्लैण्ड, कनाडा, चेकोस्लोवाकिया, सोवियत संघ, रोमानिया, थाईलैण्ड, मलेशिया, कंबोडिया, वियतनाम, इण्डोनेशिया, ईरान, पाकिस्तान, ग्रीस, स्पेन, इटली, जर्मनी, सिंगापुर, मॉरीशस, ट्रिनिडाड सूरीनाम आईलैण्ड बुल्गारिया आदि देशों की यात्राएं की इन यात्राओं ने मिश्र जी को पूर्ण भारतीय बना दिया जो उनके निबंधों में दिखाई भी देता है। वे विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय वर्कले एवं वाशिंगटन विश्वविद्यालय सिएटल अमेरिका में महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन किया था साथ ही उन्होंने महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय वाराणसी एवं सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के कुलपति का दायित्व को भी सफलतापूर्वक निर्वहन किया। वे प्रसार भारती बॉर्डर भारत सरकार के सदस्य के रूप में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया और इंदिरा गाँधी कला केन्द्र वाराणसी के मानद सलाहकार की भूमिका का भी बाखूबी खूबी निर्वाह किया। 2003 से 2005 तक राज्यसभा के सदस्य के रूप में भी अपनी योग्यता का परिचय दिया दुर्भाग्यवश 14 फरवरी 2005 को एक सड़क दुर्घटना में साहित्य के इस मर्मज्ञ का देहावसान हो गया था। पंडित विद्यानिवास मिश्र जी को विभिन्न प्रकार के साहित्यिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुरस्कारों से भी पुरस्कृत किया गया था जिसमें उन्हें 1988 में पद्मश्री, 1989 में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के तरफ से रत्नश्री, 1990 में मूर्ति देवी पुरस्कार, 1991 में हिंदी गरिमा सम्मान, 1992 में विश्व भारती पुरस्कार, 1992 में ही मुम्बई का साहित्य का सर्वोच्च सम्मान, 1993 में अनन्त गोपाल शेगड़े स्मृति पुरस्कार, 1994 में शंकर सम्मान, 1996 में साहित्य अकादमी दिल्ली का सर्वोच्च सम्मान महत्तर सदस्यता, 1997 में भारत भारतीय सम्मान, 1999 में पद्म भूषण सम्मान, 1999 में ही हेडगेवर प्रज्ञा पुरस्कार, 2000 में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान सम्मान, 2000 में ही मंगल प्रसाद पारितोषिक सम्मान, 2001 में राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली द्वारा मानव पदोपाध्याय उपाधि, 2003 इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा मानव डिलीट उपाधि इत्यादि इनकी साहित्य सेवा का प्रतिफल है। साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य को दशा एवं दिशा देने में भी पंडित विद्यानिवास मिश्र जी का विशेष योगदान रहा है जिसके लिए उन्हें समय-समय पर पुरस्कृत किया गया। पंडित विद्यानिवास मिश्र समय-समय पर अन्तरराष्ट्रीय साहित्यिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों पर भारत का प्रतिनिधित्व भी किया है जैसे नवें अन्तरराष्ट्रीय भाषा विद सम्मेलन कैंब्रिज में 1962 में, दसवें अन्तरराष्ट्रीय भाषा विद सम्मेलन बुडापेस्ट 1967 में, 26वाँ अन्तरराष्ट्रीय प्राच्य विद्या सम्मेलन फिला डेल्फिया 1964 में, चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस 1993 में, पंचम विश्व संस्कृत सम्मेलन नई दिल्ली 1993 में, इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑफ वेदांत ऑक्सफोर्ड 1994 में, पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिदाद, तुलसी पंच सती समारोह सूरीनाम 1998 में, अंतरराष्ट्रीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन मॉरीशस 1999 में, छठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन लंदन 1999 में तथा सप्त विश्व हिंदी सम्मेलन 2001 में, इनकी गरिमा में उपस्थिति से साहित्य भावबोध का एवं दिशा निर्देश का एक स्वस्थ परंपरा का लोकार्पण समय-समय पर होता रहा है। पंडित विद्यानिवास मिश्र संयोजक, संस्कृत सलाहकार मंडल साहित्य अकादमी,

नई दिल्ली, सदस्य, कार्य समिति केंद्रीय तिब्बती उच्च संस्थान, सारनाथ, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ तथा उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ हिंदी अकादमी, दिल्ली, कालिदास अकादमी उज्जैन, गोरखपुर विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वारणसी महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय, उज्जैन और इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद के अतिरिक्त भारत सरकार की केंद्रीय हिंदी समिति और हिंदी सलाहकार समिति शिक्षा मंत्रालय विदेश मंत्रालय गृह मंत्रालय तथा संसदीय राजभाषा समिति के सदस्य रहे हैं।

यूनेस्को द्वारा भारत में संचालित अनेक योजनाओं की कार्य समितियों के संयोजक सदस्य एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पॉलिटिक्स के संपादक हिंदू मत का विश्वकोश के संपादक के रूप में आपकी दिन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है आई.आई.टी. नई दिल्ली के सलाहकार सदस्य तथा भारत सरकार की नई शिक्षा नीति हेतु गठित समिति के भी आप सदस्य रहे। पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय के सदस्य के रूप में आपके अनेक सुझाव सरकार ने स्वीकृत किए साथ ही इण्डियन लैंग्वेज प्रमोशन काउंसिल के सलाहकार/सदस्य के रूप में इस सक्रिय भागीदारी रही है। राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान के सलाहकार/सदस्य के रूप में आपकी सेवाएं और अविस्मरणीय हैं। इस प्रकार पंडित विद्यानिवास मिश्र जी की रचना कौशल में उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि महत्त्वपूर्ण भूमिका के रूप में दिखती है।

इस व्यक्तित्व निर्माण और हिंदी लेखक बनने के पीछे के कुछ कर्म को विद्यानिवास जी ने अपने एक साक्षात्कार में स्वयं बयान किया है-"बचपन से ही घर में संस्कृत का पूरा वातावरण रहते हुए भी मैं हिंदी की ओर आकृष्ट हुआ मेरे ननिहाल में नाना के पास बहुत सारी किताबें थी भारतेंदु युग की पत्रिकाएँ थी मैं छुट्टियों में वहाँ जाता और कौतूहल वश उनका पारायण करता धीरे-धीरे यह मेरा यह शान ही बन गया और जब मैं हाईस्कूल में था तभी से निबंध, कहानी, कविता आज लिखने लगा मैंने इंटरमीडिएट तक हिंदी औपचारिक रूप में पढ़ी पर हिंदी पुस्तकों को पढ़ने और खरीदकर पढ़ने का चाव बढ़ता ही गया मेरा कर्म क्षेत्र संस्कृत था और बहाव क्षेत्र हिंदी मुझे हिंदी के लेखकों और बड़े लेखकों का स्नेह प्रारम्भ से ही मिला और इसमें अपना बड़ा सौभाग्य मानता हूँ कि स्वर्गीय अज्ञेय जैसे शीर्षस्थ लेखक ने मेरी रचनाएँ 'प्रतीक' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में पहली बार छापी और पहला निबंध संग्रह श्रीपत राय ने बड़ै प्रेम से स्वयं का कर लिया और प्रकाशित किया। मेरे सिर्फ दो-तीन संग्रह को देखकर पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय जी और पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने भूमिका लिखी और मन से लिखी है।"

विद्यानिवास मिश्र की प्रकृति विधा निबंध रही है यह सजातीय विधा किन विशेषताओं के कारण बनी इस संदर्भ में कृष्ण बिहारी मिश्र को दिए एक साक्षात्कार में आपने कहा है कि-"निबंध विद्या दो कर्म से मेरी अपनी विशिष्ट विद्या बनी एक तो इसमें किस्म-किस्म की गंजों को संश्लिष्ट करने की संभावना दिखी, कविता की अपेक्षा इसमें लोक जीवन में रमने वाली प्रवृत्ति के लिए अनुकूल अवसर था। दूसरा कारण यह था कि बचपन से ही मुझे गद्य काव्य की कसौटी होने के कारण लेखन की चुनौती जैसा लगा बाणभट्ट और दांडी जैसे संस्कृत लेखक और भारतेंदु हरिश्चंद्र माधव मिश्रा बालमुकुंद गुप्त हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा महादेवी वर्मा और अज्ञेय आदि लेखन का गद्य मुझे आकृष्ट करता रहा। बांग्ला और अंग्रेजी के व्यक्ति व्यंजन रचनाकारों की रम्य रचनाओं ने मुझे अत्यधिक आकृष्ट किया। लोग जीवन के साथ जुड़ाव ने मुझे भाषा शैली में

तत्सम बहुल होने से बराबर रोका इस कारण मैं निबंध रचना के माध्यम से अपने को पहचानने की कोशिश करने में सार्थकता पाने लगा।"

इस प्रकार ललित निबंध या की व्यक्ति व्यंजन निबंधों की रचना में आप प्रति हुए इन दोनों का अंतर स्पष्ट करते हुए आपने अपनी एक पुस्तक अस्तबक और अन्य भेंट वार्ताओं में बताया है कि दोनों का अंतर नाम का ही है अंतर मनोभाव और शैली का भी है ललित निबंध में मोहकता स्मृतियों के ताने-बाने से उतनी नहीं आती जितनी आती है शब्दों की चित्र मेहता से और भावों की सरिशा से आरोही अवरोही सदस्यता से जबकि व्यक्ति व्यंजन निबंध में भाव-विचार में होने के लिए प्रस्तुत होते हैं और शब्द आत्मीय संवाद स्थापित करने के लिए ललित निबंध से शुरुआत में जरूर की पर जिंदगी के जैसे-जैसे कड़वे मीठे खट्टे तीते अनुभव मिलते गए वैसे मेरी ललिता सखी मुझे रूठती गई और मैं अपने व्यक्ति को तोड़-तोड़कर अपनी जातीय चेतना का आकार गढ़ता रहा। मेरे निबंधों में व्यक्ति व्यंग्य नहीं है व्यंजन है मेरी समग्र संकल्प सील महा जाति का, व्यक्ति के रूप में तो वह बस टूटे दर्पण के काँच का टुकड़ा है मुझे भूख और प्यास के भीतर की भी यथार्थ की चिंता है अर्थात् भूख प्यास वाले आदमी के चित्र की भी चिंता है। इसलिए आप बार-बार गाँव के मन से रूबरू होते रहते हैं जिसे डॉक्टर राम दरस मिश्र लोक रस में पका व्यक्तित्व और डॉ. रमेश चंद्र समग्र का संवेग कहते हैं।

स्पष्ट है कि वेद शास्त्र साहित्य शास्त्र रामायण, महाभारत और अपने समकालीन साहित्यकारों और राजनेताओं तथा पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति से निकट के परिचय के साथ भारतीय भाव धारा के स्नातक होकर अपने हिंदी साहित्य में धर्म परिवेश के लिए अपना लेख नरम किया जिसमें जाती स्मृति और उसका पुनरुल्लेख बार-बार परिलक्षित होता है। आपके लेखन में व्यक्ति या व्यक्तित्व की ही व्यंजना है जो निबंध लेखन की पहली शर्त है उसमें ललित त्यागा गया है तो उसके पीछे कोई सचेत प्रयत्न नहीं है और लेखक की अपनी भाव-भाषा के कलेवर में लिप्त शिल्प संवेदना है उसमें न कोरी शास्त्रीयता है न पाण्डित्य पूरी लोकोन्मुखी चित्र की चेतना है जिसका परिदृश्य अतीत आधुनिक और नव-नवोत्तर दिखता है जिसको विद्यानिवास मिश्र जी के लगभग सभी निबंधों में यथार्थ रूप से देखा जा सकता है। पंडित विद्यानिवास मिश्र जी के जीवन में अनेकों उतार-चढ़ाव आए लेकिन वे कभी भी परिस्थितियों के आगे कमजोर नहीं हुए बल्कि उन सभी से सीख लेते हुए अपने जीवन और लेखन दोनों का परिमार्जन करते रहे उनके इसी व्यक्तित्व का परिणाम है कि जिस विषय पर भी उन्होंने अपने निबंधों के अंतर्गत विचार किया है उसकी गहराई से अन्वेषण करते हुए संभावित परिणाम पर पहुँचे हैं जिससे ललित निबंध का शोधात्मक एवं निदानात्मक स्वरूप भी खुलकर सामने आता है क्योंकि उनके निबंधों में जहाँ एक तरफ परंपरा के प्रति गहरा लगाव दिखाई देता है वहीं पर परंपरा में व्याप्त जड़ताओं के प्रति भी गहरा क्षोभ भी प्रकट होता है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र के नाम के साथ ललित निबंध का नाम हो गया है पर ललित के लोग संस्कृत के निकट संस्पर्श से भी आ सकता है। संस्कृत काव्य के गहन माध्यम से भी और सबसे बढ़कर लेखक के मनो जगत में विचार समष्टि और कल्पना से जिस भावना को एक मधुर सूक्ष्म संगत दे दी हो। इस प्रकार के रचित रचनात्मक गद्य रचयिताओं में विद्यानिवास मिश्र अग्रगण्य हैं।" उनके प्रथम निबंध संग्रह छितवन की छाँह (1950) के कथ्य और शिल्पा की ओर ध्यान जाता है। इस निबंध संग्रह की भूमिका में निबंधकार विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं कि, "मैं अपनी आस्थाओं का अभिनिवेश रखे बिना कहीं भी रहना नहीं चाहता, निबंधों में तो और भी नहीं। वैदिक सूक्त के गरिमा

में उद्धव से लेकर लोकगीतों के महासागर तक जी अभिषेक प्रवाह की उपलब्धि होती है उस भारतीय भावधारा का मैं स्नातक हूँ। मेरी मान्यताओं का वही आधार है मैं रेती में अपनी ढोंगी चलाना नहीं चाहता और ना ही जमीन के ऊपर बने रूढ़े तालाबों में छपकोरी खेलना चाहता हूँ। इसके मूल में संस्कृत में जन्म का अंग्रेजी का स्तनपान किया है और छाँह मिला है मुझे भोजपुरी के धानी आंचर में, सो इनसे मेरा अविलग भाव है।" इसलिए निबंधकार का राज रंजित मन छितवन की छाँह में बिलमता है, उसके सौन्दर्य पर रीझता है, उसकी उपेक्षा पर खिन्न होता है। पाप और पुण्य दोनों उसको समान रूप से बोझिल करने वाले लगते हैं। इस उपक्रम में प्रकृति प्रेम के साथ छीजते हुए मूल्यों की चिंता लेखक को आकुल और उदिग्न करती है। कोमलकांत पदावली का लालित्य इस संग्रह में पदे-पदे विद्यमान है। इसमें लोक संस्कृति, लोक विश्वास और लोक भाषा भोजपुरी के शब्दों की छौंक के साथ विराट सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं। हरसिंगार की दानशीलता पर रीझते हुए लेखक कहता है कि, "हरसिंगार बरसात के उत्तरार्ध का फूल है जब बादलों को अपना बचा खींचा सर्वस्व लुटा देने की चिंता हो जाती है तब माघ और पूर्व में छड़ी लगाने की और लग जाती है हरसिंगार किसी जातक के पुकार की प्रतिष्ठा और किसी चपला के परिणाम की चाहना नहीं करता वह देता चला जाता है जब तक की उसके एक भी वृत्त में एक भी फूल बचा रहता है। वह कई नहीं देता उसके दान में अध कचरापन या अधूरापन नहीं होता वह सर्वस्व दान करता है पर समूचा-समूचा।"

भाषा शिल्प और कक्षा की दृष्टि से मिश्र जी के प्रथम निबंध संग्रह में ही हिंदी जगत का ध्यान आकर्षित किया और संग्रह देश के कई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में शामिल हुआ इसके अनंतर वीणा, माध्यम, धर्मयुग आदि साहित्य की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में आपके निबंध लगातार प्रकाशित होने लगे हैं और एक संग्रह और प्रकाशित हुआ "हल्दी दूब" जो अब उपलब्ध नहीं है किंतु इस संग्रह के अधिकांश निबंध दूसरे संग्रह "कदम की फूली डाल" में संग्रहीत है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र का दूसरा निबंध संग्रह कदम की फूली डाल है जो अलग तरीके का दूसरा निबंध संग्रह है। इस निबंध संग्रह की मूल चेतना को अभिव्यक्त करते हुए निबंधकार पंडित विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि, "चितवन की इच्छा के बाद या दूसरा संग्रह प्रस्तुत करते समय मेरा ध्यान इस अंतराल की उदास जिंदगी की ओर बरबस चला जाता है जितनी रिक्तता जीवन में आज है उतनी कभी नहीं थी। पहले दुख दर्द अधिक था पर जीवन में रस था। आज शायद कोई मानसिक पीड़ा नहीं है पर जैसे किसी ने सोख लिया है प्रणय या मैत्री की जी ... स्निग्ध भूमि पर छतनार चितवन का बीरवा रोपा था, वह भूमि आज रेत-रेत रह गई है। इस प्रकार से निष्क्रिय वैराग्य चारों ओर से ग्रस्त चला आ रहा है।" इस संग्रह में मुकुट मेखला और नूपुर, विंध्य की धरती का वरदान, अमरकंटक की सालती स्मृति, राष्ट्रपति की छाया, बेतवा के तीर पर तथा होहिहैं, शीला सब चंद्रमुखी निबंध हमें आकृष्ट करते हैं। परंपरा विषण होकर आधुनिक होने की अंधी दौड़ पर निबंधकार का स्वर फूट पड़ा है किंतु वैष्णवी विनम्रता के भाव-लोक में लेखक बड़े कौतुक से अपने भावों की अभिव्यक्ति बिना किसी पर टिप्पणी किए एडवाइस भाव से कर लेता है यही उसकी साधना और सिद्ध शक्ति और सीमा है। भाषा के लक्षण एकता की पूरी शक्ति संपदा इस संग्रह में मौजूद है। लेखक का आधुनिकता बोध जड़ शास्त्र से बोझिल नहीं है। इसलिए भारतीय परंपरा के जीवन के शाश्वत मूल्य की गूंज प्रायः सभी निबंधों में सुनाई पड़ती है।

तुम चंदन हम पानी विद्यानिवास का तीसरा निबंध संग्रह है इसकी भूमिका में हिंदी के अपराज्य योद्धा

पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने लिखा है कि श्री विद्यानिवास मिश्र आधुनिक हिंदी साहित्य संसार में एक आश्चर्य हैं साधारणता आज का हिंदी साहित्य एक ऐसी कलम हैं जो किसी दूसरे जलवायु वाले देश से यहाँ लाकर रूप दी गई है उसका शरीर भारतीय है किंतु उसके विचार उसका दृष्टिकोण उसकी साहित्यिक सामाजिक और संस्कृत परंपराओं में पाश्चात्य हैं यहाँ तक के उसकी अभिव्यक्ति भी पाश्चात्य शैली की है उसके दिमाग के बनाने में पश्चिम के मनुष्यों पश्चिम के साहित्य पश्चिम की मान्यताओं और पश्चिम के विचारों का हाथ है उसे इस देश के सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में साँस लेने में कठिनाई होती है। कभी-कभी घुटन भी मालूम होती है। इन्हीं सब कर्म से उसमें भारतीय मान्यताओं और परंपराओं के प्रति वह सहानुभूति और वह ममता नहीं है। जिसकी अपेक्षा साधारणता भारतीय साहित्य से की जाती है। उसका शरीर भारत में आवश्यक है किंतु उसका बौद्धिक और आत्मिक सूक्ष्म शरीर भारत के बाहर है। इसीलिए ना तो वह भारतीय वस्तुओं को गहराई से ही देख सकता है और ना उसकी आत्मा को ही समझ सकता है। अपनी इसी उलझन के कारण कभी वह अंतरराष्ट्रीय हो जाता है, कभी पश्चिम के बाद का अनुयाई और कभी उसे वाद का भक्त। उसकी प्रतिभा से हमें जो लाभ होना चाहिए वह नहीं होता। उसकी बात जनता के मानस और हृदय को स्पर्श नहीं करती और इसलिए उसकी संदिग्ध प्रतिभाएं और पर्यटन दोनों हमारे लिए जनता और साधारण पाठक के लिए दुरुह और व्यर्थ हो जाते हैं।"

इस कथन के आलोक में मिश्र जी के निबंधों का कथ्य भारतीयता और भारतीय परंपरा से अद्भुत लोकचित्र की खेती है उसमें परफ्यूम वाली नशीली गढ़ नहीं है बल्कि उसमें देसी पान है। भारत के प्रचलित पर्व तीज त्योहार फूल पौधे हैं बसेदनपन या फुहड़ता नहीं है। अवसाद विषय का घोल नहीं है। संतों की बनियान और लोकगीतों के बोल आपके निबंधों के विषय बनकर लंबी भाव यात्रा करते हैं और पाठक को शराब और करते हैं उसको अपने साथ रमाये रखते हैं। इनका चौथा निबंध-संग्रह "आँगन का पंछी और बंजारा मन" है। यह निबंध दो प्रकार की मनःस्थितियों में लिखे गए हैं पहले अपने आँगन में लौटने की खुशी और दूसरा घर पोसू होने की आशंका। इसलिए इसमें मैं जहाँ आँगन का पंछी बनकर चहका, वहीं उसका बंजारापन विगत और अनागत दिशाओं में रहने घूमने के लिए अकुलाता भी रहा। यह निबंध सत्य के प्रतिरोध के पर्यटन है। भावुकता के लिए बदनाम लेखक का इसमें बौद्धिक रूप झलक उठा है। हाँ इसमें परिवेश को पढ़ा जाना एक अलग तरह का है। इसमें व्यंग्य की प्रचुरता है-बालते समय जनतांत्रिक पर लिखते समय सामंत हो जाना आम बात है। इस असामंजस्य का प्रभाव जल्दी ही मन और शारीरिक चेष्टाओं पर पड़ने लगता है और अपने बाप का पैर छूने में हिचक होती है। वह अपने अवसर या मंत्री का पैर छूने का अवसर पाने में गवानित महसूस करते हैं। इसमें प्रतिरोध की शैली विरोध के लिए विरोध न होकर सत्य के धुंधले और मलिन होते हुए रूप और गहरा व्यंग भी है। विनोद का स्वर नहीं झुंझलाहट, क्षोभ और आकुल स्वर की शैली संग्रह की विशेषता है। आम्र मंजरी की शोभा और उसकी मादकता के साथ उसके सांस्कृतिक महत्त्व का भी सम्यक प्रतिपादन सराहनीय है। "मैंने सिल पहुँचाई" विद्यानिवास जी का पाँचवाँ निबंध संग्रह है जो 1966 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित है। लेखक किसके निबंधों की अकहानी और अकविता के वजन पर अनिबंध और अललित कहना चाहता है। लेखक की वक्तव्य के अनुसार इसमें कुछ भ्रमरानंदी गँवारु चिट्ठियाँ हैं, कुछ अध्यापक की जीवन की निष्क्रिय पतंगबाजी है, कुछ संस्कृत के विद्यार्थियों की तोता रटंत और कुछ राष्ट्रीयता के लिए बेसुरा आलाप है। पहले

निबंध "आहुति दो आहूत की बेला है" में युद्ध और शांति को लेकर राष्ट्रीय चेतना के आलोक से आपूरित है लेखक के लिए युद्ध का विकल्प शांति नहीं पराजय है। "निरपेक्षता किससे?" प्रस्तुत संग्रह की अत्यंत गंभीर रचना है। निबंध में एक स्थान पर आया है जो विचारणीय है, "मजहब के अर्थ में धर्म और मजहब निरपेक्षता के अर्थ में धर्म-निरपेक्षता का प्रयोग करके हमने धर्म का लोप कर दिया है।" यह कथन विद्यानिवास मिश्र जी के चिंतन परंपरा की बारीकियों को उजागर करता है, जिसमें उनके दृष्टिकोण समाज और शास्त्र में प्रस्तुत होने वाली छोटी-छोटी चीजों के तरफ भी अग्रसारित होती हैं परंपरा बनाम आधुनिकता का द्वंद्व संस्कृति और लोक-संस्कृति के चरण की वेदना शब्दों के मूलार्थ का गुम होना सही उत्तर और संवेदना का रस रमणीय प्रकृति का दोहन मनुष्य का यांत्रिक होते जाना इन निबंधों की सृजन भूमि है जो शाश्वत सनातन मूल्यों को स्थापित करने के लिए अकोलाहट तथा बेचैनी से ओत-प्रोत है इसमें निबंधकार की शायरी विलक्षण है जिसको देखकर बरबस या कहना समीचीन लगता है कि विद्यानिवास मिश्र अद्‌भुत और विलक्षण शैलीकार हैं। उनके प्रतीक योजना मिश्र की यह कथन बेजोड़ हैं या उनको अन्य समकालीन निबंधकारों से अलग करता है और उन्हें और साधारण गद्यकार कहना मानना पड़ता है इसमें गंभीर विचरण है और विषय की स्थापना में वे बड़े स्पष्ट हैं। इसलिए अमूर्तन और रहस्य नहीं स्पष्टता है।

"बसंत आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं" निबंध संग्रह 1972 में प्रकाशित होता है जिसमें विद्यानिवास मिश्र बसंत ऋतु पर बार-बार लिखा है। इस संग्रह में समकालीनता और उसके विविध संदर्भों को सही ढंग से उठाने की चेष्टा की गई है क्योंकि प्रश्नोत्तरी उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना प्रश्न को सही मायने में उसके परिप्रेक्ष्य में रख देना। इस संग्रह में नई पीढ़ी की बेचैनी विश्वविद्यालय और न्यायालय राष्ट्रभाषा और समस्या आधी जनता और लंगड़ा जनतंत्र जैसे सामाजिक संदर्भों से निबंधकार टकराते हुए प्राचीन भारतीय संदर्भों के आलोक में प्रश्न को उठाते हुए निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। मेरे राम का मुकुट भीग रहा है विद्यानिवास मिश्र जी का महत्त्वपूर्ण निबंध संग्रह है जो 1974 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज नई दिल्ली से प्रकाशित होता है। इसमें राम के मुकुट अर्थात ऐश्वर्या और सीता के माथे का सिंदूर तथा लक्ष्मण के पहरूवा के भीगने की चिंता है। यह चिंता बड़ी प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है। आज राम को राजनीति के काल्पनिक कहने लगे हैं वे अपने जन्म स्थान में तमाम प्रमाणों के बावजूद टेंट में भीगने के लिए आवश्यक है इतिहास में उनका प्रमाण ढूँढ़ा जा रहा है। पुरातत्त्व ने प्रमाण दे दिया है। राम और राम जन्मभूमि का अस्तित्व सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य-पेक्षी है। इस दुरंत उदाहरण नियति और राम के निर्वाचन की पीड़ा को उकेरते हुए निबंधकार की टिप्पणी दृष्टव्य है, "जिसे ऐश्वर्या सोफा जाने को है उसको निर्वाचन पहले से ही बदा है। इस अकेलेपन की सही पहचान राम के निर्वासन की पहचान करके प्राप्त की जा सकती है और अकेलेपन की यथार्थ पहचान हमारे मन में छा जाएगी तो फिर रमता की छिनार भी हम कर लेंगे क्योंकि अकेलेपन की सही पहचान तो राम की उपस्थिति है।" विद्यानिवास मिश्र जी अपने इस निबंध संग्रह के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि आज संबंधों में ऊष्मा अपनापन और दूसरों के दुख दर्द में शामिल होने का भाव चाव खत्म होता जा रहा है। हैसियत देखकर महज चापलूसी और दंतनिपोरी रह गई है। आदमी का आदमी से विश्वास खत्म होना इस शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदी है भाई कुण्ठा अकेलापन और अजनबी पन का पढ़ने और चिंता का विषय है विद्यानिवास जी के निबंधों की यही मूल चिंता उन्हें समय के पार और कल का और कालजयी

रचनाकार बनाती है। वह सनातनता के आग्रही हैं। "कटीले तारों के आर-पार" विद्यानिवास मिश्र का नया निबंध संग्रह है जो 1974 में प्रकाशित होता है। यह निबंध संग्रह अपने शीर्षक से बहु-व्यंजन है। एक अलग आभा अलग दीप्ति लिए हुए। इसमें एक कोरियाई कहानी के प्रतीक संकट से प्रेरणा प्राप्त कर या निबंध रचा गया है। इसमें लेखक अपने को आधुनिकता पूर्व और पश्चिम अंधकार और प्रकाश के सीमांत पर अपने को पाता हुआ प्रतिहीन प्रकाश की तुलना में अंधकार को ही अधिक मूल्यवान पाता है। इसमें कल 15 निबंध संकलित है जिसमें एक गहरी अन्विति है जिसमें साहित्य और संस्कृति की अखण्ड और अभिषेक धारा प्रवाहित दिखती है।

"परंपरा बंधन नहीं" निबंध संग्रह में भारतीयता भारतीय परंपरा संस्कृति और लोक पर विद्यानिवास जी ने लगातार अपने लेखन में व्याख्यानों में और आचार्य विचार में बड़ी गहराई और विस्तार से विमर्श प्रस्तुत किया है या उनके मूल चिंता है। इसके छेद होने पर खींचते हैं। और इसके बारीक ब्यूरो में जाकर लगातार पड़ताल करते नजर आते हैं।" "हिंदू धर्म : जीवन में सनातन खोज" निबंध संग्रह में पंडित विद्यानिवास मिश्र हिंदू धर्म का वास्तविक विकास करना चाहते हैं जिसमें हिंदू को खुद की बधाई ना करना पड़े बल्कि दूसरे धर्म के लोगों द्वारा हिंदू धर्म कोई इज्जत मिले। इस बात के लिए चिंतक की मुद्रा में दिखाई देते हैं। इस निबंध संग्रह में उनका मंतव्य है कि, "हिंदू धर्म दुनिया में फैले दूसरों को आलोक दिन इसकी चिंता ना करके हम केवल यह चिंता कर सके कि हम इसे क्यों नहीं आलोकित हो रहे हैं हम क्यों दूसरों का मुँह जोड़ रहे हैं कि वह हिंदू धर्म की तारीफ करें तो हम अपनी पीठ ठोकी हम क्यों सत्य ही और कभी-कभी देश और आत्महीनता से प्रेरित आलोचनाओं से घबराकर अपने धर्म से उदासीन बने हुए हैं हम क्यों नहीं अपने हाथ से अपनी कुल्हाड़ी से अपने निरंतर परिवर्तनशील धर्म की सूखी डालें काटने के लिए कदम बढ़ाते हैं दूसरों द्वारा काटी गई फल फूल से लदी दल के सूखे हुए रूप को धर्म मानकर क्यों कुण्ठित हैं इसी भाव को बचाने के लिए यह छोटा-सा संकल्प मैंने लिया।" इसी प्रकार कौन तू फुलवा बिन निहारी और अस्मिता के लिए निबंध संग्रह 1980 में प्रकाशित होता है। इसमें ग्रामीण आंचल से जुड़ी हुई और आध्यात्मिक रंग में रंगी हुई विचारधारा दृष्टिगत होती है साथ ही जीवन रस के सूखने की चिंता निबंधकार के मन में सदैव बनी रहती है और इसको सिंचित करने के लिए बार-बार लेखक भारतीय समाज संस्कृति और अध्यात्म की तरफ सभी को अग्रसारित होने की प्रेरणा भी देता है। साथी अस्मिता के लिए निबंध संग्रह के माध्यम से अपनी अस्मिता को भाषण देती से पहचान करने के लिए भाषा संस्कृति और शिक्षा के संबंध में कुछ चिंताएं कुछ प्रश्न और कुछ समाधान भी विद्यानिवास जी प्रस्तुत करते हैं जिससे अगली पीढ़ी के लिए एक व्यवस्थित और संतुलित मार्गदर्शन भी मिलता है जिसमें दो पीढ़ियों के अंतराल के बीच भारतीय सभ्यता और संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के बीच एक गतिशील आयाम देखने को मिलता है। इन निबंध संग्रहों में पंडित विद्यानिवास मिश्र बार-बार उसे भारत को वापस लाने की बात करते हैं जो कभी ग्रामीण संस्कृति युक्त अंदर से परिपूर्ण और संवेदना से युक्त रहा है। "तमाल के झरोखे से" निबंध संग्रह 1989 में प्रकाशित होता है जिसमें कुल 16 निबंध संकलित हैं। इसमें 'साहित्य की पहचान', 'मेरा गाँव घर', 'जीवन अपनी देहरी पर', 'सर्जना के देवता', 'प्राप्त तब द्वार पर' और 'तमाल के झरोखे' से महत्त्वपूर्ण निबंध हैं जिसमें पंडित विद्यानिवास मिश्र जी की विराट चिंतन धारा उभरकर सामने आती है। इस संग्रह के माध्यम से वे मानते हैं कि सृष्टि के कण-कण से रागात्मक संबंधों की रक्षा और निर्वाह का काम कविता या साहित्य ही कर

पाता है, सो यह निबंध यह भाव यात्रा पूरी कराते हैं। संग्रह के अधिकांश निबंधों में स्मृति की गंध है या गढ़ गाँव घर अमराई बाग-बगीचे फूल-पौधों से होती हुई राम के स्नेह की छाया तथा श्री कृष्ण के आकर्षण में उन्हें बार-बार ले जाती है। इन निबंधों में भाषा की उदारता विलक्षण और अद्‌भुत है इनमें नए प्रतीक और कजरारी आँखों वाले शिशु का पड़े चाक्षुषबिम्ब तथा धारोष्ण बिम्ब, जिनसे पाठक अर्थ-ग्रहण के साथ रस-ग्रहण भी करता है। इन निबंधों के अलावा "निज मुख मुकर" निबंध संग्रह, "गाँव का मन" निबंध संग्रह, "अग्निपथ" निबंध संग्रह, "शेफाली झर रही है" निबंध संग्रह, "जीवन अलभ्य है जीवन सौभाग्य है" निबंध संग्रह, "देश ,धर्म और साहित्य" निबंध संग्रह, "नदी, नारी और संस्कृति" निबंध संग्रह महत्त्वपूर्ण है जिसमें पंडित विद्यानिवास मिश्र जी का बहुमुखी विचारात्मक व्यक्तित्व हमारे सामने उपस्थित होता है जो संपूर्ण निबंध विद्या को एक नए कलेवर में सृजित करता है।

सारांश पंडित विद्यानिवास मिश्र जी के ललित निबंधों पर विचार करने के उपरांत यह तथ्य उजागर होता है आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध को गद्य की कसौटी कहा है और उस कसौटी में विद्यानिवास मिश्र जी के निबंधों को रखा जाए तो यह बात खुलकर हमारे सामने आती है कि वह अपने इन निबंधों के माध्यम से प्राचीनता एवं नवीनता के बीच अद्‌भुत संतुलन स्थापित करना चाहते हैं जिससे एक तरफ हमारी मानवता और संवेदनाएं जीवित रहे और दूसरी तरफ दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाकर भी चले अर्थात पंडित विद्यानिवास मिश्र मनुष्य का सर्वांगीण विकास चाहते हैं जिससे समाज के अंदर भी एक पूर्ण विकास का वातावरण स्थापित हो सके परिणाम का हम केवल विस्तर का हिस्सा न बनकर विकास का वास्तविक सारथी बने जिससे मानवता सदैव शीर्ष पर अपना स्थान स्थापित कर सके जो भारतीय संस्कृति की वास्तविक पहचान है। जहाँ पर जन को ईश्वर और समाज का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। उनके निबंधों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह देखने को मिलती है कि वह पूरी तरह से सामान्य मनुष्य के धरातल पर उतरकर वार्तालाप शैली में प्रस्तुत होते हैं जिसमें हमारे जीवन की छोटी-बड़ी सभी समस्याओं का समाधान अत्यंत सुगमता से हो जाता है। साथ ही जिस भाषा का प्रयोग विद्यानिवास मिश्र जी अपने निबंधों के लिए चुनते हैं वह भाषा विद्वता प्रधान होने के बाद भी जन-सामान्य की भाषा बनकर प्रस्तुत होती है जिससे तत्त्वों की स्पष्टता रेखांकित होती है। उनके निबंधों में भारतीय ग्रामीण परिवेश का वातावरण भी दिखाई देता है साथ ही देश-विदेश के शहरी वातावरण के अंदर व्याप्त दुर्गुणों का जिक्र भी उनके निबंधों में अनायास होता हुआ दिखाई देता है। उनके निबंधों पर विचार करने के दौरान महसूस हुआ कि भारतीय जन-मानस के मन को जानना, टटोलना और समाज के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करना उनका स्वाभाविक शिल्प है जो उनके व्यक्तित्व में भी परिलक्षित होता है जो उनसे मुलाकात के दौरान मुझे आभास होता रहता था। ऐसे मनीषी निबंधकार पर विचार करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है फिर भी मैंने उनकी कुछ निबंधकार व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपनी दृष्टि प्रस्तुत की है जिसकी सफलता और सार्थकता आप सभी पाठकों के ऊपर निर्भर है।

पता- सहायक आचार्य हिंदी विभाग,
जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज,
महाराजगंज (उ0प्र0)
मो0- 9415423382

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें

○ डॉ. शिव ओम अम्बर

आपातकाल के घटाटोप अँधेरे में बिजली की तड़पती हुई अग्नि-रेखाओं जैसी दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें युग की उद्विग्नता, आक्रोश और अमर्ष को चिर स्थायी शब्द-बिम्ब प्रदान करती हुई साहित्य के पटल पर अवतरित हुईं। नयी कविता के चर्चित हस्ताक्षर दुष्यन्त का सामान्यजन से संवाद करने के लिये कविता की शताब्दियों पुरानी विधा का वरण करना महज़ एक कवि का भावुक निर्णय नहीं था, हिन्दी काव्य में एक नव्य युग का शंखोद्घोष था। दुष्यन्त ने ग़ज़लें कहनी शुरू कीं और देखते-देखते सड़क पर अपने दुपट्टे को लहराकर इठलाती हुई चलने वाली शोख़ नाज़नीन का बिम्ब ग़ज़ल से दूर हटता चला गया, वह युवा आक्रोश की इबारत और इबादत बन गई।

वस्तुतः अग्निधर्मा ग़ज़लों के जिस वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ आपातकालीन परिवेश में हुआ, उसके मनु की संज्ञा दुष्यन्त कुमार को ही दी जा सकती है। नई कविता के ख्यातिलब्ध कवि दुष्यन्त ने जब अपने विक्षुब्ध अन्तस् के आलोड़न को ग़ज़ल में अभिव्यक्त करना शुरू किया, किसी को गुमान भी नहीं था कि ग़ज़ल युग की वाणी बनकर लोकप्रियता के चरम शिखरों का संस्पर्श कर लेगी। अपनी अनुभूति में जन-सामान्य को साझीदार बनाने की आकांक्षा लेकर दुष्यन्त ने इस आज़माई हुई विधा को पकड़ा और उनकी अभीप्सा सफल हो गई। उनके तमाम अशआर संघर्षशील आम आदमी के होठों पर सुशोभित होने लगे, नेताओं तथा पत्रकारों के वक्तव्यों तथा आलेखों के उद्धरण तथा शीर्षक बनने लगे और उनकी ग़ज़लें जन-सामान्य के संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण सेनानी की तरह प्रलयंकर मशाल को लेकर आगे-आगे चलने लगीं। 'साये में धूप' के प्रकाशन के साथ-साथ ग़ज़ल शब्द के उच्चारण से किसी लाजवन्ती नवोढ़ा की छवि नहीं अपितु एक बग़ावती मुद्रा का बिम्ब जगाने लगा। ग़ज़ल ईंगुरी हथेली पे मेंहदी की दन्तकथा होकर नहीं, संकल्प की मुट्ठी में आक्रोश की जलती हुई लुकाठी बनकर हिन्दी ग़ज़ल के रूप में दीप्त हुई।

ग़ज़ल के क्षेत्र में उतरने से पूर्व दुष्यन्त कुमार नयी कविता के समर्थ कवि के रूप में 'सूर्य का स्वागत', 'आवाज़ों के घेरे' तथा 'एक कण्ठ विषपायी' और 'जलते हुए वन का बसन्त' जैसी काव्य-कृतियाँ हिन्दी साहित्य को दे चुके थे किन्तु नयी कविता की अति बौद्धिकता तथा साधारणीकरण में सफल न हो पाने वाली वृत्ति से विक्षुब्ध होकर उन्होंने ग़ज़ल का दामन थामा। शमशेर बहादुर सिंह तथा त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लों से उन्हें प्रेरणा मिली। फिर एक बार संकल्पपूर्वक राह पे क़दम रख देने के बाद तो मंज़िल खुद उनकी तरफ़ बढ़ने लगी। अपने ग़ज़ल लेखन के सन्दर्भ में उनका बयान है-"ग़ज़ल लिखने या कहने के पीछे एक जिज्ञासा अक्सर मुझे तंग करती रहती है कि भारतीय

कविता में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिये आख़िर ग़ज़ल को ही क्यों चुना? और अगर ग़ज़ल के माध्यम से ग़ालिब अपनी तकलीफ़ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं तो मेरी दोहरी तकलीफ़ (जो व्यक्तिगत है और सामाजिक भी) इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक-वर्ग तक क्यों नहीं पहुँच सकती?"

दुष्यन्त की प्रश्नाकुल चेतना अपने समय की चीख बनकर ग़ज़ल में अभिव्यक्त हुई और ज़माना स्तब्ध होकर उस स्वर को सुनता रहा-

कहाँ तो तय था चराग़ां हरेक घर के लिये,
कहाँ चराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिये।
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

मात्र 52 ग़ज़लों के संग्रह "साये में धूप" ने हिन्दी के समकालीन गीति-साहित्य में युग-प्रवर्तक की भूमिका का निर्वाह किया और दुष्यन्त कुमार को आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल के पितृ पुरूष के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। दुष्यन्त अपने को एक प्रतिबद्ध कवि मानते थे किन्तु उनका यह भी कहना था कि "यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं आज के मनुष्य से है और मैं जिस आदमी के लिये लिखता हूँ यह भी चाहता हूँ कि वह आदमी उसे पढ़े और समझे।"

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें आम आदमी की पीड़ा, घुटन, उसके आक्रोश और उन्माद की अभिव्यंजनाएँ हैं। वे एक ईमानदार शायर के द्वारा सल्तनत के ख़िलाफ़ दिया गया बग़ावत का बयान है। उनमें धधकती आग की लहक है-

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिये।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिये।

यही आग दुष्यन्त को विवश कर देती है कि वह आदमी की निगाह आकाश के जगमगाते तारों से खींचकर उसे घरों में बसेरा किये अँधेरे की तरफ़ मुख़ातिब करे और उसे प्रेरणा दे कि वह दरिया पार करने के लिये उधार की पतवारों पर नहीं अपनी भुजाओं पर भरोसा करे। उनके हिसाब से आदमी को सपने देखने की छूट तो है परन्तु उसे पूरी तरह सपनों में डूबने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। सड़को पर लिखे नारों की अर्थहीनता को उजागर करते हुए वह कहते हैं-

आज सड़कों पर लिखे हैं सैकड़ों नारे न देख,
घर अँधेरा देख तू आकाश के तारे न देख।
दिल को बहला ले इज़ाज़त है मगर इतना न उड़,
रोज़ सपने देख लेकिन इस क़दर प्यारे न देख।

दुष्यन्त की अप्रतिम लोकप्रियता ने अपने समकालीनों तथा परिवर्तियों को प्रेरणा से आपूरित करने के साथ-साथ हिंदी ग़ज़ल जैसी संज्ञा को सहज प्रचलन में ला दिया। हिंदी में कभी भी केन्द्र में नहीं रही यह विधा देखते-देखते साहित्यिक संचेतना के परिक्षेत्र की धुरी बन गई। बुधजन और सामान्यजन सभी स्वयं को उससे सम्बद्ध महसूस करने लगे और वह युग के समस्त संवेगों की वाहिका बन गई। मुख्यतः शृंगार की सारिका रही ग़ज़ल अब दुष्यन्त के साथ क्रान्ति की कारिका बन नव्याभा से दीप्त हो उठी।

हिंदी समीक्षा के पूर्वाग्रहग्रस्त नामवर नियामक आज भी एक विशिष्ट विचार दृष्टि के नामवर बने अपने ख़ास चश्में के ख़ास-उल-ख़ास रंग से ही रचना-संसार को देखने में अभ्यस्त हैं अतः शायद उन्हें आज भी छंदोबद्ध कविता युगीन सत्य की अभिव्यक्ति में असमर्थ ही प्रतीत होगी किंतु हिंदी का सामान्य सहृदय पाठक समीक्षकों के फ़तवे पढ़कर साहित्य का पारायण नहीं करता। वह दुष्यन्त की ग़ज़लों को गुन-गुनाकर शक्ति अर्जित करता रहा है

और उनके विश्वास को प्रमाणित करता रहा है-

जो बज़्म में आये थे पर बोल नहीं पाये,
उन लोगों के हाथों में कल मेरी ग़ज़ल होगी।

एक बहुत लम्बे अरसे तक ग़ज़ल रातों के जूड़े में गजरे बाँधती रही और शयन कक्ष में नायक-नायिका की सेज की सलवटें ठीक करती रही किंतु दुष्यन्त की युगान्तकारी आवाज़ पाने के बाद उसकी भाव-मुद्रा परिवर्तित हुई, सल्तनत के ख़िलाफ बयान बनकर वह परकटे परिन्दे की उड़ान भरने की कोशिशों की साक्षी बन गई और आज वह भाषा के भोजपत्र पर विप्लव की अग्नि-ऋचा बनकर सुशोभित हो रही है।

दुष्यन्त कुमार को हिन्दी ग़ज़ल के नव्य यज्ञ-सत्र के ऋत्विक की संज्ञा देते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि परम्परा की गजदन्ती मीनारों में क़ैद ग़ज़ल को उन्मुक्त करके, उसे शाही आदाब की स्वर्ण शृंखलाओं से विमुक्त कर आम आदमी के अन्तस के स्पन्दनों का संवाहक बनाने में दुष्यन्त ने ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया। आज हिंदी की नयी ग़ज़ल में जो आवेग-उन्मेष-तुर्शी और तेजस्विता का तेवर है उसकी जन्मपत्रिका दुष्यन्त ने लिखी है।

पता- 4/10 नुनहाई,
फर्रुखाबाद-209625
मो0- 8874663158

मैंने हर चेहरे पर एक प्रश्न
उगाने की कोशिश की ?
आखिर वह कौन-सा सुख है
जो आशाओं को लोरियाँ सुना रहा है ?
पालने में पड़े हुए मांस के पिंड पर
जश्न मना रहा है ?
कौन-सा भविष्य है
जो बाँन्हें पसारे खड़ा है ?

- दुष्यन्त कुमार

व्यंग्य के पर्याय : हरिशंकर परसाई

➲ बसन्त राघव

सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार राधाकृष्ण व्यंग्य को ताना साहित्य कहते हैं। सामान्य अर्थ में व्यंग्य का अर्थ ताना मारना या फिर आलोचना करना ही समझ में आता है। व्यंग्य की व्युत्पत्ति 'वि' उपसर्ग पूर्वक अञ्ज धातु में ण्यत् प्रत्यय लगने से हुई है। व्यंग्य प्रत्यक्ष, निंदा, भर्त्सना या गालीगलौज के स्तर से इतर उदात्त संवेदनाओं से भरा होता है। व्यंग्य अर्थगत भंगिमाओं की व्यंजक अभिव्यक्ति है जो अपने चुटीले, रोचक और हास्य-विनोद के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विकृतियों पर प्रहार करके जीवन को सही दिशा प्रदान करती है।

व्यंग्य को जन्म देने वाली मानसिकता को समझें तो लगता है समाज और जीवन की विसंगतियों के आत्मबोध से व्यंग्य का जन्म होता है, अर्थात् व्यंग्य विसंगतियों की उपज होता है। वह विसंगतियों का प्रतिकार या प्रतिशोध करता है। उसके प्रतिशोध में नश्तर की तरह चुभन होती है। व्यंग्य का स्वरूप कठोर होता है। किसी भी प्रकार की विसंगति या विकृति कष्ट कारक और विनाशकारी तो होती ही है। अतः व्यंग्यकार इसी से उबरने-उबारने के लिए प्रतिशोध का सहारा लेकर व्यंग्य करता है। वह साहसी और निर्भीक होता है, क्योंकि कायर और डरपोक कभी व्यंग्य रचना कर ही नहीं सकते। हरिशंकर परसाई ने स्वयं के लिए लिखा भी है "मैंने तय किया-परसाई, डरो किसी से मत। डरे कि मरे। सीने को ऊपर कड़ा कर लो, भीतर तुम जो भी हो। ज़िम्मेदारी को गैर-ज़िम्मेदारी के साथ निभाओ।"

इसके बावजूद वह भावुक कल्पनाशील और बौद्धिक स्तर पर अनुशासित होता है, सत्ता, धर्म या व्यक्ति पर प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी कहना जोखिम भरा होता है इसलिए व्यंग्यकार अपरोक्ष या आत्मालोचना का सहारा लेता है। वह उनके बीच रहकर विसंगतियों पर प्रहार करता है। उसकी संवेदनाएं, अन्तर्मुखी, तलस्पर्शी दिव्य दृष्टि सांकेतिक गूढ़ार्थ या व्यंजक रूप में उन विसंगतियों पर गहरी चोट करती है, जिससे वह असंतुष्ट होता है, या फिर घृणा करता है। व्यंग्य घृणा की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

व्यंग्य को परिभाषित करते हुए अंग्रेज कवि "पोप" लिखते हैं "व्यंग्य हथियार होता है, जिससे सब डरते हैं। व्यंग्य सुधार के काम आता है, सीख के काम आ सकता है, ध्वंस के काम आ सकता है और हृदय परिवर्तन एवं बोध के बदलाव के भी काम आ सकता है।" पाश्चात्य विद्वान मेरीडिथ लिखते हैं "व्यंग्यकार एक सामाजिक ठेकेदार है। बहुधा वह एक सामाजिक सफाई करने वाला है। जिसका काम गंदगी के ढेर को साफ करना है।" व्यंग्य की सार्थकता पर हरिशंकर परसाई जी की मान्यता है कि "जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी

और जितनी तिलमिला देने वाली अभिव्यक्ति होगी, व्यंग्य रचना उतनी ही सार्थक होगी।" उनका यह भी मानना था कि व्यंग्य जीवन से साक्षातकार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, अत्याचारों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।" दरअसल व्यंग्य आलोच्य विषय का समीक्ष्य, बौद्धिक स्तर है। वह उन विद्रूपताओं पर इस तरह से कुठाराघात करता है कि पाठक में गहरी प्रतिक्रिया हो, जिससे वह उन सामाजिक विसंगतियों से जूझन और उनसे मुक्ति पाने के लिए विचार करे और प्रतिकार के लिए प्रेरित हो। व्यंग्य व्यक्ति और समाज का मार्गदर्शक है और व्यंग्यकार शाश्वत मूल्यों का रक्षक। समाज में फेले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियों का वह पर्दाफाश करता है।

व्यंग्य के लिए जरूरी तत्त्व है विषय सामग्री, बौद्धिक वैदग्ध्य, प्रहार का ढंग याने कि शिल्प और सामाजिक मूल्यबोध। भाव भंगिमा और भाषिक भंगिमा व्यंग्य के दो गुण हैं। जिनका समन्वय ही उसकी शिल्पगत वैशिष्ट्य है। व्यंग्यकार की प्रतिभा उसकी मौलिक सूक्ष्म व्यंजना या अर्थ झंकृति की प्रस्तुति पर निर्भर करती है, यही उसकी बौद्धिक वैदग्ध्य भी है। अपनी नवीनतम उद्भावनाओं और व्यंजनाओं के द्वारा वह सामान्य से सामान्य विषयों को भी जानदार, रोचक बना देता है। उसके हास्य-विनोद, उसकी आत्मपरक शैली के कारण वह पाठकों को आत्मीय आनंद देता है। एक व्यंग्यकार की यही सफलता है। उसकी दृष्टि यह भी तय करे कि व्यंगय का प्रभाव क्षेत्र एवं मारक दूरी कितनी विस्तृत है। व्यंग्यकार यर्थाथवादी समाजशास्त्री के रूप में जीवन दर्शन को परिभाषित करता है। उसकी प्रतिबद्धता सामाजिक, मानवीय मूल्यों के लिए होती है।

भारतीय साहित्य में व्यंग्य की शुरुआत कबीर की रचनाओं से होती है, लेकिन उसका स्वरूप पद्य था, गद्य के रूप में व्यंग्य की शुरुआत भारतेन्दु युग में हुई। उस जमाने में ज्यादातर व्यंग्य प्रहसन, और स्त्रोत शैली में ही लिखे गये। उस युग के प्रमुख व्यंग्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के अलावा प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी गणनीय थे। "अंधेर नगरी चौपट राजा" उस समय की एक कालजयी श्रेष्ठ व्यंग्य नाटिका है। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में भी सामाजिक कुरीतियों के लिए व्यंग्य किया गया है। उस युग में प्रेमचंद सहित अमृतलाल नागर, यशपाल और भगवतीचरण वर्मा की रचनाओं में उच्चकोटि के व्यंग्य मिलते हैं। द्विवेदी युग में भी व्यंग्यकार हुए, जिनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी और बालमुकुंद गुप्त आदि ने व्यंग्य विधा पर सृजन किया है। वैसे तो हास्य और व्यंग्य दोनों ही भिन्न विधाएँ हैं, हास्य बहिर्मुखी है तो व्यंग्य अन्तर्मुखी। लेकिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की रचनाओं में हास्य और व्यंग्य दोनों का समन्वय उत्कर्ष पर है, दोनों में हास्य और व्यंगय के संयुक्त बिम्ब के दर्शन होते हैं। व्यंग्य के लिए भावना, कल्पना, चिंतन की अतिशयता के साथ जटिल मानसिक अवस्था जरूरी है। यही कारण है कि निराला व्यंग्य कर सके। निराला द्वारा लिखित "कुकुरमुत्ता", बिल्लेसुर बकरिहा, नये पत्ते इस युग की श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं हैं। कुछ लोगों का मानना है कि व्यंग्य कोई स्वतंत्र विधा नहीं है वह तो सहज प्रवृत्ति है, जो अभिव्यक्ति की विविध विधाओं में मसलन उपन्यास, नाटक, लेख, कविता, निबंध आदि के रूप में लिखा जाता रहा है। लेकिन कुछ विद्वान इसे विशिष्ट विधा के रूप में स्वीकृति देते हैं। यह भी देखा गया है कि अस्सी प्रतिशत व्यंग्य निबंधात्मक हैं, और निबंध विधा में ही व्यंग्यकारों को पहचान मिली। इसका प्रमुख कारण व्यंग्य लेखन जितना निबंधों में सफल रहा है, उतना अन्य विधाओं में नहीं। निबंध में व्यंग्यकारों को आत्माभिव्यक्ति

की जितनी आजादी मिलती है, अन्य विधाओं में नहीं, व्यंग्यकार स्वतंत्रतापूर्वक अनेक संदर्भों का समायोजन कर आलोच्य विषय पर सम्यक प्रहार करता है। निबंध सृजनधर्मिता की ललित अभिव्यक्ति है। इस दृष्टि से देखें तो व्यंगय साहित्य का सम्पूर्ण विकास आधुनिक युग में ही हुआ है जिसमें सर्वप्रथम हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, रवींद्र त्यागी, लतीफ घोंघी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, डॉ. सुदर्शन मजीठिया प्रभृति व्यंग्यकार प्रमुख हैं। श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी और हरिशंकर परसाई ने गद्य के व्यंग्य को शिखर पर पहुँचाया। दूसरी पीढ़ी में स्व. लक्ष्मीकांत वैष्णव, कृष्ण चराटे, रमेश बक्षी, गोपाल चतुर्वेदी, डॉ. सूर्यबाला, डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, पूर्ण सिंह डबास, डॉ. सरोजिनी प्रीतम, डॉ. प्रेम जनमेजय, डॉ. मधुसूदन पाटिल, डॉ. रामनारायण सिंह, बलवीर त्यागी, भवानी शंकर व्यास, हरिकृष्ण दासगुप्त, धनश्याम अग्रवाल एवं सतीश कुमार शेखड़ी प्रमुख हैं। नई पीढ़ी के व्यंग्यकारों में सूर्यकांत नागर, डॉ. महेंद्र कुमार ठाकुर, गिरीश पंकज और विनोद साव, विनोद शंकर शुक्ल, डॉ. संतोष दीक्षित, महावीर अग्रवाल, शेरजंग जांगली दीपक प्रभूति का।

व्यंग्य के क्षेत्र में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा है। 21वीं सदी में डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी का नाम भी प्रमुख व्यंग्यकारों में समादृत है। वर्तमान समय में उपन्यास विधा में व्यंग्य नहीं लिखा जा रहा है। व्यंगय नाटक लिखने वालों में डॉ. श्रवण कुमार गोस्वामी और श्याम मोहन अस्थाना हैं। शरद जोशी एवं श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में जहाँ गंभीरता है तो वहीं दूसरी ओर हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में व्यापकता और आक्रामकता की तेज धार है। तलीफ घोंघी की व्यंग्य रचनाएं कहीं गुदगुदाती है तो कहीं नश्तर-सी चुभोती हैं। व्यंग्य को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए हास्य और व्यंग्य का उत्तम समायोजन जरूरी है। जिससे श्रेष्ठ लोकप्रिय व्यंग्य की सृजन हो सके एवं मध्यमार्ग ग्राह्य हो। व्यंग्य को ज्यादा उग्र, आक्रामक और हिंसक नहीं होना चाहिए, व्यंग्यकार को व्यंग्य में सरसता, सोद्देश्यता, सजीवता, रुचिता की दृष्टि से भावबोध पैदा करना चाहिए। जो कि हरिशंकर परसाई के ज्यादातर लघुकाय, आत्मपरक, विश्लेषणात्मक व्यंग्य निबंधों में देखने को मिलता है। हरिशंकर परसाई जी ने जन-साधारण से लेकर बड़े-बड़े राजनेता, बुद्धिजीवी, भागवान, महात्मा, पण्डे, पुजारी, मठाधीश, साहूकार, पूँजीपति, प्रशासक, अध्यापक, डॉक्टर, वकील, थानेदार, प्रेमी-प्रमिका, युद्धशास्त्री, अवसरवादी विविध चरित्रों को व्यंग्य के माध्यम से पाठकों के समक्ष अनावृत्त किया। हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्य उद्देश्य प्रधान होते हैं। उनकी रचनाएं पाठकों को सोचने-विचारने को बाध्य करती हैं। हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्य समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, ढोंग, अवसरवादिता, अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि कुप्रवृत्तियों पर कुठाराघात करते हैं उनकी रचनाएं हमें अपने समय के यथार्थ से रूबरू कराती हैं। उनके व्यंग्य पाठकों को आदर्श जीवन दृष्टि बोध से समृद्ध करते हैं।

उनकी सृजन धर्मिता कबीर की परंपरा को आगे बढ़ाती है। एक प्रकार से कहें तो कबीर की परंपरा को ही हरिशंकर परसाई ने अपनी गद्य विधा में विकसित किया है, उसे आगे बढ़ाया है। निःसंदेह हरिशंकर परसाई हिंदी के श्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं।

उन्होंने देश के आम लोगों की आकांक्षाओं, असफलताओं एवं जीवन संघर्षों को बहुत करीब से देखा और जिया था। विद्रूप स्थितियों से उनकी नाराजगी जब अधिक उग्र और आक्रामक हो जाती है जब आदमी, आदमी न होकर चालाकी और धूर्तता का पर्याय हो जाए। नेता, अवसरवादिता एवं मध्यवर्गीय लोक चरित्रहीनता के शिकार होने लगे। उस समय उनकी बौद्धिक संपदा संवेदनशील व्यक्तित्व, ज्ञान और अनुभव से सम्पृक्त

वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन के प्रत्येक अन्तर्विरोध का प्रतिकार करने लगता है। सामाजिक विद्रूपताओं और इनके भीतरी कारणों को हरिशंकर परसाई जी ने अपनी व्यंगय रचनाओं से पाठकों को समझाने की कोशिश की है। हरिशंकर परसाई जी का व्यंगय समाज से उपजी विसंगतियों की गहरी पड़ताल करता है। उन्होंने ही व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने में अपनी कालजयी भूमिका निभाई। उनके व्यंग्य निबंधों में चिंतन की गहनता देखी जा सकती है। एक निबंधकार के रूप में उनका व्यक्तित्व बहुत विशाल और महान था। यह अलग बात है कि शरद जोशी एवं हरिशंकर परसाई दोनों ही अपने कई व्यंग्यों में उस समय के इतिहास को तो रेखांकित करते हैं परन्तु व्यंग्यात्मक प्रभाव नहीं छोड़ पाते। जाहिर है कि व्यंग्य इतिहास नहीं होता।

उनका व्यंग्य हमें अपना-सा इसलिए भी लगता है, क्योंकि वे स्वयं पर व्यंग्य करने से भी नहीं चूकते। वे स्वयं में एक साधारण आदमी की जिंदगी को अनुभव करते हैं। वे व्यंग्य को इतने शिद्दत और आत्मीय ढंग से लिखते हैं कि पाठक को अपनेपन का अहसास होने लगता है। उन्हें पढ़ते हुए महसूस होता है जैसे वे सामने ही खड़े हो, सभी प्रश्नों के जवाबों से लैस। उनकी भाषा शैली में एक खास किस्म का अपनापन है। ऐसे व्यंग्यकार विरले ही मिलते हैं। उनकी भाषा शैली व्यंग्य के लिए सर्वथा अनुकूल थी। सरल शब्दों में लिखना उन्हें पसंद था। उनकी रचनाओं में मुहावरों, कहावतों के साथ-साथ बोलचाल से लेकर, तत्सम, अंग्रेजी शब्दों को भी स्थान दिया गया है। उनके व्यंग्य में लक्षणा और व्यंजना का कुशल प्रयोग देखते ही बनता है। उनके वाक्य लघुकाय हुआ करते हैं। संस्कृत व उर्दू शब्दों का भी उन्होंने प्रचुरता के साथ प्रयोग किया है।

हरिशंकर परसाई जी के मार्मिक एवं तर्कसंगत व्यंग्य अपने अन्य समकालीन व्यंग्यकारों से ज्यादा वैज्ञानिक और ज्यादा व्यावहारिक जान पड़ते हैं। परसाई जी का व्यंग्य इतने विशद और वृहद हैं कि उसे दो-चार लेखों में मूल्यांकित कर पाना संभव ही नहीं, उसके लिए तो दर्जनों शोध भी कम है। वे हिंदी व्यंग्य के पर्याय बन गए हैं। उनकी कालजयी रचनाएं युगों-युगों तक प्रासंगिक बनी रहेंगी। उन्होंने निबंध, कहानी, संस्मरण, उपन्यास जैसे विविध विधाओं पर खूब लिखा। लेकिन सर्वाधिक सफलता उन्हें निबंध विधा में ही मिली है। उनके व्यंग्यों में अपार संभावनाएं निहित हैं। शरद जोशी ने अपने विरोधियों के लिए व्यंग्य लिखना शुरू किया था और हरिशंकर परसाई ने जनहित के लिए। वे कबीर की तरह "कबिरा खड़ा बाज़ार में लिए लुकाटी हाथ। जो घर फूंके अपना, चले हमारे साथ।" के हिमायती थे। उन्होंने समकालीन सत्ता और नेताओं से लेकर धर्म के मठाधीशों एवं मौजूदा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है जिसके परिणामों से वे भलीभाँति परिचित होने के बावजूद वे जोखिम उठाने से नहीं चूकते। वे व्यंग्य को हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं। जिससे उनके विरोधी चारों खाने चित हो जाएं। हरिशंकर परसाई की व्यंग्य रचनाओं में सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र में फैली हुई विकृतियों और कारगुजारियों पर बहुत ही सरलता और सहजता के साथ छिद्रान्वेषण और उस पर कटाक्ष किया गया है। धर्म, जातीयता, रूढ़ परम्पराओं से उन्हें चिढ़ है। देश में व्याप्त भूखमरी, अपराध, शोषण, अनाचार, अकाल, बाढ़, युवा आक्रोश, जन-आंदोलन, साम्प्रदायिक दंगों, धार्मिक उन्माद जैसी घटनाओं, कलाकारों, बुद्धिजीवियों के दोहरे चरित्रों संधीय-पंथी सोच की सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से व्याख्या या विवेचना ही नहीं करते बल्कि धर्म, समाज, राजनीति में विद्यमान विसंगतियों को जन्म देने वाले कारकों की तह तक जाते हैं और उन तमाम विसंगतियों से मुक्ति के मार्ग तलाशते हैं।

दैनिक अमर उजाला में प्रकाशित व्यंग्य "सुनो भाई साधो" पर सिक्खों का प्रदर्शन हुआ था। अकाली आन्दोलन की विसंगतिपूर्ण भूमिका पर टिप्पणी के कारण राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से संबंधित दो युवाओं ने 21 जून, 1973 के दिन उनके निवास स्थान में उन पर आक्रमण कर दिया था। इस आक्रमण के बाद हरिशंकर परसाई जी के 24-25 जून को स्थानीय समाचार-पत्रों में "मेरा लिखना सार्थक हो गया" वक्तव्य प्रकाशित हुआ था। इन घटनाओं से यह मालूम होता है कि एक व्यंग्यकार के रूप में उनका लेखन कितना सार्थक और प्रभावशाली हुआ करता था। वे साहसी भी कम न थे। लिखते समय परिणामों की उन्हें चिंता नहीं रहती थी। सन् 1975 में राष्ट्रीय आपातकाल के समय में उन्होंने सत्ता पक्ष के विरुद्ध लिखा था। उनकी निर्भीकता और व्यंग्य की धार से प्रभावित होकर विश्वनाथ उपाध्याय ने लिखा था :-

'मुझे हरिशंकर परसाई की लंबी पतली काया बंदूक की नली-सी लगती है जिसमें से व्यंग्य भन्नाता हुआ निकलता है और जनशत्रु को छार-छारकर देता है।'

उनकी व्यंग्य रचनाओं में "पगडंडियों का जमाना" दो दर्जन से भी अधिक चुटीले व्यंग्य निबंधों का संग्रह है। संग्रहीत निबंध पूर्व में 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग' एवं 'नई कहानियाँ' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। "सदाचार का तावीज", "वैष्णव की फिसलन", "विकलांग श्रद्धा का दौर" जिसके लिए 1982 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। "प्रेमचंद के फटे जूते", "ऐसा भी सोचा जाता है" "तुलसीदास चंदन घिसैं", "हँसते हैं रोते हैं", "हम इक उम्र से वाकिफ हैं", "जैसे उनके दिन फिरे", "भोलाराम का जीव", हिंदी की श्रेष्ठ व्यंग्य कहानी संग्रह है। जिसमें सरकारी कार्यालयों और लालफीताशाही, ब्यूरोक्रेसी पर जमकर प्रहार किया गया है, उपन्यास "रानी नागफनी की कहानी", "तट की खोज", "ज्वाला और जल", संस्मरण "तिरछी रेखाएँ", व्यंग्य निबंध संग्रहों में "तब की बात और थी", "सदाचार का ताबीज", "भूत के पाँव पीछे", "बेईमानी की परत", "अपनी-अपनी बीमारी", "माटी कहे कुम्हार से", "तिरछी निगाहें", "काग भगोड़ा", "आवारा भीड़ के खतरे", "शिकायत मुझे भी है", "उखड़े खंभे", "बस की यात्रा", "परछाई रचनावली" इत्यादि प्रमुख हैं। हिंदी के सभी ख्यात पत्र-पत्रिकाओं में उनके स्तंभ काफी चर्चित रहे। जिनमें से कुछ प्रमुख स्तंभ इस प्रकार हैं-'नई दुनिया' में 'सुनो भई साधो'; 'नई कहानियाँ' में 'पाँचवाँ कालम' और 'उलझी-उलझी'; 'कल्पना' में 'और अंत में', "माजरा क्या है", "मेरे समकालीन" प्रमुख हैं। उनकी व्यंग्य रचनाएं धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तन जैसी श्रेष्ठ पत्रिकाओं में भी निरंतर छपतीं थीं। कुछ वर्षों तक उन्होंने "वसुधा" पत्रिका का भी संपादन कार्य किया। बाद में वित्तीय संकट के कारण वसुधा पत्रिका बंद हो गई थी।

प्रश्नात्मक शैली में लिखी गई व्यंग्य रचनाओं में हरिशंकर परसाई जी पहले तो प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं। उनके प्रश्न पाठक के मस्तिष्क को भीतर से झकझोर देते हैं। प्रश्नात्मक शैली में लिखा गया "पूछिए परछाई से" देशबंधु में उनका एक कालम निकलता था, जिसमें वे पाठकों के प्रश्नों का जवाब दिया करते थे। वह कालम भी काफी लोकप्रिय हुआ करता था। हरिशंकर परसाई जी ने अपनी कुछेक व्यंग्यों में विवेचनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। जहाँ भाषा गंभीर और संस्कृतनिष्ठ है। उदाहरण के लिए "निंदा का उद्‌गम ही हीनता और कमजोरी से होता है। मनुष्य अपनी हीनता से दबता है। वह दूसरों की निंदा करके ऐसा अनुभव करता है कि वे सब निकृष्ट हैं और वह उनसे अच्छा है। उसके अहं की इससे तुष्टि होती है।" हरिशंकर परसाई जी ने अपने समय के वर्ग चरित्र को नये प्रतीकों में गढ़ा। "एक मध्यवर्गीय कुत्ता" प्रतीकात्मक शैली

में लिखा गया व्यंगय है। मध्यवर्ग से आया हुआ बुद्धिजीवी वास्तव में सुविधा भोगी, अहंकारी और पाखंडी होता है। वह अपने अतीत के वर्ग को पहचानने से इंकार करता है, उल्टे उन पर रौब झाड़ने से बाज़ नहीं आता। प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया यह व्यंगय अत्यधिक पैनी और प्रभावशाली है। मध्यवर्गीय कुत्ता उन तमाम मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के दोगलेपन का प्रतिनिधित्व करता है। तिलस्म शैली के व्यंगय के कथांशों में रहस्य, कल्पना एवं विचित्र घटनाओं की अतिशयता होती है। हरिशंकर परसाई ने अतियथार्थ को रोमांचक और प्रभावशाली बनाने के लिए तिलस्म शैली का प्रयोग किया है। ''सदाचार का ताबीज'', ''भेड़ और भेड़िये'', ''बैताल की छब्बीसवीं कथा'', ''सत्ताईसवीं कथा'', ''अट्ठाईसवीं कथा'', हरिशंकर परसाई जी की तिलस्म शैली में लिखी गई श्रेष्ठ रचनाएं हैं। संवाद या नाटकीय कथा शैली में एकांकी की हल्की झलक होती है। हरिशंकर परसाई जी के व्यंग्यों में संवादों की भरमाद है। इसके वर्णात्मक स्थल को रंगमंचीय स्वरूप दे दें, तो इसे रंगमंच में खेला जा सकता है। इप्टा के द्वारा हरिशंकर परसाई के नाटकीय कथा शैली में लिखी गई ''अकाल उत्सव'', ''रामसिंह की ट्रेनिंग'', ''इंसपेक्टर मातादीन चांद'', जैसी व्यंग्य रचनाओं को नुक्कड़ नाटकों में सफलतापूर्वक खेला भी गया है। समानांतर कथा शैली का सर्वप्रथम प्रयोग हरिशंकर परसाई ने अपनी लघु व्यंग्य उपन्यास ''रानी केतकी की कहानी'' में किया था। इस शैली में व्यंग्यकार किसी पूर्व गंभीर रचना के आधार पर उसकी ध्वनि, अर्थवत्ता के प्रभाव को ग्रहण कर समसामयिक मूल्यों, घटनाओं के अनुरूप उसे पुनः सृजित करता है। सूत्रात्मक शैली में वाक्य छोटे किंतु अपने आप में सारगर्भित होते हैं। कहें तो गागर में सागर भरना कहावत इस शैली की विशेषता है। परसाई जी के निबंध ''निंदा रस'' में प्रयुक्त सूत्र वाक्य का कुछ उदाहरण देखिए :- 1. ''हाय री किस्मत! यह मालगुजार तो बैल के अलावा कुछ सोच ही नहीं सकता''। 2. कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते हैं। ईष्या-द्वेष से प्रेरित निंदा भी होती है। 3. पण्डित जी मंत्रियों को गमले में लगाते हैं। 4. विप्रों के पल्ले दो गुण बचे हैं-भोज और धूर्तता-सो भाई हम तो इन्हीं गुणों की रक्षा करते हैं। भावनात्मक शैली में चिंतन गौण और भावना प्रबल होती है। हरिशंकर परसाई जीवन की कटु अतियथार्थ की अभिव्यक्ति में इसी शैली का प्रयोग करते हैं। इस तरह के व्यंग्यों में उनकी भाषा सरल, व्यावहारिक, प्रवाहमान होती है और वाक्य छोटे होते हैं। ''पहला सफेद बाल'' से एक उदाहरण-''अपना कोई पुत्र नहीं। होता तो मुश्किल में पड़ जाते। क्या देते?.....''।

परसाई जी का जन्म 22 अगस्त, 1924 को मध्य प्रदेश के होशंगाबाद के जमानी ग्राम में हुआ था, और मृत्यु 10 अगस्त, 1995, जबलपुर, मध्य प्रदेश में हुई थी। उस समय उनकी आयु 72 वर्ष की थी। हरिशंकर परसाई जी के साहित्यिक योगदानों के लिये उन्हें रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर ने डी.लिट् की मानद उपाधि से नवाजा था। मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन के द्वारा सन् 1978 में उन्हें ''भवभूति सम्मान'' दिया गया था। सन् 1986 में उन्हें 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार दिया गया था एवं सन् 1984 में उन्हें मध्य प्रदेश शासन द्वारा ''शिखर सम्मान'' से सम्मानित किया गया। निश्चय ही हिंदी व्यंग्य साहित्य में उनका युगांतरकारी अग्रणी स्थान अक्षुण्य बना रहेगा।

पता- पंचवटी नगर, मकान नं. 30,
कृषि फार्म रोड, बोईरदादर, रायगढ़
छत्तीसगढ़
मो0- 8319939396

सांस्कृतिक कवि : केदारनाथ अग्रवाल

➲ डॉ. कृष्ण बिहारी लाल पाण्डेय

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि आस्था, प्रतिबद्धता या संवेदना विषय विभक्त और खण्डों में विभिन्न या अलग-अलग नहीं होती भिन्न प्रारूपों में व्यक्त होते हुए भी संवेदना की मूल प्रकृति वही रहती है। केदारनाथ अग्रवाल की रचनाधर्मिता के संबंध में यह बात पूरी तरह सच है। उनके पूरे काव्य में विविध व्यापकता होते हुए भी दृष्टि की एकता है। केदार जी कविता को "मानवीय चेतना की दिशा और दृष्टि देने वाली सक्षम इकाई मानते हैं। इस इकाई के द्वारा ही यथार्थ और आदर्श की संगतियाँ और विसंगतियाँ निरूपित आदमी को आदमी होने के लिये प्रेरित करती हैं ताकि वह समाज स्थापित हो सके जो शोषण विहीन हो।

केदारनाथ अग्रवाल ने स्वयं को सांस्कृतिक सार्थकता का समर्थक कवि कहा है। अपनी काव्य-चेतना की निर्मिति के बारे में वह कहते हैं कि 'मुझे अपने व्यक्तित्व को खोजने की आवश्यकता कभी महसूस नहीं हुई, वह मेरे आस-पास के जन-जीवन से निर्मित होता रहा है। मेरी चेतना इसी से बनती रही है।' केदार जी के रचना काल में साहित्य में अजनबीपन की जो बाहरी प्रवृत्ति अनुकृत हो रही थी उस पर वह कहते हैं-'मेरी कविता में अजनबीपन नहीं है इसलिए कि मैं अपने देश में अजनबी नहीं हुआ। अजनबी होना आदमी न होने की निशानी है। आदमी न होने का मतलब है अपने आदमियों को न समझना, अपने युग के यथार्थ को न समझना और विसंगतियों में रहकर आदमी होने से इंकार करना।'

इन कुछ आत्मस्वीकृतियों से केदार जी की कविता की अन्तर्वस्तु सामने आ जाती है। प्रतिबद्धता की सीमा तक कविता के सामाजिक दायित्व से आश्वस्त केदार जी जीवन के स्पन्दनों के बीच रहते हैं। समाज उनके अनुभवों का प्रांगण है, सौंदर्य, प्रेम और उल्लास की स्तुति उनकी अस्मिता है, पौरुष भरे मनुष्य की सकर्मकता का वह जयगान करते हैं, वह अनास्था पर लिखा आस्था का शिलालेख हैं, मृत्यु पर जीवन की जय की घोषणा है। शमशेर के अनुसार केदार जी जिस खोज की तरफ बढ़े हैं वह है समाज की सत्य प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य। अन्याय के खिलाफ और मेहनत के पक्ष में वह बेझिझक बोलते हैं। मार्क्सवादी जीवन-दर्शन को जीवन के लिये ठीक समझते हुए उसके बल पर वह जीवन की विविधता और बहुरूपता को सही दृष्टिकोण से बूझते और कहते रहे हैं। इसी जीवन दर्शन की प्रतिबद्धता के कारण मजदूर बच्चे के जन्म पर वह नयी तरह की बधाई गाते हैं-

'एक हथौड़े वाला घर में और हुआ
हाथी-सा बलवान
जहाजी हाथों वाला और हुआ।

केदार जी के अभिन्न मित्र रामविलास शर्मा कहते

हैं कि केदार केवल आंदोलन के कवि नहीं है, वह उस सब के कवि हैं जिसे मनुष्य आंदोलन के द्वारा प्राप्त करना चाहता है।

अन्याय और शोषण का प्रतिरोध उनकी साधारण प्रतिज्ञा है। इसके लिये यह उस मनुष्य को देखते हैं जो लोहा है। लोहे जैसे तपता, गलता और चलता है, जो गोली जैसा चलता है। यह जन जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है/तूफानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है जिसने सोने को खोदा/लोहे को मोड़ा/जो रवि के रथ का घोड़ा है। यह जन मारे नहीं मरेगा। जीवन की विधेयात्मकता और प्रबल रागात्मकता तथा श्रम की पूजा में वह कहते-

जिंदगी को वह गढ़ेंगे जो खदानें खोदते हैं। लौह के सोये असुर को लौह रथ में जोतते हैं। यज्ञ को, इस शक्ति श्रम को/श्रेष्ठतम में मानता हूँ। कवि, लेखक होना केदार के लिये दायित्व है और उसे उन्होंने पूरी आस्था से निभाया। उनकी चिंता है-सच साबित हो कैसे/दिन में दिन हो कैसे/झूठ मरे तो कैसे। दुःख ने उन्हें जब-जब तोड़ा वह निराशा और अवसाद में नहीं डूबे बल्कि उन्होंने अपने टूटेपन को कविता से जोड़ा अर्थात् अपने दुःख को रचनात्मकता में लगा दिया। यह केदार जी की अगंभीर गर्योक्ति नहीं है जब वह कहते हैं-'मुझे प्राप्त है जनता का बल/वह मेरी कविता का बल है/मैं उस बल से/शक्ति प्रबल से/एक नहीं सौ साल जिऊँगा।' वह घोषित करते हैं कि कविताई न मैंने पाई न चुराई। इसे मैंने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है। केदार जी की यही काव्य-चेतना, उनकी यही आत्मीय निजता उन्हें प्रकृति के अविभाज्य विस्तार तक ले जाती है। यह प्रकृति के सहचर भी हैं और सहजीवी भी हैं। केदार जी के लिये संसार दो भागों में नहीं बैठा है। वह लोक जीवन के कवि हैं। जिसमें जीवन और प्रकृति का सहज संश्लेषण होता है। अभिजात भवनों की दीवारों पर सजावट के रूप में टँगी कला वैभव की संतुष्टि है लेकिन लोक-जीवन में कला और जीवन में उसकी उपयोगिता दोनों अभिन्न हैं। केदार जी के लिये प्रकृति न भूगोल का परिवेश है, न काव्य शास्त्रीय उपादान है, न उपमानों की लायब्रेरी है। वह प्रकृति को देखते ही नहीं, उसी में रहते हैं। यह अंतर कर पाना कठिन है कि केदार जी कब घर से निकले और कब प्रकृति में पहुँच गये। वह प्रकृति से ही इन्वॉल्व होते हैं, उसी में विकसित होते हैं। प्रायः लोग बाहर की ओर वस्तुओं तक जाते हैं और उपभोक्ता की तरह उससे व्यवहार करने लगते हैं। नागर समाज प्रकृति के पास इसी भाव से जाता है। केदार जी प्रकृति को अपने जीवन में ले आते हैं। ऐसा सघन और तीव्र राग, ऐसी सौंदर्यानुभूति, प्राणों की ऐसी पुलक, संभवतः प्रकृति के अन्य किसी कवि में नहीं प्रकृति का यह अभिनंदन लोक और जन-चेतना के कवि में ही इतना सहज हो सकता है अन्यथा तो वह अमानवीय और रोमानी हो जाता है।

इसलिये शमशेर ने कहा है कि केदार नॉर्मल रोमानी कवि हैं, छायावादी रोमानी नहीं। केदार जी का रोमान उनके पूरे काव्य की तरह प्रकृति में भी पदार्थ के अपदस्थ नहीं करता। वह समान संबंधों की हार्दिकता है, अपनत्व की आत्मीयता है और भावनाओं का अदम्य आवेग है। वह धरातल से ममता से जुड़े कवि हैं। केदार जी की कविता में प्रकृति और समाज की बसाहटे अलग-अलग नहीं हैं। उनमें प्रकृति पैसिव अकर्मक या निश्चेतन नहीं है। केदार जी के लिये प्रकृति जड़ आलम्बन नहीं। वह उसमें भी प्राण डाल देते हैं। सुबह का रंग दृश्य चित्रित करते हुए वह कहते हैं-

'संगमरमर का सवेरा/और उसकी मूर्तियाँ हम/मूक,
कतार/आह! हमको शस्य श्यामा छुए चूमे भेंटे।'

विभावों की परंपरा से आगे चलकर प्रकृति हिंदी कविता में मानवीकरण तक आयी। मानवीकरण कहने से

यह ध्वनित होता है कि प्रकृति है तो मूलतः जड़ ही वह तो मनुष्य की तरह आचरण कर रही है। ऐसा मानवीकरण अभिनय लगने लगता है। केदार जी प्रकृति का मानवीकरण नहीं करते। उनके बोध में तो प्रकृति है ही चेतन नामवर सिंह ने उन्हें इसी आशय में नैसर्गिक सौंदर्य का विश्वजनीन कवि कहा है। वह कहते हैं कि वह वहाँ के कवि हैं जहाँ मनुष्य और प्रकृति साथ मिलते हैं।

'पेड़ नहीं पृथ्वी के वंशज हैं/फूल लिये फल लिये/मानव के अग्रज है।'

वह रूपक भी बाँधते हैं पर वे गढ़े हुए नहीं लगते। वह चित्रण के लिये सहज रूप से आ जाते हैं।

बिस्तर लपेट कर चल दिया अँधेरा/सूर्य की आहट पाकर/यके से आगीर देश की बेटी नदी/शह के बाहर/शिलाओं की ससुराल में पड़ी/लहँगा लहराये/लहरे लेती हैं।

केदार जी का प्राणावेग और जीवनावेश स्थिर से अधिक गतिशील चित्रों और बिम्बों में पाता है। धूप उन्हें बहुत प्रिय है। धूप प्रकाश, किरणें, मोर शीत और अँधेरे का प्रतिरोध करती है। धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने या धूप धरा पर उतरी' या 'हिम से हतसंकुचित प्रकृति' अथवा 'धीरे से पाँव धरती पर में वह प्रकाश का स्वागत करते हैं।'

केदार जी की कविता में प्रकृति और मनुष्य के जन्मजात संबंधों की अनेक चेष्टाएँ हैं-

'ताल को कँपा दिया ककड से बालक ने/ताल को कँपा दिया/ताल को नहीं अनन्त काल को कँपा दिया।

चली गई है कोई श्यामा/आँख बचाकर/नदी नहाकर/काँप रहा है अब तक/व्याकुल विकल नील जल। आज नदी बिल्कुल उदास थी।

सोई थी अपने पानी में उसके दर्पण पर/बादल का वस्त्र पड़ा था/मैंने उसको नहीं जगाया/दबे पाँव पर वापस आया।

प्रकृति के ऐसे सोमपान के लिये पूरी ऐन्द्रिय विभोरता, अकुण्ठ भाव निश्छल मुक्त मन और ललचायी आतुरता चाहिए। ऐन्द्रिय सौंदर्य-बोध का ऐसा शालीन उत्सन केदार जी ही रच सकते हैं-

'झाड़ी के एक खिले फूल ने/नीली पंखुड़ियों के एक खिले फूल ने आज मुझे काट लिया ओठ से/और मैं सचेत रहा'

धूप में सरसों की फसल का एक दृश्य तो सौंदर्य और शृंगार का अद्‌भुत चित्र है-

'चोली फटी सरस सरसों की/लहँगा गिरा फागुनी नीचे/चूनर उड़ी आकाशी नीली/नंगी हुई पहाड़ी देखो'

ये सारी क्रियाएँ सरसों पर आरोपित नहीं कर दी गयी है। यह सरसों की फसल का प्राकृतिक क्रिया व्यापार है। केन नदी केदार जी के लिये उपयोगिता का जल प्रवाह नहीं है। उन्हें उससे अनुराग है। उन्होंने उस पर कई कविताएँ लिखी हैं।

बैठा हूँ केन किनारे/दोनों हाथों में रेती है... मोद मुझे रेती देती है।

'केन किनारे पलथी मारे पत्थर पर बैठा गुमसुम/सूरज पतथर सेंक रहा है
गुमसुम में घूमूँगा केन किनारे या ही जैसे आज घूमता ये घोंघे अनमोल बटोरे/मैं घूमूँगा केन किनारे

बसन्ती हवा की चेष्टाओं का सजीव वर्णन शायद केदार से अच्छा कहीं नहीं होगा

हवा हूँ हवा में बसंती हवा हूँ चढ़ी पेड़ महुआ/थपथप मचाया/गिरी धम्म से फिर/उसे भी झकोरा/किया कान में कू/उतर कर भगी मैं/हरे खेत पहुँची/वहाँ गेहुओं में/लहर खूब मारी/पहर दो पहर क्या/अनेकों पहर तक इस में रही मैं/पथिक आ रहा था/उसी पर ढकेला/लगी जा हृदय से/कमर से चिपक कर/हँसी जोर से मैं/हँसी सब दिशाएँ/हँसी

लहलहाते/हँसे खेत सारे/हँसी चमचमाती/हँसी भूप प्यारी/बसंती हँसी में/हँसी सृष्टि सारी।'

माँझी न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता के कवि केदार जी वैसे तो रूप, रस, गंध और रंग सभी में डूबे हैं पर रंगों के प्रति उनकी विशेष आसक्ति है। उनके एक काव्य संका नाम ही है-'फूल नहीं रंग बोलते हैं। कविता से वह जो इन्द्रिय बोध जगाना चाहते हैं उसमें रंगों की भूमिका है। 'जल रहा है/जवान होकर गुलाब/खोल कर होंठ/जैसे आग/मा रही है फाग/लिखा है अग्रिम प्रकाश।' 'चन्द्रगहना से लौटती बेर कविता में तो फसलों में रंगों का ही प्रसार है-मुरैठा बाँधे हरा चना, गुलाबी फूल, नील अलसी, पीली सरसों, पोवर का नीला जल, भूरी घास, काली चिड़िया, श्वेत पंख, उजली मछली, चाँदी का खंभा रंगों के इस झिलमिलाते समारोह में सरसों का स्वयंवर हो रहा है। उसके हाथ पीले हो गये हैं। जीवन के लिये उपयोगी प्रकृति के प्रति ऐसा हर्ष और प्रशंसा भाव केदार जी की कविता की विशेषता है। पेंटिंग के लिये विविध रंग जरूरी हैं और केदार जी के पास तो रंगों का पूरा वर्णपट्ट है। यह केदार जी की जीवन के प्रति आस्था और जनवादी दृष्टि का ही प्रभाव है कि उनके प्रकृति-वर्णन में फसल, खेत, किसान की विशेष वंदना है। चन्द्रगहना से लौटती बेर कविता में चना, अलसी, सरसों के लहलहाते हर्ष को देखते-देखते केदार जी कहते हैं-प्रकृति का अनुराग अंचल हिल रहा है/इस विजन में/दूर व्यापारिक नगर से/प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है। राधा बनकर धरती नाची/नाचा हँसमुख कृषक सेवरिया के साथ ही उनकी काव्य चेतना में यह बात भी रहती है-'झड़ी न टूटे, भरे खेत उफनायें, लहरें/हरसें, हहरें/रोपें धान बढ़े, बल पायें, पौरुष पायें/हरी भरी खेती हो जाये/सुख सरसाये।

केदार जी ज्वाद के दूधिया दाने को मुँह से दबाये चिड़िया पर मुग्ध हैं क्योंकि मुझे अन्न से बहुत प्यार है। वह मानते हैं कि यह धरती मिट्टी की महिमा गाते, मिट्टी के अन्तस्तल में अपने तन की खाद मिलाते मिट्टी को जीवित रखते किसान की है। कोई आवश्यक नहीं कि वर्षा का जल जब इन खेतों में अन्न पैदा करेगा तब तक हम जीवित हों पर केदार इस भविष्य की प्रतीक्षा में ही मुग्ध है हम न रहेंगे तब भी तो ये खेत रहेंगे/खेतों पर घर-घन घहराते मेघ रहेंगे/जीवन देते प्यास बुझाते/माटी को मदमस्त बनाते/श्याम बदरिया के लहराते केश रहेंगे। सौंदर्य की इतनी छवियाँ, प्यार का ऐसा विस्तार केदार जी की कविता में सिर्फ कोमलता तक सीमित नहीं है। उन्हें पूरी प्रकृति से इतना प्यार है कि वह उसके दृढ़ और कठोर पक्ष को उतनी ही निजता देते हैं।

इस प्रकृति में हट्टे-कट्टे हाड़ों वाले, चौड़ी चकली काठी वाले, थोड़ी खेती बाड़ी रखे केवल खाते-पीते-जीते बुन्देलखण्डी किसान हैं। यहाँ तेज धार का कर्मठ पानी चट्टानों के ऊपर चढ़कर/मार रहा है घूँसे कसकर/तोड़ रहा है तट चट्टानी भी है। यहाँ हिंसा और अहिंसा की जीवन और श्रम सापेक्ष व्याख्या भी है-काटो काटो काटो करबी/साइत और कुसाइल क्या है/जीवन से बढ़ साइत क्या है/ मारो-मारो-मारो हँसिया/ हिंसा और अहिंसा क्या है/ जीवन से बढ़ हिंसा क्या है। फसल काटने का यह रूपक कितनी दूर तक जाता है/ केदार जी की कविता में कितने प्रतीकार्थ निहित रहते हैं!

श्रम करते हाथ केदार की प्रकृति का अभिन्न हिस्सा है। ये छोटे हाथ सवेरा होते ही लाल कमल से खिल उठते हैं/करनी करने को उत्सुक हो/धूप हवा में हिल उठते है/छोटे हाथ गुनी ज्ञानी हैं/मौलिक ग्रंथों को रचते हैं/जीवन के साथी ग्रंथों का/हिंदी में उत्था करते हैं/मानव की सुन्दरतम कृतियों/मानव को अर्पित करते हैं। केदार जी के बादलों के घोष में जन-जन का रोष भी शामिल रहता है। ये वे जन है जिनके हाथों में हल है, बल है, बंजर को तोड़ने

और बिना तोड़े न छोड़ने की प्रतिज्ञा है।

लोक से उपजी केदार की काव्य भाषा का यह असर है कि उसमें शब्द स्वयं अर्थ का आकार लेते हैं। यह भाषा बिम्बधर्मी होती है। केदार जी बिम्बों और दृश्यों के असाधारण चितेरे हैं। उनके शिल्प के बारे में शमशेर कहते हैं कि इधर की उसकी कविताएँ प्रेम और प्रकृति से संबंधित अपने ढले हुए सौन्दर्य में हजार शिल्पगत बारीकियों को दर्शाती है। ऐसे खुले हुए हृदय का उन्मुक्त साहसी कवि सौंदर्य और प्रेम की सुषमा और सौष्ठव पर दृष्टि डालता है तो सहज ही अपनी अनुभूतियों से हमें मोह लेता है। प्रेम की अमूर्त अभिव्यक्ति की लीक से हटकर केदार जी के प्रेम का आलम्बन भी मूर्त और ज्ञात है और वह है उनकी हे मेरी तुम पत्नी जिन्हें वह जमुना जल भी कहते हैं और स्वयं को रेती कहते हैं। इस अटल प्रेम में डूबे केदार जी लिखते हैं-'फूल तुम्हारे लिये खिला है/लाल पंखुरियाँ खोले/गजब गुलाल/हे मेरी तुम और है न इतना गीत में रस/है न इतना काव्य में रस/रूप में जितना तुम्हारे/प्राणप्यारी है भरा रस।'

उनके हम उम्र और मित्र कवि नागार्जुन ने बाँदा से लौटकर केदार जी पर जो कविता लिखी वह एक जन कवि द्वारा दूसरे जन कवि का बेहद आत्मीय अभिनंदन है।

केदार में लहरें उमड़ता परिवर्तन रूपी उत्साह है शक्ति मेरी बाहु में है/शक्ति मेरी लेखनी में/बाहु से निज लेखनी से तोड़ दूँगा में शिलाएँ/क्राँति मेरी जीवनी है।' उनके इस रचनाधर्मी अप्रतिहत विश्वास को हमारा प्रमाण कि-

इसी जन्म में इस जीवन में हमको तुमको मान मिलेगा।
गीतों की खेती करने को पूरा हिन्दुस्तान मिलेगा।।

पता- 70, हाथीखाना, दतिया (म.प्र.)
मो0 - 9479570896

झूमते से सौरभ के साथ
लिये मिटते स्वप्नों का हार,
मधुर जो सोने का संगीत
जा रहा है जीवन के पार,
तुम्हीं अपने प्राणों में मौन
बाँध लेते उसकी झंकार।
काल की लहरों में अधिराम
बुलबुले होते अन्तर्धान
सजल उनका छोटा ऐश्वर्य
डूबता लेकर प्यासे प्राण,
समाहित हो जाती वह याद
हृदय में तेरे है पाषाण

- महादेवी वर्मा

अज्ञेय और उनका काव्य

○ डॉ. सुरेश उजाला

बीसवीं शताब्दी के हिंदी काव्य-साहित्य के महानायक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जीवन वैविध्यपूर्ण रहा है। कवि, संपादक, कथाकार आदि अनेक रूपों में अज्ञेय प्रसिद्ध है। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के सुरुचि संपन्न और सृजनधर्मी ऊर्जा से परिपूर्ण रचनाकार थे। उनका बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास से बीता। वे कुशाग्र बुद्धि के संघर्षशील, सत्यान्वेषी तथा विद्रोही स्वभाव के थे। विद्रोही स्वभाव होने के कारण उनका संपर्क क्रांतिकारियों से हुआ। अतएव स्वाधीनता संग्राम से जुड़े होने के कारण उन्हें जेल भी जाना पड़ा। जेल की अंधेरी कोठरी और एकांतवास के कारण उनकी प्रतिभा और अंतर्मुखी हो गई थी।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' कहानीकार, उपन्यासकार, कवि, लेखक एवं निबंधकार, आलोचक के रूप में हिंदी साहित्य में प्रकट हुए। अज्ञेय ने कविता संबंधी निजी मंतत्त्वों को तारसप्तकों की भूमिकाओं, अपने अनेक कविता संग्रहों के आमुखों तथा त्रिशंकु नामक औति में अभिव्यक्त किये हैं। भग्नदूत, चिंता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्र धनु रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँ के पार द्वार तथा सुनहरे शैवाल आदि-इनके कविता संग्रह हैं। अज्ञेय की कविताओं में प्रऔति वर्णन, व्यक्तिनिष्ठा, प्रणयानुभूति और दार्शनिक परिवेश आदि तत्त्व दर्शित होते हैं। अज्ञेय की प्रणय कविताओं में मानवीय प्रेम के उद्भव उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, ह्रास, अन्तर्मन, पुनरुत्थान और चरम संतुलन भी दृष्टिगोचर होते हैं। काव्य सृजन के सर्व स्वीऔत सिद्धान्त स्वान्तः सुखाय के बारे में वे लिखते हैं-"मैं स्वानृतः सुखाय नहीं लिखता, अन्य मानवों की भाँति अहं मुझमें भी मुखर है और आत्मभिव्यक्ति का महत्त्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं है।" प्रतिभाशाली कवि के कर्त्तव्य कर्मों का निर्देश करते हुए वे लिखते हैं-"जो प्रतिभावान है, जीनियस है वह इस परिस्थिति में पड़कर एक हड़कम्प पैदा कर देगा और निर्मम होकर अपना मार्ग निकालेगा, लेकिन जो जीनियस से कुछ भी कम है, उसके लिए ऐसी परिस्थिति का परिणाम केवल इतना ही होगा कि समाज द्वारा स्वीऔति पाने की जो मौलिक आवश्यकता है, व्यक्ति की वैयक्तिकता की जो पहली माँग है वह छिप जायेगी, कुण्ठित हो जायेगी।"

अज्ञेय ने हिंदी की आधुनिक कविता को वास्तविक व्यवस्थित स्वरूप देकर नयी काव्य धारा को नया मोड़ दिया। हर कवि की काव्य की ओर देखने की अपनी विशिष्ट दृष्टि होती है। कवि उस दृष्टि से काव्य की ओर देखता है। उस रचनाकार के उद्देश्य को उसकी दृष्टि प्रभावित करती है। अज्ञेय की काव्य के संदर्भ में दृष्टि से उनके काव्य के उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं। वे कविता को कवि का परम वक्तव्य मानते हैं, और कहते हैं कि उसमें ही

अखिल विश्व की पीड़ा संचित है। अज्ञेय प्रगतिकामी थे, वे सामाजिकता से अभिप्रेरित थे, वे अन्याय, शोषण, विषमता और विद्रूपता के विरुद्ध अपनी आवाज मुखर करने वाले कवि थे। उनकी कविताएं लोक संस्औति तथा प्रऔति के स्पंदनों को सामान्य आदमी की भाषा में प्रस्तुत करती है। जिनमें सूक्ष्म जीवनानुभव की व्यापकता है। बौद्धिकता और संवेदना के अनछुए रूपों के प्रसंग हैं। उनकी कविताओं में युग की चिन्ता और चिन्ता की गहराई मौजूद है। उन्होंने कल्पना और भावुकता को महत्त्व न देकर मानवीय सौंदर्य बोध को महत्त्व दिया है। उन्होंने अपनी कविताओं में मनुष्य के आंतरिक वाह्य संसार के विकास को महत्त्व दिया है। उन्होंने नये-नये प्रतिकों-बिम्बों के माध्यम से अपनी बात कही है। वे सपाटबयानी से हटकर नये प्रयोगों के माध्यम से अपनी बात रखते थे। शब्दों को मांजना, बार-बार तराशना व उनको तौलना, उनकी आदत में शुमार था। उनका मानना था कि प्रयोग कोई वाद नहीं होता। अज्ञेय का स्पष्ट मत है कि प्रयोग तो सभी कालों के कवियों ने किये है, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया था, जिनको अभेद्य मान लिया गया है।

हिंदी काव्य जगत में प्रयोगवाद का जन्म अज्ञेय द्वारा संपादित तारसप्तक से माना जाता है। संकलन में लीक से हटकर, परंपरा को छोड़ के ऐसी कविताओं को संकलित किया गया है, जिसमें संवेदनाओं-भावबोध और शिल्प की नवीनता मौजूद है। प्रथम तारसप्तक में, सर्वश्री गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामनिवास शर्मा और सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र एवं सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के बाद कविता को नयी पहचान, नयी दिशा देने का काम अज्ञेय ने ही किया। प्रगतिवादी काव्य का काव्यांदोलन के रूप में प्रविष्ट कराया। कविता ही नहीं अपितु कहानी, उपन्यास, निबंध, समीक्षा, यात्रा-वृत्तांत आदि लेखन को भी नयी दिशा, नयी भाव-भंगिमा प्रदान की। अज्ञेय का दूसरा तारसप्तक वर्ष-1951 में प्रकाशित हुआ। इसमें भवानीप्रसाद मिश्र, शकुंतला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती की रचनाएँ हैं। तीसरा तारसप्तक आठ वर्ष बाद वर्ष-1959 में प्रकाशित हुआ। जिसमें प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुँवर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना रचनाकार शामिल किये गये हैं।

अज्ञेय हिंदी कविता में प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्त्तक के रूप में जाने जाते हैं। उनकी कविताओं के केन्द्र में अन्य रचनाकारों की भाँति मनुष्य ही है, लेकिन वे रचना में आविष्कार करते चलते थे। नये शब्द नये शिल्प का विचार व्यक्ति के राग-विराग की खोज करते हैं। उन्होंने एक नयी काव्य भाषा का रचा। तारसप्तक की भूमिक में अज्ञेय ने लिखा है कि-"कवि का काव्य उसकी आवाज का सत्य है। यह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं है, व्यापक है और सत्य जितना व्यापक होगा काव्य उतना ही उत्कर्षकारी होगा।" अज्ञेय पर पाश्चात्य कवियों का भी असर रहा है। इलियट, सार्त्रकमिंग्स आदि कवियों का प्रभाव उनकी काव्यऔतियों में स्पष्ट परिलक्षित है। जहाँ इलियट की कविताओं में नये प्रतीकों, नये मुहावरों की भरमार है। वहीं अज्ञेय की कविताओं में भी नये प्रतीकों से कतई परहेज नहीं किया गया है। इलियट के काव्य में जहाँ निराशा, घुटन, अकर्मण्यता, उदासी आदि का चित्रण है। वहीं अज्ञेय की कविताओं में भी हताशा, खिन्नता आदि को देखा जा सकता है। डॉ. माचवे के अनुसार अज्ञेय की कविताओं में छायावादी अतीन्द्रिय प्रेम और प्रगतिवादी मांसल भौतिक

प्रणय को नकार कर एक नया आयाम दिया गया है।

अज्ञेय की कविताओं में नये एवं पुराने दोनों प्रकार के प्रतीकों का समावेश है। उन्होंने नये प्रतीकों के महत्त्व की प्रतिष्ठा की, स्वयं प्रतीकों को बनाया, तथा हिंदी जगत को नये प्रतिकों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। अज्ञेय ने अलंकारों के माध्यम से भी बिम्ब प्रस्तुत किये हैं बिम्बवाद काव्य में शब्दों की सीमा तय करता है। कम शब्दों में पूरा चित्र प्रस्तुत करना कवि की प्रतिभा को दर्शाता है। कहीं-कहीं अज्ञेय के प्रतीक और बिम्ब दोनों मनुष्य की स्वतंत्रता को भी अभिव्यक्ति करते हैं। दरअसल अज्ञेय की काव्य-यात्रा के विकास का समय और भारतीय स्वातंत्रता का समय एक था। सभी क्षेत्रों में आजादी का आह्वान जोरों पर था। हर क्षेत्र में विचारों के मंथन और द्वंद्व उभर रहे थे। ऐसे संक्रमण काल में अज्ञेय की कविता भी ऊर्जावान और अर्थवान साबित हो रही थी। अज्ञेय की कविता अपने समय की कविता है। साथ ही कई अर्थों में यह समय की सीमा को पार कर सर्वकालिक हो जाती है। कहीं-कहीं अज्ञेय की कविताएँ प्रश्न करती हैं और वही प्रश्न कई जगह पाठक को आगे बढ़ने के लिए उद्वेलित भी करते है। अज्ञेय की कविता में भावावेग कम बुद्धिवाद, शब्द की पकड़, उसकी अर्थवत्ता और शब्द की आत्मा से साक्षात्कार वह सब कुछ है जो गैर-रोमांटिक काव्य की भावनाओं को उजागर करता है। बहरहाल, अज्ञेय हमारे समय के अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रतिभा सम्पन्न कवि रहे हैं। उनकी भाषा गद्य और पद्य दोनों प्रभावशाली है। उन्होंने दोनों भाषाओं में नये-नये प्रयोग किये।

अज्ञेय की कविताओं में मानव-प्रेम, रूप, यौवन आनन्द, भोग तथा विरह का सजीव वर्णन है। कुछ कविताओं में वर्ग संघर्ष और संत्रास के क्षीण स्वरों के साथ आज के सजीव तनाव और दबावपूर्ण मानव जीवन का करुण क्रंदन भी सुनाई पड़ता है। अज्ञेय के मानव जीवन के तनावपूर्ण चित्रण काफी सशक्त एवं आकर्षक है। मानव जीवन में मिले क्षण को नकारात्मक दृष्टि से न लेकर सकारात्मक दृष्टि से उसका आस्वाद लेकर जीने का दर्शन अज्ञेय ने व्यक्त किया है। जो मानव जीवन की सार्थकता है। कवि अज्ञेय तथाकथित अजर अमरत्व को नकारते हैं-"अज्ञेय के मतानुसार अमरत्व इस बात में नहीं है कि मानव अनन्तकाल तक जीता चला जाये। यदि किसी को इस प्रकार का वरदान मिल भी गया है तो यह समझना चाहिए कि उसका यह जीना मर-मर के ही जीना होगा। अमरत्व जब तक काल सापेक्ष रहता है उसका महत्त्व भी संदिग्ध होता है। मानव का सच्चा अमरत्व तो एक क्षण ही कारा में ही बन्दी हो जाता है।"

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का मत था कि-मनुष्य के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि उसकी बाह्य आवश्यकताएं पूरी हो जाये यह भी उतना ही आवश्यक है कि मनुष्य के अन्तःकरण का भी विकास हो। असंस्औत मानस का व्यक्ति भौतिक रूप से संपन्न होकर भी अपने और समाज के लिए समस्या खड़ी करता है। अज्ञेय के अभिव्यक्त विचारों से पता चलता है कि अज्ञेय सदैव व्यक्ति के मन के विकास की यात्रा को महत्त्व देते रहे हैं। जो उनके साहित्य में परिलक्षित है। नये दौर में नये व्यक्ति की सफल अभिव्यक्ति हेतु नये-नये प्रयोगों एवं प्रतिकों की जरूरत थी। अज्ञेय ने यह कार्य कर हिंदी जगत पर बेहद उपकार किया है अज्ञेय के काव्य के संदर्भ में डॉ. केदार शर्मा ने कहा है कि-"यह एक तथ्य है कि कोई भी पूर्वाग्रह मुक्त पाठक उनकी प्रऔति, रुचि, दक्षता और जीने के ढंग के बारे में जानकर अपने भीतर एक प्रेरणा, विश्वास और स्फूर्ति का अनुभव किये बिना नहीं रह सकता।"

पता- 108-तकरोही, पं0 दीनदयालपुरम मार्ग,
इन्दिरा नगर, लखनऊ, उ.प्र.
मो0- 9451144480

सोहनलाल द्विवेदी का बाल-साहित्य

○ डॉ. सुरेन्द्र विक्रम

जनता के द्वारा राष्ट्रकवि कहे जाने वाले सोहनलाल द्विवेदी सही अर्थों में बच्चों के चहेते कवि थे। जहाँ एक ओर हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हें बच्चों के माई-बाप की संज्ञा से विभूषित करते हैं, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य द्विवेदी से भी एक कदम और आगे बढ़कर उन्हें बाल साहित्य के जनक के रूप में देखते हैं। हिंदी बाल साहित्य के प्रथम शोधकर्ता डॉ. हरिकृष्ण देवसरे सोहनलाल द्विवेदी की तुलना आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से करते हुए कहते हैं-

"सोहनलाल द्विवेदी बाल साहित्य के 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' हैं। आपने बाल साहित्य को उसी तरह सजाया-संवारा है, जिस प्रकार उन द्विवेदी जी ने हिंदी के खड़ी बोली साहित्य को बनाया था। अपनी अनेक रचनाओं, बाल साहित्य के लेखकों तथा प्रकाशकों को प्रोत्साहन एवं उन्हें साहित्य जगत में प्रतिष्ठा दिलाने के पुनीत आंदोलन द्वारा आपने जो कुछ किया है, उससे बाल साहित्य धन्य हुआ है।"

आज से आठ-नौ दशक पूर्व जब बच्चों के लिए साहित्य लिखने में तथाकथित साहित्यकार अपना अपमान महसूस करते थे, उस समय बाल साहित्य को ही अपने लेखन का उद्देश्य बनाने वाले सोहनलाल द्विवेदी ने कहा था-"सभी तो बड़ों के लिए लिख रहे हैं, किसी को तो नन्हें-मुन्नों के लिए, बालकों के लिए, किशोरों के लिए तथा तरुणों के लिए लिखना चाहिए। इसी उद्देश्य को सामने रखकर मैंने बाल साहित्य में ही विशेष रूप से अपने ध्यान को केंद्रित किया था, और मैं मानता हूँ जो कुछ भी लिखा है मैंने वह सभी बाल साहित्य है।"

अपने संपूर्ण लेखन को बाल साहित्य के गौरव से जोड़ने वाले द्विवेदी जी अपनी एक कविता 'युगावतार' की चर्चा करते हुए कहते हैं-"'युगावतार' कविता सातवीं-आठवीं कक्षा के छात्रों की पाठ्य-पुस्तकों में है, तब सभी कविताएँ बालकों के लिए ही तो हैं"

आज से चार दशक पूर्व सन् 1980 में लखनऊ प्रवास के दौरान बातचीत में द्विवेदी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि बाल साहित्य देखने में जितना सहज और सरल लगता है, सर्जना के स्तर पर वह उतना ही कठिन होता है। बाल साहित्य लेखन के खतरे से पं0 सोहनलाल द्विवेदी जी पूरी तरह परिचित थे, तभी तो उनका यह कहना था-

"भाषा क्लिष्ट हो जाए तो लेखक को अपनी कुर्सी छोड़नी पड़े। भावों में स्वाभाविक सारल्य न हो, अभिव्यंजना में भोलापन न झलक पड़े तो-तो लेखक केवल कलाकार ही नहीं घसियारा बन जाएगा। इन दोनों गुणों में पारंगत होने पर भी यदि कथन में नई पौध के नव-निर्माण की भावना न हुई तो भी लेखक का प्रयास सर्वथा सफल

और चिरस्थाई न होकर कालांतर में तीन कौड़ी का बन जाता है।"

बाल साहित्य लेखन के इन सारे खतरों को जानते हुए भी सोहनलाल द्विवेदी जी ने बाल साहित्य को पूरे मन से न केवल अंगीकार किया, बल्कि उसमें एक मानक भी स्थापित किया। द्विवेदी युग की महत्त्वपूर्ण बाल पत्रिका 'बाल सखा' का सन् 1957 से लेकर सन् 1967 तक पं0 लल्ली प्रसाद पाण्डेय के साथ संपादन करके भी उन्होंने हिंदी बाल साहित्यकारों की एक लंबी फौज खड़ी की। इस फौज के अनेक सिपाही लंबे समय तक बाल साहित्य की सेवा करते रहे। उनमे से कुछ आज भी बाल साहित्य सृजन कर रहे हैं। बाल सखा में निरंतर छपने वाले अनेक बाल साहित्यकार अब इस संसार से चले गए हैं परंतु उनकी रचनाएं आज भी अमर हैं।

द्विवेदी जी उस समय बाल साहित्य की डगमगाती नौका लेकर आगे बढ़े, जिस समय उसका कोई खेवनहार नहीं था। अनेक आँधी-तूफान और भयंकर झंझावातों को झेलते हुए उन्होंने बाल साहित्य को हिंदी साहित्य की मुख्यधारा से जोड़ा। बीसवीं शताब्दी के दूसरे, तीसरे और चौथे दशक में उनकी शताधिक बाल कविताएँ-बाल सखा, लल्ला, मनमोहन, मनोविनोद, तितली, मदारी आदि बच्चों की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

द्विवेदी जी की पहली बाल कविता कब प्रकाशित हुई, यह तो कहना कठिन है, परंतु उनकी बालोपयोगी कविताओं का पहला संग्रह-'दूध बताशा' सन् 1930 में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ था। दूध बताशा की कविताएँ वास्तव में बच्चों के लिए दूध बताशा ही थीं। उनमें इतनी मिठास थी कि बच्चों में सहज ही लोकप्रिय हो गए। द्विवेदी जी ने अपने जीवन के अंतिम समय तक बाल साहित्य की दो दर्जन से अधिक कृतियाँ बच्चों को भेंट की। उनकी बाल साहित्य की अब तक प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकें उल्लेखनीय हैं-दूध बताशा (सन् 1930), मोदक (सन् 1940), पाँच कहानियाँ (सन् 1940), सात कहानियाँ (सन् 1940), किसान (सन् 1940), बिगुल (सन् 1944), शिशु भारती (सन् 1949), बाल भारती (सन् 1953), झरना (सन् 1953), बच्चों के बापू (सन् 1956), बाँसुरी (सन् 1957), हँसो हँसाओ (सन् 1963), शिशु गीत (सन् 1969), यह मेरा हिंदुस्तान है (सन् 1972), तितली रानी (सन् 1974), हुआ सवेरा उठो उठो (सन् 1976), एक गुलाब (सन् 1976), गीत भारती (सन् 1979), सुनो कहानी (सन् 1983), रामू की बिल्ली (सन् 1984), फूल हमेशा मुस्काता (सन् 1984), शिशु गीतिका (सन् 1985) तथा प्यारे-प्यारे तारे चमको (सन् 1985) आदि।

युगबोध द्विवेदी जी के बालगीतों का वैशिष्ट्य है। उन्होंने खद्दर, ध्रुवतारा, चाबी का गुच्छा तथा मेरा देश से लेकर तकली, मछली, तितली और कबूतर जैसे विषयों पर एक से एक मज़ेदार और रोचक बालगीत लिखे है। उनके साहित्य पर शोध करने वाले डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा ने सोहनलाल द्विवेदी के बाल गीतों को मनोरंजन और ज्ञान-प्रेरणा का दिव्य संगम कहा है। द्विवेदी जी के बालगीतों में प्रकृति का साहचर्य, क्रीड़ा की मस्ती, राष्ट्रीयता, उद्बोधन, पर्वों की झाँकी, आगे बढ़ने की प्रेरणा तथा जीवन में कुछ अच्छा कर गुजरने का उत्साह सभी कुछ देखने को मिलता है। उन्होंने बड़ी सीधी और सरल भाषा में बच्चों का प्रकृति से सीधा प्रेरणादायक साक्षात्कार कराया है-

पर्वत कहता शीश उठाकर,
तुम भी ऊँचे बन जाओ।
सागर कहता है लहराकर,
मन में गहराई लाओ।
समझ रहे हो क्या कहती है,
उठ-उठ गिर-गिर तरल तरंग

भर-लो, भर-लो अपने मन में,
मीठी-मीठी मृदुल उमंग।
धरती कहती धैर्य न छोड़ो,
कितना ही हो सिर पर भार।
नभ कहता है फैलो इतना,
ढँक लो तुम सारा संसार।

आसमान में फहराते हुए तिरंगे को देखकर बच्चों के मन में नाना प्रकार की कल्पनाएं जन्म लेती हैं। वे मन ही मन संकल्प लेते हैं कि हम इसकी रक्षा करने में अपना तन-मन-धन सबकुछ अर्पण कर देंगे। यह देश हमारा है और हमें इस देश की रक्षा के लिए हर संकल्प को पूरा करना है। इसी भाव को द्विवेदी जी ने अपनी बाल कविता में इस प्रकार व्यक्त किया है-

हम नन्हें-नन्हें बच्चे हैं,
नादान उमर के कच्चे हैं।
पर अपनी धुन के सच्चे हैं,
हम नन्हें-नन्हें बच्चे हैं।
जननी की जय-जय गाएँगे,
भारत की ध्वजा उड़ाएँगे।
अपना पथ कभी न छोड़ेंगे,
अपना प्रण कभी न तोड़ेंगे।
हिम्मत से नाता जोड़ेंगे,
हम हिमगिरि पर चढ़ जाएँगे।
भारत की ध्वजा उड़ाएँगे।

महात्मा गाँधी और बच्चों के प्रिय चाचा पं0 जवाहरलाल नेहरू दोनों द्विवेदी जी को बहुत प्रिय थे। उनके अंदर देश-प्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। भारत की शस्य श्यामला भूमि पर जन्म लेना बड़े सौभाग्य की बात है। 'गाँधी के भारत के प्रति बच्चों में नई राष्ट्रीय भावना जगे, वे उसके निर्माण में आगे बढ़े।' इसी उद्देश्य से द्विवेदी जी ने यह आह्वान गीत लिखा था-

जन्में जहाँ थे रघुपति, जन्मी जहाँ थी सीता
श्रीकृष्ण ने सुनाई, वंशी पुनीत गीता।
गौतम ने जन्म लेकर जिसका सुयश बढ़ाया
जग को दया दिखाई, जग को दिया दिखाया।
वह युद्ध भूमि मेरी
वह बुद्ध भूमि मेरी
वह जन्मभूमि मेरी
वह मातृभूमि मेरी।

वैसे तो द्विवेदी जी का संपूर्ण बाल साहित्य समीक्षकों द्वारा सराहा गया है तथा उनकी रचनाएँ नन्हें-मुन्नों से लेकर किशोरों तक के गले का कण्ठहार बनी है, परंतु उनकी प्रसिद्धि उनके राष्ट्रीय बाल गीतों के कारण अधिक हुई है। उनके राष्ट्रीय बालगीत सहज ही चेतना का संचार कर देते हैं। नए हिंदुस्तान के निर्माण की भावना का बोध कराती हुई निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

हम स्वतंत्र भारत के बच्चे,
हम स्वतंत्र माँ की संतान।
हम सब मिल निर्माण करेंगे,
आज नया यह हिंदुस्तान।

धन्य हमारे भाग्य, हुए जो हम इस भारत में उत्पन्न।
रामकृष्ण जिस की गोदी में, खेले निसदिन परम प्रसन्न।

द्विवेदी जी ने अपनी छोटी-छोटी कविताओं के माध्यम से बच्चों के मन की बात कही है। उन्हें बात-बात में चुपके से सीख भी दी है परंतु उपदेश देकर नहीं, बल्कि बड़े ही सहज रूप में दृष्टांत देकर बुराई को छोड़कर अच्छाई को अपनाने पर बल दिया है। उनकी दृष्टि में भाग्य के भरोसे रहना ठीक नहीं है, तभी तो वे कहते हैं-

देखो नहीं हाथ की रेखा, पलटो मत पत्रा-पोथी।
मीन-मेष कुछ कर न सकेगा, ये सारी बातें थोथी।
नहीं भागय का मुख देखो तुम, अपने बनो विधाता आप।

चलो बढ़ो अपने पाँवों से, लो सारी दुनिया को नाप।
फूल-फूलकर हँसते रहते, नित सुगंध फैलाते हैं।
जो आते हैं बस उन्हीं के, मन को सुख पहुँचाते हैं
काँटे नोक निकाले रहते, बिल्कुल नहीं लजाते हैं
जो आते हैं पास उन्हीं के, तन में झट छिद जाते हैं
फूलों को सब चुन लेते हैं, लगा हृदय से करते प्यार
काँटों का कुछ मान न होता, सब देते उनको दुत्कार।

शिशु गीत छोटे बच्चों को इतना अधिक आकर्षित करते हैं कि वे उन्हें सहज ही कण्ठस्थ कर लेते हैं, परंतु शिशु गीतों की रचना अत्यंत कठिन होती है। इस कठिनाई का उल्लेख सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार निरंकार देव सेवक ने इस प्रकार किया है-"बहुत छोटे बच्चों के लिए मनोरंजक कविता लिख लेना बड़े बच्चों के लिए कविता लिखने की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन है। छोटे बच्चों का स्वभाव इतना चंचल और मनोभावनाएं इतनी उलझी होती हैं कि बड़े उन्हें प्रायः आसानी से समझ भी नहीं पाते।"

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि द्विवेदी जी ने शिशुओं के मनोभावों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है। उनके अनेक शिशु गीत बहुत लोकप्रिय हैं। उदाहरण के लिए उनके कुछ शिशु गीत प्रस्तुत है-

नटखट पांडे आए-आए
पकड़ किसी का घोड़ा लाए
घोड़े पर हो गए सवार
घोड़ा चला कदम दो-चार
नटखट थे पूरे शैतान
जमा दिए दो कोड़े तान
घोड़ा भगा छोड़ मैदान
नटखट पानी गिरे उतान।
सर-सर-सर-सर उड़ी पतंग
फर-फर-फर-फर उड़ी पतंग।
इसको काटा उसको काटा
खूब लगाया सैर सपाटा।
खूब लगाया सैर सपाटा
अब लड़ने में जुटी पतंग।
अरे, कट गई लुटी पतंग।
मीठा-मीठा होता खाजा
मीठा होता हलवा ताजा।
मीठे रसगुल्ले अनमोल
सबसे मीठे-मीठे बोल।
मीठा होता दाख-छुहारा
मीठा होता शक्करपारा।
मीठा होता रस का घोल
सबसे मीठे-मीटे बोल।

द्विवेदी जी अपनी एक कविता में बच्चे के माध्यम से सुंदरता की कामना करते हैं, उनकी सुंदरता चतुर्दिक जगत की सुंदरता है। वह सुंदरता ऐसी है जिसमें सब कुछ सुंदर ही सुंदर दिखता है। उनकी दृष्टि में यह संसार, यहाँ की चीजें, यहाँ का वातावरण सब कुछ सुंदर होगा, तो निश्चित रूप से बच्चों का मन और मस्तिष्क दोनों सुंदर होंगे। ईश्वर से यही प्रार्थना करता हुआ बच्चा अपने सुंदर बचपन की भी माँग करता है-

तन हो सुंदर, मन हो सुंदर
प्रभु मेरा जीवन हो सुंदर।
जगना सुंदर, सोना सुंदर
घर का कोना-कोना सुंदर।
प्रभु मेरा आँगन हो सुंदर
तन सुंदर मन हो सुंदर।
कपड़े सुंदर गाना सुंदर
वाणी सुंदर गाना सुंदर।
प्रभु मेरा बचपन हो सुंदर
तन हो सुंदर मन हो सुंदर।

हमारे आसपास पाए जाने वाले जानवर बच्चों को

सदैव अपनी ओर आकर्षित करते है। सुबह-सुबह बच्चे चिड़ियों की चीं-चीं और चूँ-चूँ से अपने दिन की शुरूआत करते हैं। पंचतंत्र के रचनाकार विष्णु शर्मा ने राजा के बिगड़े हुए बच्चों को सुधारने के लिए जानवरों को ही प्रतीक के रूप में चुना और उन्हें अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई। पंचतंत्र आज भी बच्चों के लिए रोचक कथाओं का ऐसा गुलदस्ता है, जिसमें सभी जगह कुछ न कुछ सीखने को मिलता है। द्विवेदी जी ने भी बच्चों को वर्णमाला सीखाने के लिए विभिन्न जानवरों की आवाजों का बड़ा रोचक प्रयोग किया है-

रामू बोला--गदहे से
गदहे पढ़ क ख ग घ यों।
गदहा पोथी लेकर बोला-
चीपों-चीपों-चीपों-चीपों।
रामू बोला--चूहे से
चूहे पढ़ अ आ इ ई।
चूहा पोथी लेकर बोला-
चीं-चीं-चीं, चीं-चीं-चीं।
रामू बोला--कुत्ते से
कुत्ते पढ़ उ ऊ ए ऐ।
कुत्ता पोथी लेकर बोला-
भों भों भों, भों भों भों।

नैतिक शिक्षा जीवन के लिए बहुत आवश्यक है, इसीलिए प्राइमरी स्तर पर नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में अनिवार्य कर दिया गया है। यही नैतिक शिक्षा अगर रोचक बालगीतों के माध्यम से दी जाए तो बच्चे उसे आसानी से ग्रहण कर लेंगे। द्विवेदी जी के अनेक रोचक बालगीतों में नैतिकता का समावेश है। ये बालगीत कहीं मनोरंजन की चाशनी में पगे हुए हैं, तो कहीं इनमें उत्साह का सागर हिलोरे ले रहा है-

खेलोगे तुम अगर फूल से, तो सुगंध फैलाओगे।
खेलोगे तुम अगर धूल से, तो गंदे बन जाओगे।
कौवे का यदि साथ करोगे, तो बोलोगे कड़वे बोल।
कोयल का यदि साथ करोगे, तो तुम दोगे मिसरी घोल।
जैसा भी रंग रँगना चाहो, घोल लो वैसा ही रंग।
अगर बड़े तुम बनना चाहो, तो तुम रहो बड़ों के संग।

सोहनलाल द्विवेदी जी की एक और बड़ी मजेदार कविता है-चाबी का गुच्छा। इस कविता में आगे लटक रहा चाबी का गुच्छा चलने के साथ-साथ, जो-जो क्रियाएँ करता है, उसका बड़ा रोचक वर्णन किया गया है। इस विषय पर मैंने कोई दूसरी बच्चों की कविता नहीं पढ़ी है। कुछ पंक्तियों का आप भी आनंद लीजिए-

चलने में देता है बहार
चाबी का गुच्छा मजेदार।
जब दादा चलते झूम-झूम
तब गुच्छा बजता घूम-घूम।
पग-पग पर खनखन झनकदार
चलने में देता है बहार
चाबी का गुच्छा मज़ेदार।

इस मजेदार गुच्छे की एक और मज़ेदार बात है कि वह पूरा अजायबघर है। उससे कितनी सारी और चीजें जुड़ी हैं जो बच्चों का सहज मनोरंजन करती हैं-

चाबियाँ, अँगूठी, दँतखुदनी
छल्ले में सब हैं, गुथी बनीं।
ले देखो इसको फेर-फार
चलने में देता है बहार
चाबी का गुच्छा मज़ेदार।

ऊपर दिये गए बालगीतों के अतिरिक्त भी द्विवेदी जी के एक से एक मज़ेदार बालगीत है, परंतु इस छोटे से आलेख में उन सभी को समेट पाना संभव नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे लखनऊ में उनके मुख से अनेक बार उनके बालगीतों को सुनने का अवसर मिला है। उनका

कविताएँ सुनाने का ढंग बिल्कुल निराला था। वे आँख मूँदकर और तन्मय होकर बालगीतों का सस्वर पाठ करते थे। उनसे जब भी बाल साहित्य की चर्चा होती थी, तो वे अपना अनुभव बताते-बताते भावुक हो जाते थे। उसमें इतनी सघनता होती थी कि कभी-कभी सामने रखी हुई गरम चाय बिल्कुल ठण्डी हो जाती थी। उनका अनुभव इतना व्यापक था कि आज से 30-35 वर्षों पूर्व के उस समय के हम युवा बाल साहित्यकार उनको सुनते हुए उसी में डूब जाते थे।

द्विवेदी जी को उत्कृष्ट बाल साहित्य लेखन के लिए अनेक प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार प्राप्त हुए थे। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा सन् 1974 में उन्हें बाल साहित्य की विशिष्ट सेवाओं के लिए पुरस्कृत किया गया था। द्विवेदी जी को कानपुर विश्वविद्यालय ने 'डॉक्टरेट' की मानद उपाधि से भी सम्मानित किया था। भारत सरकार द्वारा उन्हें 'पद्मश्री' से भी विभूषित किया गया था। उन्हें राजस्थान विद्यापीठ द्वारा सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य चूड़ामणि' से भी अलंकृत किया गया था।

आज द्विवेदी जी सशरीर हमारे बीच नहीं हैं, परंतु उनका विपुल साहित्य हमें लंबे समय तक प्रेरणा देता रहेगा। अपनी स्मरणीय बाल कविताओं के माध्यम से वे हमेशा पीढ़ी-दर-पीढ़ी याद किए जाएंगे। आज भी हिंदी और अहिंदी भाषी प्रदेशों के पाठ्यक्रमों में बच्चे उनकी कविताएँ पढ़ रहे हैं। द्विवेदी जी के साहित्य पर शोध करने वाले डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा के इन उद्‌गारों के साथ इस लेख का समापन करना मैं उचित समझता हूँ-

"द्विवेदी जी के बाल गीतों ने अनेक पड़ाव पार किए हैं, अनेक प्राकृतिक रूपों का साक्षात्कार किया है, विभिन्न पुरुषों के दर्शन किए हैं तथा जीवन और जगत के विभिन्न पक्षों का अवलोकन किया है। उनके बालगीत आधी शताब्दी से भी अधिक समय से असंख्य बच्चों को गुदगुदाने, खिलखिलाने, हँसाने, झूमाने के साथ-साथ राष्ट्रीयता, देशभक्ति और मानव सेवा का पाठ भी पढ़ा रहे हैं, साथ ही जीवन में आगे बढ़ने का संबल भी प्रदान कर रहे हैं।"

पता :- सी-1245, एम.आई.जी.
राजाजीपुरम लखनऊ (उ.प्र.)
पिन-226017
मो0- 08960285470

चाहे चमके किरण सुनहली,
चाहे हो काली बरसात।
हँसूं हमेशा हृदय खोलकर,
हँसूं खुशी से दिन रात।।
- सोहनलाल द्विवेदी

कृष्ण और बसन्त

➲ सुनीता सिंह

पुष्प की तरह खिले मन, झूम जब आये बसन्त।
कृष्ण की तरह सुहाने, हो चलें सब दिग-दिगन्त।
सुप्त चेतना जग उठे, सुन मधुर मुरली की धुन,
रंग भरी ऋतु में हृदय गीत जीवन के ले चुन।।

कृष्ण अर्थात जीवंतता। कृष्ण अर्थात त्यागपूर्ण किंतु रंग-हर्ष-उल्लास-मधुर स्वर-गीत-संगीत और झनकार से भरा जीवन। कृष्ण अर्थात कठोर शिलाखण्ड पर अति सुकोमल रंगीन पंखुड़ियों वाले पुष्प की कोपलें फूटना जो कर्कश मौसम की मार सहकर भी हँसता-खिलखिलाता हुआ सिर उठाये झूमता है। कृष्ण अर्थात रंगों भरा उत्सवी माहौल, जो धैर्यपूर्वक पतझड़ के बीतने की प्रतीक्षा पूरी होने पर उल्लास के गीत गाता है, जो रात्रि को पीली सरसों के पुष्प से टँकी धानी चूनर ओढ़े देखकर खुशी से झूम उठता है।

उत्सवधर्मिता का नाम ही कृष्ण है। संघर्षों की आँच में तपकर कुंदन बनने का नाम ही कृष्ण है, अधर्म में भी धर्म पर टिके रहने का नाम कृष्ण है, बाँसुरी जैसे किसी वाद्ययंत्र और कण्ठ से निकले मधुर स्वर व संगीत की मधुरिम धुन का गहन अंतर को विभोर कर जाना कृष्ण है। कहाँ नहीं है कृष्ण? बाह्य जगत के घट-घट में, मन-अतल की मूक या वाचाल स्वर लहरियों में प्रयास में, संघर्ष में, विचार में, वाणी में, क्षमा जैसे सद्गुणों में, हर जगह तो व्याप्त है कृष्ण। उनकी बाँसुरी की धुन पर ग्वाल-गोपी, गाय, लता, पुष्प, उपवन, नाग कौन नहीं झूम उठता?

जिस प्रकार पतझड़ को विद कर बसन्त प्रकृति में नव-जीवन का संचार करता है, उसी प्रकार मन दुख, निराशा, उदासी, पीड़ा वेदना, अवसाद इत्यादि को त्यागकर रंग-बिरंगे, उल्लास से भरे परिवेश, मिठास भरी रस वर्षा में, प्रकृति के चहुँ दिश गुंजित कर्ण-प्रिय मधुरिम संगीत में जीवन का स्वागत-सत्कार करना चाहता है। जिस प्रकार कृष्ण कालिया नाग का मर्दन कर यमुना को विष से मुक्त करते हैं, उसी प्रकार मन प्रदूषण के विष को पर्यावरण से मिटाकर निर्मल कर देना चाहता है।

कुल मिलाकर मन बसन्त हो जाना चाहता है, दूसरे शब्दों में, कृष्ण हो जाना चाहता है। कृषण भी तो यही कहते हैं कि 'ऋतुओं में मैं बसन्त हूँ। अर्थात वे उत्सव और उल्लास में सर्वत्र उपस्थित हैं। "तस्य ते वसन्तः शिरः" तैत्तिरीय ब्राह्मण की यह उक्ति कहती है कि वर्ष का सिर या शीर्ष ही बसन्त ऋतु है। अर्थात बसन्त ऋतुओं का सिरमौर है। आयुर्वेद और ज्योतिष शास्त्र चैत्र व वैशाख को बसन्त ऋतु मानते हैं। "सर्वप्रिये चारूतरं वसन्ते" अर्थात बसन्त ऋतु में सब कुछ आकर्षक, सुंदर और मनोहर ही लगता है।

कालिदास द्वारा बसन्त ऋतु के वर्णन में अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ऋतुसंहार में कही गई यह उक्ति भी सटीक है-

बसन्त पर नीचे लिखे कुछ दोहे बसन्त की प्रकृति और महत्ता का बखान कर जाते हैं-

मन पुलकित अति कर रही, शीतल मन्द बयार।
बसन्त लेकर आ गया, खुशियों का त्योहार।।
मन-मरुथल घन-शीत में, अभिलाषा निष्प्राण।
बसन्त जीवन दें चले, मिटा चले सब त्राण।
मंद-मंद बहती हवा, प्रकृति निदर्शित प्यार।
विविध पुष्प गुलमोहरें, अमलताश, कचनार।।
कोयल कू-कू कूकती, पंछी कलरव तान।
वीणा मधु स्वर गा रही, धुन बसन्त का गान।।
ठिठुरी धरती शीत से, साथे नीरस मौन।
बसन्त सरगम छेड़ता, नहीं मानता कौन?
स्वर अंकित हर फूल पर, बसन्त गाये गीत।
मौसम में भर रंग दे मन का बनके मीत।।
बसन्ती प्रज्ञा जिस हृदय, सुरभित आशावाद।
पावनता के गीत-सा, बासन्तिक मधु नाद।।
सूर्य-किरण नव धारती, नारंगी परिधान।
तरुणाई मन को मिली पतझड़ को अवसान।।
रंग-बिरंगे पुष्प से, करे प्रकृति शृंगार।
पीली सरसों में छुपी, मधु बासन्तिक धार।।
जब धरती पीताम्बरा, पीत वसन सिरमौर।
रंग ताप का शीत में, अति उर्जित यह दौर।।
मधुर-मधुर मधुमालती, मंद-मंद मकरंद।
मूक मौन मन मोहते, गुल गुलाब गुलकंद।।
बसन्त करता आगमन, ले उत्सव पीताभ।
सूर्य ऊष्मा रंग दे, जीवन का नीलाभ।।

मैं जब अपने मन को विस्तार देती हूँ तो वह स्वमेव बासन्तिक हो उठता है, कृष्ण सरीखा जीवन और धर्म से भरपूर हो उठता है। मेरे अस्तित्व का कोना-कोना जितना स्वयं को जीव-जगत के प्रेम में राग से भरपूर पाता है उतना ही, उसी समय पर ही, असीम वैराग्य का भी अनुभव कर लेता है। बिल्कुल कमल की भाँति-जल में रहकर बिना भीगे हुए, खिलते हुए, अनासक्त और आसक्त, एक साथ बिल्कुल कृष्ण की तरह। वह कभी हँसी-ठिठोली कर लेता है, कभी मौन धारण कर होनी को शिरोधार्य करता है, कभी धर्मपथ पर अकेला ही जुझते हुए चल देता है। कर्त्तव्य पालन से पीछे नहीं हट पाता मन, चाहे डग कितनी ही कठिन हो। कृष्ण की तरह लोच को महसूस कर पाता है अर्थात् हठधर्मिता से दूर, संयमित राह या यथसंभव उस संघर्ष को टालने का प्रयास करता है जिसमें निर्दोषों की क्षति संभावित हो। उसे भी अपने कृष्ण तरह लोचवान हो वह पथ या मध्यम मार्ग स्वीकार है जिससे सभी का भला हो, भले स्वयं के स्तर पर त्याग ही क्यों ना करना पड़े। लोकहित सर्वोपरि है। बसन्त भी तो लोकहित का उदाहरण है। कृष्ण बसन्त के रूप में प्रकट होकर संदेश देते हैं कि जियो और भरपूर जियो, रंगों को अपनाओ, उदासी त्यागकर उत्सव मनाओ, स्वयं पुष्प की तरह खिलो और बिना प्रतिस्पर्धा सभी को उनके मूल रूप-रंग में खिलने दो।

सकारात्मकता संक्रामक होती है, तेजी से संचरण कर माहौल को खुशनुमा बना देती है। डाक्टर का मुस्कुराता चेहरा, शान्तिमय मीठे बोल रोगी की आधी रूग्णता वैसे ही हर लेते हैं। उत्साह से भरा सकारात्मक व्यक्ति नीरस परिवेश को भी उल्लास से भर देता है, ठीक वैसे ही जैसे एक दिया भी आस-पास के घोर अंधेरे को दूर कर देता है। अगर पतझड़ अंधेरा है तो बसन्त दीपक। दीपक जला और अंधेरा दूर हुआ। बसन्त आया और पतझड़ गया। वृक्ष और पौधे नई कोपलों को उगाने के लिए रूग्ण, सूखे, पीले पत्तों-पुष्पों को गिरा देते हैं वे जाने वाले का शोक नहीं, आने

वाले का स्वागत करते हैं।

कृष्ण से भी तो जीवन-भर कुछ-न-कुछ छूटता रहा, किंतु जीवन्तता नहीं छूटी, वैराग्य रहा पर राग नहीं छूटा, अतीत की स्मृतियाँ साथ रहीं किंतु नये का स्वागत-अभिनंदन विस्मृत नहीं हुआ। निश्छल प्रेम ने पाँवों में मोह की बेड़ियाँ न पड़ने दीं, जिससे कर्त्तव्य-पथ पर चलना संभव हुआ। जो छूटा, उसके लिए किसी को दोष नहीं दिया, दण्ड देने से पूर्व खल-वृत्ति वाले को सँभालने और सुधारने का अवसर भी दिया। सर्वशक्तिमान, सुदर्शन चक्रधारी होते हुए भी बल का अभिमान पूर्ण प्रदर्शन नहीं किया अपितु शक्ति का प्रयोग अन्तिम विकल्प के रूप में किया। शिशुपाल की सौ गालियाँ भी कृष्ण की शान्त वृत्ति को विचलित कर क्रोधित नहीं सकीं और वचनानुसार सौ गालियाँ पूर्ण होने पर ही दण्ड दिया। न्याय की अन्याय पर, धर्म की अधर्म पर, सत्य पर असत्य पर और नीति की अनीति पर अन्ततः विजय दिखाई।

बसन्त भी यही बताता है। पतझड़ अन्ततः बीत जाता है और ऋतु बासन्तिक हो जाती है। मायूसी, रूखापन, उदासी, पीले सूखे पत्तों की तरह झरते हैं और उनके स्थान पर रंग-बिरंगे पुष्प, नये पत्ते, गुलाबी कोंपल सरीखी खुशियाँ, उत्साह, उत्सव, उल्लास और खुशनुमा भावों संग जीवंतता सजीव हो उठते हैं। अर्थात घोर अंधेरी रात को बीतना होता ही है और तरो-ताजा कर देने वाली सुहानी भोर आनी ही है। रात्रि में, पतझड़ में, बस थोड़े से विश्राम, थोड़ी यति, थोड़ा विराम का समय होता है, यह संक्रमण काल होता है जो भोर, बसन्त और जीवन्तता के मधुरतम स्वरूप, उच्चतम चेतना का एहसास कराने के लिए आवश्यक भी है। इसलिए उनमें भी कारण है, लय है, संगीत है, रंगों के स्याह शेड्स हैं। वहाँ भी ईश्वर की, सर्वोच्च सत्ता की, कृष्ण की, उनके श्यामल रंग की उपस्थिति है किंतु उसे जानने, महसूस करने के लिए थोड़ी गहराई में उतरना होता है। पहले कृष्ण के बासन्तिक स्वरूप, जीवंत भावों का गहन एहसास करना होता है। दोनों रूप एक-दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं।

वैराग्य का उच्चतम स्तर राग के उच्चतम स्तर को जाने बिना महसूस नहीं हो सकता। इसलिए मन को पहले बसन्त होना होगा। तभी वह पतझड़ व रात्रि में कृष्ण के स्साह रंग को देख सकेगा, तभी वह उसे सम्मानजनक विदाई दे सकेगा। तभी वह रागी भाव के साथ बीतरागी भी हो सकेगा।

मन यदि विशुद्ध आत्मिक स्वरूप से साम्यता स्थापित कर ले तो वह बसन्त हो जाएगा। अर्थात् स्वयं कृष्ण हो जाएगा। मेरा चाहना यही है कि मैं अपने मन को कृष्ण बना पाऊँ और फिर मन को बसन्त बना सकूँ अर्थात उसे जीवन से भरपूर, हर्षो-उल्लास से भरपूर कर सकूँ, जिसमें सभी की उत्सवधर्मिता के लिए स्थान हो, सह-अस्तित्व की भावना हो, मधुरता हो, खुशनुमा रंग हो, आशावादिता हो, जीवंतता हो। मैं, मेरे कृष्ण और बसन्त एक सार हो जीवन को सार्थक बना लोक को अपना योगदान दे सकें, यही प्रार्थना है उस सर्व-शक्तिमान से।

मेरे बासन्तिक कृष्ण और संतुलन आधारित जीवन दर्शन जिस प्रकार बसन्त और पतझड़ अपने आप में संपूर्ण जीवन दर्शन है उसी प्रकार मेरे कृष्ण भी स्वयं में संपूर्ण जीवन दर्शन हैं। बसन्त संतुलन, सौहार्द, सह-अस्तित्व, प्रेम, आशावाद, उत्सवधर्मिता, मधुर, अहसास, कर्म और ईश्वरीय दर्शन का संदेश लेकर आता है। कृष्ण भी यही करते हैं। वे स्याह पक्ष पर उजले पक्ष को वरीयता देते हैं और संतुलन बनाकर चलना सिखाते हैं। उनकी विशेषता है कि वे सबको अपनाते हैं किसी को छोड़ते नहीं। जीवन का चाहे कोई भी रंग हो, कृष्ण उससे परहेज

नहीं करते, उसमें रम जाते हैं। उनकी बाँसुरी सभी के मन में रच-बस जाती है। उसका माधुर्य सभी पर प्रभाव छोड़ता है। माधुर्य तो सभी द्वारा वांछित रस है और यही मानव-जीवन की पराकाष्ठा भी है। कृष्ण माधुर्य के चरम पर स्थित है, बल्कि माधुर्य का अवतार ही हैं।

कृष्ण मात्र मधुरता के ही प्रतीक नहीं है, वे सबसे बड़े निष्काम कर्मयोगी भी हैं। वे नटनागर हैं और पार्थसारथी भी। वे बड़े राजनीतिज्ञ हैं तो भाव-जगत के सबसे बड़े मर्मज्ञ भी। वे भगवद्गीता के उद्गाता भी है और संतुलन के साधक भी। वे योगेश्वर भी हैं और भोगेश्वर भी। वे सर्वशाक्तिमान भी हैं और रणछोड़दास भी। वे रिश्तों को पूरा सम्मान देते हैं किंतु धर्म स्थापना हेतु सच्चे कर्मयोगी की भाँति कर्मपथ पर सर्वस्व त्याग कर भी आगे बढ़ने से नहीं हिचकते। वे जितने कोमल हैं उतने ही दृढ़ व स्थिर भी। वे साकार भी हैं और निराकार भी। वे सगुण हैं और निर्गुण भी। उनमें प्रेम, मधुरता, त्याग, द्वन्द्व सभी समाहित हो जाते हैं।

कृष्ण प्रेम के प्रतीक है और प्रेम का माधुर्य हर विष को नष्ट करने की क्षमता रखता है। उसी प्रेम के सार तत्त्व में भारत की गंगा जमुनी तहजीब का संदेश समाहित है क्योंकि प्रेम के भाव को अपने शब्दों में मौलाना जफ़र अली खान (1873-1956) निम्न शेर में व्यक्त करते हैं-

"अगर किशन की तालीम आम हो जाए,
तो काम फित्त नागरों के तमाम हो जाएं।"

पाकिस्तान के राष्ट्र-गीत 'कौमी तराना' के रचनाकार मशहूर शायर हफीज़ जालंधरी (1900-1982) भी बड़े कृष्ण भक्त थे। उन्होंने 'कृशन कन्हैया' नाम से एक नज़्म लिखी जिसमें गोपियों के साथ नृत्य कर रहे कृष्ण की रासलीला के दृश्य को तुर्फ नज़ारा अर्थात विरल दृश्य बताते हुए बाँसुरी की धुन के बारे में कहा कि-

"बंसी में जो लय है,
नशा है न मय है,
कुछ और ही शय है।"

कृष्ण के माधुर्य स्वरूप अर्थात जन्म, बालपन, रास लीला, आदि के साथ उनके कर्मयोगी, योद्धा, पार्थ सारथी, उपदेशक-स्वरूप का भी उर्दू शायरी में व्यापक वर्णन है। अपनी रचना 'दिल की गीता' में ख्वाजा दिल मोहम्मद कहते हैं-

"जो अर्जुन का देखा ये रंज़ोमलाल,
ग़म-ए-सोज़ दिल में तबीयत निढाल।
नज़र दुख से बेचैन, आँखों में नम,
भगवान बोले ज़राहे करम।"

कृष्ण का उल्लेख कैफी आज़मी भी अपनी नज़्म 'फर्ज' में करते हैं-

"और फिर कृष्ण ने अर्जुन से कहा,
न कोई भाई, न बेटा, न भतीजा, न गुरू,
एक ही शक्ल उभरती है हर आईनो में
आत्मा मरती नहीं जिस्म बदल लेती है
धड़कन इस सीने की जा छुपती है उस सीने में
जिस्म लेते हैं जनम जिस्म फ़ना होते हैं
और जो इक रोज़ फना होगा वह पैदा होगा
इक कड़ी टूटती है दूसरी बन जाती है
ख़त्म यह सिलसिला-ए-ज़ीस्त भला क्या होगा
रिश्ते सौ, जज़्बे भी सौ, चेहरे भी सौ होते हैं।
फर्ज़ सौ चेहरों में शक्ल अपनी ही पहचानता है,
वही महबूब वही दोस्त वही एक अज़ीज
दिल जिसे इश्क और इदराक अमल मानता है।
ज़िन्दगी सिर्फ अमल सिर्फ अमल सिर्फ अमल
और यह बेदर्द अमल सुलह भी है जंग भी है।
अम्न की मोहनी तस्वीर में हैं जितने रंग

उन्हीं रंगों में छुपा खून का इक रंग भी है।
जंग रहमत है कि लानत, यह सवाल अब न उठा
जंग जब आ ही गयी सर पे तो रहमत होगी
दूर से देख न भड़के हुए शोलों का जलाल
इसी दोज़ख के किसी कोने में जन्नत होगी
ज़ख्म खा, ज़ख्म लगा, ज़ख्म हैं किस गिनती में
फर्ज़ ज़ख्मों को भी चुन लेता है फूलों की तरह
न कोई रंज न राहत न सिले की परवा
पाक हर गर्द से रख दिल को रसूलों की तरह
ख़ौफ़ के रूप कई होते हैं अन्दाज़ कई
प्यार समझा है जिसे ख़ौफ है वह प्यार नहीं
उंगलियाँ और गड़ा और पकड़ और पकड़
आज महबूब का बाजू है यह तलवार नहीं
साथियों दोस्तों हम आज के अर्जुन ही तो हैं।

कैफ़ी आज़मी की यह कविता महाभारत में कृष्ण व अर्जुन के मध्य हुए संवाद पर आधारित है। इस नज़्म में गीता के संदेश हैं। यह कविता सन् 1965 भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय लिखी गयी थी जिसमें कर्मयोगी की भाँति फल ईश्वर पर छोड़ते हुए अपना फर्ज़ निभाने की बात कही गयी है। यह कविता युद्ध के समय सैनिकों का हौसला भी बढ़ाती है।

जिस प्रकार बसन्त में सभी रंग, पत्र, पुष्प बिना प्रतिस्पर्धा अपने मूल स्वरूप में अंकुरण और विकास करते हैं, जिस प्रकार वे सह-अस्तित्व और निश्छल प्रेम की मधुरता का अहसास कराते हैं उसी प्रकार कृष्ण भी धार्मिक सीमाओं से परे सह-अस्तित्व और प्रेम की मधुर सार्वभौमिकता का अहसास कराते हैं। महाभारत में भी कृष्ण ने युद्ध को टालने के लिए अंत तक प्रयास किया। साम्राज्य के आधे बँटवारे की माँग त्यागकर केवल पाँच गाँव पाण्डवों के लिए जीवन-यापन हेतु माँगे, किंतु हर रास्ता बंद होने पर ही धर्म की स्थापना के लिए युद्ध होने दिया।

मशहूर शायर गौहर कानपुरी ने कृष्ण को सदियों से उर्दू शायरों के लिए महत्त्वपूर्ण हस्ती माना है। वे यह भी कहते हैं कि उर्दू कृष्ण-काव्य उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं उर्दू भाषा अर्थात बारहवीं सदी से जबसे उर्दू भाषा अस्तित्व में आयी। कृष्ण का प्रेम स्वरूप होना इसकी बड़ी वजह है।

प्रेम तो ईश्वरीय अस्ति का बोध कराता है। शुद्ध, सात्त्विक, पराकाष्ठा को पहुँचा प्रेम मोक्ष दिला सकता है, जगत का कल्याण कर सकता है, दुष्प्रवृत्तियों व खल-वृत्तियों के असुरों का समूल नाश कर सकता है, फिरवह प्रेम चाहें संसार के रचयिता (इश्क-ए-हक़ीक़ी) से हो अथवा उसकी रचना (इश्क-मज़ाज़ी) से। सूफी भक्ति-साहित्य में इश्क-ए-हक़ीक़ी के सूफ़ी दर्शन पर आधारित प्रेमाख्या धारा चली जिसने आसानी से जन-मानस को प्रभावित किया।

जीवन संतुलन के सिद्धान्त पर चलता है और अतिवादित से बचता है। संतुलन तो तभी सधता है जब लेने के साथ देना भी हो। अवधी कवि बंशीधर शुक्ल का यह गीत 'कदम-कदम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाये जा, ये जिन्दगी है कौम की, तू कौम पे लुटाए जा'-इसी भाव को वर्णित करता है। यह गीत नेताजी के आजाद हिंद फौज का भाव सृष्टि और प्रकृति को भी लौटाने का होना चाहिए जिनके कारण यह जीवन संभव होता है।

संतुलन का अभिप्राय सर्वांगीण विकास है। इसका आशय कठिनाइयों व प्रतिकूलताओं का शान्त चित्त से सरलतापूर्वक सामान कर आसानी से उनसे बाहर आना है, चाहे वे व्यक्तिगत जीवन में हों या लोक-जीवन में।

संतुलन व्यक्तिगत जीवन का कल्याण तो करता ही है, लोक का भी मंगल करता है।

'श्रीमद्भागवतगीता' का कथन है-

"मंगलाय च लोकानामं क्षेमाय च भवाय च।"

अर्थात श्रीकृष्ण का अवतार लोक के मंगल, क्षेम तथा अभ्युदय के लिए ही हुआ है। 'अहम् ब्रह्मास्मि' का सूत्र-वाक्य या महावाक्य संसार की सबसे पुरातन और सर्वोत्कृष्ट मानी जाने वाली वैदिक संस्कृति की देन है। यह संस्कृति मानती है कि ईश्वर ने यह सृष्टि बनायी है और वह स्वयं चराचर में व्याप्त है। श्रीमद्भागवत गीता में श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो' अर्थात मैं सभी प्राणियों के हृदय में बसता हूँ। 'अहम् ब्रह्मास्मि' मनुष्य को यह अहसास दिलाता है कि बड़े-बड़े सागर, पर्वत, ग्रह, समूचे ब्रह्माण्ड की रचना करने वाले अखण्ड शक्तिपुंज का ही मैं एक अंश हूँ और मुझे भी उसका तेज अपने भीतर जागृत कर सद्गुण धारण करने का प्रयास करना चाहिए। यही भाव आत्म-सम्मान, अस्तिबोध व नैतिक उन्नति का कारण बन जाता है।

मन में उपजने वाले विचार भी विभिन्न पक्ष व रंग लिए होते हैं। उनमें भी कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष होता है। वे भी चटख और फीके रंगों के विभिन्न शेड्स में डूबते उतराते हैं। वहाँ भी अनावृष्टि और अतिवृष्टि होती है।

सम्पूर्ण जीवन ही निश्चितता और अनिश्चितता के बीच झूलता रहता है। शरीर, मन व आत्मा मिलकर जीवन की दिशा-दशा तय करते हैं। चुनना-छोड़ना, पसंद-नापसंद, श्रेय-प्रेय का मंथन, आदि कितने ही तत्त्व जीवन-यात्रा में अपना प्रभाव छोड़ते हैं। इन तत्त्वों का संसार बड़ा विशाल और आकर्षण-युक्त किंतु अनिश्चित परिणामों से भरा होता है। चाणक्य-नीति से संबंधित एक सूत्र वाक्य है-

"यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवाणि नष्टमेव।।"

अर्थात जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित की ओर भागता है, उसका निश्चित भी नष्ट हो जाता है अनिश्चित तो नष्ट होता ही है।

आज छोटी-छोटी बात का बतंगड़ बन जाता है। सहनशीलता कम होती जा रही है। किसी के अपशब्द और बिगड़े बोल को स्वीकार कर आसानी से सहन कर जाना आसान नहीं होता। यहीं से मानसिक तनाव, कलह, झगड़े, पारिवारिक टूटन, सामाजिक विघटन ओर परस्पर वैमनस्य प्रारम्भ होता है जो यदि संभाला न जाये, तो विकराल रूप धर लेता है तथा किसी-न-किसी अपराध के रूप में सामने आ जाता है।

श्रीकृष्ण का जीवन यहाँ भी संदेशप्रद है। उन्हें जीवनपर्यन्त कितने ही बुरे-भले शब्द कहे गये जैसे छलिया, माखनचोर, निर्मोही, रणछोड़दास किंतु उन्होंने सभी का सहर्ष बिना किसी दुर्भाव के मुस्कुराते हुए स्वीकार किया। गांधारी के भयानक श्राप को भी बिना किसी प्रतिक्रिया के शिरोधार्य कर लिया। सर्वशक्तिमान होते हुए भी उन्होंने शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा किया और उसके अपशब्दों को शान्त भाव से सहन किया और उसके पश्चात सौ अपराध क्षमा करने का वचन पूर्ण होने के बाद ही कर्मयोगी की भाँति अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग कर उसे दण्ड दिया।

सुदामा प्रसंग भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मित्रता हर हाल में निभाये जाने का संदेश है। राजसी वैभव कृष्ण के मन में अहंकार नहीं भर सका और दीन-हीन सुदामा से उनके मिलने का तरीका अत्यन्त भाव-विभोर कर देने वाला है। आज भी मित्रता के संदर्भ में कृष्ण-सुदामा प्रसंग सबसे बड़ा उदाहरण है। दूसरी ओर सुदामा में भक्ति का पूर्ण समर्पित स्वरूप देखने को मिलता है। उन्होंने अपनी अत्यन्त दीन-हीन अवस्था में भी कृष्ण से कुछ नहीं चाहा

बल्कि, जो मिला, उसी में संतुष्ट रहे। उनके मन में अपने बालसखा के वैभव को देखकर न कुछ माँगने का भाव आया, न तुलना कर असंतोष की प्रवृत्ति जन्मी, न कभी उनसे लाभ उठाने का लोभ आया।

आज समाज विघटन और विद्रूपताओं का सामना कर रहा है। व्यक्तियों के सामाजिक संबंध विकृत और अस्थिर होने लगे हैं। व्यक्तिगत विघटन अनेक मनोविकारों की ओर ले जा रहे हैं। समाज में पवित्र और आदर्श विचारों का ह्रास हो रहा है। दिखावा, औपचारिकता व कृत्रिमता अपना दबदबा बढ़ाते जा रहे हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों पर कर्त्तव्य से अधिक बल दिये जाने के कारण संकीर्णता, स्वार्थपरता, अस्थिरता, अविश्वास और अंधविश्वास का बोलबाला होता जा रहा है। इनसे समाज में अपराध भी बढ़े हैं। आतंकवाद, बाल-अपराध, नशाखोरी, उग्रवाद आदि अप्रत्याशित और सर्वथा अनुचित घटनाओं को घटित करते हैं।

आज दूसरों की उन्नति व वैभव पीड़ा के साथ ईर्ष्या-द्वेष को तो जन्म देते ही हैं, प्रतिस्पर्धा की बढ़ती प्रवृत्ति अनैतिक और भ्रष्ट तरीकों को अपनाने से भी परहेज नहीं करने देती। गला-काट प्रतियोगिता में दूसरों को येन-केन-प्रकारेण पछाड़ने और यथासंभव नीचा दिखाने की प्रवृत्ति अपना कर स्वयं के मिथ्या दंभ को पोषित करने का चलन भी विघटनों के अनेक कारणों में से एक है। कृष्ण-सुदामा मित्रता का संदेश आर्थिक असमानता जनित अनेक मनोविकारों को दूर करने में मार्गदर्शन कर सकता है।

सभी प्रकार के विघटनों और विद्रूपताओं को समूल नष्ट करने के लिए कृष्ण को वैचारिक व कर्म के स्तर पर अपनाना आवश्यक है। इसके लिए कृष्ण और बसन्त के जीवन दर्शन का प्रसार मन के उजले पक्ष के सशक्त करेगा। जड़ो तक इस जीवन दर्शन को ले जाना होगा। बाल मस्तिष्क में स्कूली शिक्षा से ही उसे अवचेतन में उतारने पर कार्य करना होगा ताकि मानवीय व्यवहार बासन्तिक हो बेहतर समाज का निर्माण कर सके।

कृष्ण जन-जीवन में बड़े गहरे रचे-बसे हैं। कृष्ण नाम में इतनी मधुरता है कि सभी राग, धुन, ताल, लय, भाव, स्वर आदि एक नाम में सर्वाधिक मधुरता के साथ स्पन्दित व झंकृत हो उठते हैं। कला-जगत, संगीत-जगत, नृत्य-जगत के साथ प्रेम-जगत का विशाल भाव-संसार कृष्ण-स्मरण के बिना अधूरा है। भरतनाट्यम और ओडिसी जैसे नृत्य तो कृष्ण से जुड़े पदों की भाव-भीनी प्रस्तुति के लिए प्रसिद्ध है। स्थापत्य-कला, चित्र-कला, शिल्प-कला सभी कृष्ण-चरित की लीला उकेरते रहते हैं।

महाभारत में श्रीकृष्ण का जीवन-चरित और भगवद्गीता में दिया उनका उपदेश आज भी जीवन की अनेकों समस्याओं का हल बता देता है। श्रीकृष्ण के जीवन की हरेक घटना हमारे लिए कुछ-न-कुछ संदेश देती है। जैसे कालिया नाग प्रसंग की बात करें तो उसमें कुछ भी संदेश है। शिव काली तो तांडव के लिए जाने जाते हैं किंतु कृष्ण ने एक ही बार तांडव किया, वह भी कालिया नाग के फन पर जो आज भी अत्यन्त प्रसिद्ध है और साहित्य में भी इस पर काफी कुछ लिखा और गाया गया है। जैसे 'तांडव गतिमुंडन पर नाचत बनवारी।' कालिया नाग को पर्यावरण-प्रदूषण का द्योतक मान सकते हैं।

काशी के लक्खा मेले में तुलसीदास घाट पर आयोजित की जाने वाली नागनथैया लीला, जो गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा प्रारम्भ की गयी थी, उसी परिदृश्य को दोहराते हुए संदेश देती है। श्रीकृष्ण कालिया नाग रूपी प्रदूषण, जो अपने फुँकारों से यमुना के प्रवाह और गोकुल-वृन्दावन की आबो-हवा में विष घोलता है, का दर्प

भंग कर देते हैं। इसीलिए वे पर्यावरण-पुरुष का प्रतीक भी बन जाते हैं। काशी में अस्सी घाट से निषादराज घाट तक इस लीला के दर्शन हेतु गंगा की गोद में नौकाओं और बजड़ो पर भीड़ उमड़ पड़ती है।

श्रीकृष्ण कालिया मर्दन से पर्यावरण सुरक्षा का संदेश देते हैं। वे कालिया नाग की रानियों के अनुरोध पर इसी शर्त पर उसे छोड़ते हैं कि तत्काल वह यमुना छोड़कर चला जाये। आज भी आवश्यकता इस बात की है कि हम सभी नदियों व हवाओं का प्रदूषण दूर करने की दिशा में कार्य करें।

कृष्ण धरती पर अवतरित अकेले ऐसे देवता हैं जिन्होंने प्रेम करना भी सिखाया, संतुलन साधकर जीने की कला भी बताई और धर्म की स्थापना हेतु जीवन के द्वन्द्व व महाभारत में लड़ना-भिड़ना और युद्ध करना भी सिखाया। कृष्ण का व्यक्तित्व जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को छूता है। कृष्ण मानव जीवन के रूप में स्वयं को मिले समस्त कष्टों, दुखों, पीड़ाओं व लांछनाओं के हलाहल को शिव की भाँति पीकर बिना शिकायत या उफ्फ़ किये मुस्कुराते हुए कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ते चले जाते हैं। पहली ही गाली पर शिशुपाल का वध करने की क्षमता रखने वाले उसे सौ गलतियों तक सँभलने का अवसर देते हैं। श्रीकृष्ण एक ऐसी भीषण प्रचण्ड अग्नि की तरह हैं जिसमें कर्म-अकर्म, राग-द्वेष, सब आकर भस्म हो जाते हैं और परम-पावन मोक्ष निकलकर बाहर आता है।

भगवद्गीता में कृष्ण के उपदेशों ने भारत को जीवन जीने की कला सिखाने वाले विश्व-गुरू के रूप में स्थापित करने में बड़ी भूमिका निभाई है।

युद्धभूमि में शर-शय्या पर लेटे भीष्म पितामह से संवाद में एक प्रश्न के उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं-"सब कुछ ईश्वर के भरोसे छोड़कर बैठना मूर्खता होती है पितामह। ईश्वर स्वयं कुछ नहीं करते, सब मनुष्य को ही करना पड़ता है। आप मुझे भी ईश्वर कहते हैं न, तो बताइये न पितामह, मैंने स्वयं इस युद्ध में कुछ किया क्या? सब पांडवों को ही करना पड़ा न? यही प्रकृति का संविधान है। युद्ध के प्रथम दिन यही तो कहा था मैंने अर्जुन से। यही परम सत्य है।"

बसन्त प्रकृति की महत्ता और सुंदरता का निदर्शन कर जाता है। मन के भाव के अनुरूप ही घटनाक्रम की अनुभूति होती है। कृष्ण कहते हैं कि कार्य, करण और कारण तीनों ही प्रकृति में उत्पन्न होते हैं श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार प्रकृति का तात्पर्य है कृति से पहले अर्थात सृजन से पहले ही जिसकी शाश्वत उपस्थिति हो वही प्रकृति है। गायत्री महाविद्या के महामनीषी युग ऋषि आचार्य श्रीराम शर्मा श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित कृष्ण की 'प्रकृति' को व्याख्यित करते हुए लिखते हैं-

"प्रकृति को न 'नेचर' से परिभाषित करना उचित है न 'क्रिएशन' से। 'प्रकृति वस्तुतः गूढ़ शब्द है। इसका अर्थ तो योगीराज श्रीकृष्ण की जीवन दृष्टि से ही समझा जा सकता है। आज जो कुछ भी हमें दिखाई पड़ रहा है और जो नहीं भी दिखाई पड़ रहा, वह सब कुछ 'प्रकृति' है। प्रकृति इस समूचे विश्व ब्रह्माण्ड का वह मूल स्त्रोत है जिसमें से सब निकलता है और जिसमें सब विलुप्त भी हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी रूप व आकार के उद्गम व विसर्जन का नाम है प्रकृति।"

ऐसे विराट व्यक्तित्व के जीवन-चरित से साम्यता रखता बसन्त और भी अनूठा बन जाता है।

पता- सहायक मुख्य निर्वाचन अधिकारी,
उत्तर प्रदेश, लखनऊ
मो0-9454418120

मस्तेपुर की पूजा

➲ डॉ. अनिल मिश्र

लखनऊ, 17 अगस्त, दिन रविवार, प्रातः 7 बजकर 17 मिनट। मैं पूजा कर रहा था कि मोबाइल की घण्टी बजी, बजती रही, क्योंकि पूजा के समय मैं केवल पूजा करता हूँ। प्रतिदिन की तरह आज भी मेरी पूजा-"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत" की वैदिक कामना के साथ पूरी हुई। घर में उपस्थित सभी सदस्यों को प्रसाद दिया फिर स्वयं प्रसाद ग्रहण कर डाइनिंग टेबल की अपनी आरक्षित कुर्सी पर बैठ गया। डोमेस्टिक हेल्प मैना ने भरे हुए काफी मग में गुड़ और गिलाये का काढ़ा मेरे सामने रख दिया। मैंने अभी एक घूँट काढ़ा पिया ही था कि मेरे सुपौत्र बारह वर्षीय नारायण जी ने मेरा मोबाइल मुझे देते हुए कहा कि बाबा जी आप को किसी ने कॉल किया था। मोबाइल नारायण जी के हाथ से लेते हुए मैंने कॉल बैक किया।

उधर से खुशी में उछलती हुई आवाज आई-सर!...

सर! मै। पूजा बोल रही हूँ।

मैंने पूछा-कौन पूजा?

उसने कहा-सर! वही मस्तेपुर की पूजा...

मैंने कहा-मैं समझ नहीं पा रहा हूँ... कौन मस्तेपुर की पूजा?

उसने कहा-सर! आप शायद भूल गए हैं, मैं बताती हूँ सर... आज से सात साल पहले 17 अगस्त को आप मस्तेपुर आये थे... मस्तेपुर राजकीय हाईस्कूल में... पद्मभूषण अमृतलाल नागर जी के जन्मोत्सव कार्यक्रम में..

मैंने अपने सत्तर वर्षीय दिमाग की पुरानी खिड़की को अहिस्ता से खोला-सात साल पीछे झाँकने के लिए और धीरे-धीरे याद आता गया मस्तेपुर का राजकीय हाईस्कूल, पद्मभूषण अमृतलाल नागर जी का जन्मोत्सव कार्यक्रम...

इस बीच उधर से आवाज आई-कुछ याद आया सर! उस कार्यक्रम में स्कूल की छात्राओं और छात्रों ने नागर जी की कहानी और व्यंग्य रचनाओं का वाचन किया था, कुछ छात्राओं ने नृत्य भी प्रस्तुत किया था। समागत वरिष्ठ अतिथियों ने नागर जी पर अपने-अपने संस्मरण भी सुनाये थे... पर आप ने हम सभी छात्र-छात्राओं के अंतस् को झकझोर के रख दिया था अपने संबोधन से...

आप को याद है सर! हमारी प्रिंसिपल मैम ने आप सब को बताया था कि इस स्कूल में अधिकतर गरीब तबके की छात्राएं हैं और छात्र भी। मजबूरी में छात्राएं तो हाईस्कूल के बाद आगे की पढ़ाई कर ही नहीं पातीं... मैं आप के ठीक सामने बैठी थी। मैम के अनुरोध पर आप बोलने के लिए खड़े हुए...

क्या आप को याद है सर! आप ने कहा था, "यह कार्यक्रम पाँच तारा हॉल में पाँच तारा लोगों के बीच होने के बजाय, मस्तेपुर के उपेक्षित सरकारी हाईस्कूल में होना मुझे ज्यादा उपयोगी लग रहा है।

एक तरफ रसूखदारों के लाखों करोड़ का कर्ज

माफ करता, बड़े-बड़े उद्योगपतियों के आर्थिक ऐश्वर्य के साथ जीडीपी बढ़ता, स्टॉक मार्केट चढ़ाता, विकसित हो जाने के सपने दिखाता भारत और दूसरी तरफ फसल माफियाओं और सरकारी सिस्टम का शिकार, खेती की खातिर लिए गये लाख-पचास हजार का कर्ज न चुका पाने के कारण अपनी जमीन बेचता, खुदकुशी करता किसान वाला भारत, दोनों के चित्र मुझे नागर जी के चित्र पर पुष्पार्पण करते साफ दिखाई दे रहे थे।

करोड़ो रुपयों से बने इक्काना स्टेडियम और अरबों रुपये से बन रहे पलासियो माल से मात्र एक किलोमीटर पर एक बाउण्ड्री विहीन सरकारी हाईस्कूल, कुछ छोटे-छोटे क्लास रूम्स, कुछ सौम्य शिक्षिकाएँ और दूरदृष्टि वाली प्रिंसिपल सुश्री कुसुम जी के सहारे भविष्य के सपने बुनते छात्र तथा आँखों में आगे बढ़ने की ललक लिए छात्राओं से मुझे कहना है कि आप की दृढ़ संकल्प-शक्ति, सभी विपरीत परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करती, आप को फर्श से अर्श तक पहुँचा सकती है। क्या आप की परिस्थिति बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर, बाबू जगजीवन राम, श्री लालबहादुर शास्त्री, डॉ. अब्दुल कलाम, पंडित मदनमोहन मालवीय या सुश्री द्रौपदी मुर्मू जी की प्रारंभिक परिस्थितियों से अधिक विकट है? यदि नहीं तो आप को डॉ. भीमराव अंबेडकर, बाबू जगजीवन राम, श्री लालबहादुर शास्त्री, डॉ. अब्दुल कलाम, पंडित मदनमोहन मालवीय या सुश्री द्रौपदी मुर्मू बनने से कौन रोक रहा है?

आप का यह 15 साल की उम्र से 20-25 साल तक की उम्र का जीवन, यदि केवल अपने एक मात्र लक्ष्य पर केंद्रित रहेगा, तो यह आप का शेष जीवन ही नहीं बदल देगा, अपितु इस योग्य बना देगा कि आप अपने परिवार, अपने समाज, अपने क्षेत्र और अपने देश का जीवन बदल दें।

शर्त यह कि आप को अपने लक्ष्य से विकेंद्रित नहीं होना है-न इश्क फरमाना है, न शरारत करना है, न फालतू काम करना है, न फालतू बात करनी है और न ही आराम करना है, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय। अब निर्णय आप का...

हाँ, एक बात सदैव याद रखना-

"कदम बढ़े जब उसके, जिसमें सत्य, शौर्य, साहस है,
रोक सके उसके बढ़ते पग जग में किसका बस है?"

एक साँस में यह सब सुना गई पूजा ने उधर से पूछा-सर! आप को कुछ याद आया?

मैंने एक लम्बी साँस लेते हुए कहा- सब कुछ याद आ गया बेटी, बोलो फोन किसलिए किया था?

उसने कहा-मैं आप से मिलना चाहती हूँ सर!

मैंने पूछा-क्यों?

उसने कहा-सर! यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन से मेरा चयन आईपीएस में हो गया है। मैं आप से मिलकर इस सफलता की कहानी बताना चाहती हूँ, आप का आभार व्यक्त करना चाहती हूँ, आप का आशीर्वाद लेना चाहती हूँ और आगे के लिए आपसे अमूल्य मार्गदर्शन भी...

उसके हर शब्द मेरी आँखों को भिगो रहे थे, एक लम्बी गहरी साँस लेकर मैंने उससे कहा-मैं आज घर पर ही हूँ कभी भी आ जाओ और इसके साथ ही मैंने अपने आवास का पता उसे नोट करा दिया... फिर आँखें बंद कर कुछ सोचने लगा...

तब तक मैना ने डाइनिंग टेबल पर हमारे लिए नाश्ता लगा दिया था। रविवार को नारायण जी नाश्ता मेरे साथ ही करते हैं। रविवासरीय नाश्ते की सुगंध ने शायद उनकी भूख को जगा दिया था, इसलिए उन्होंने मेरी इस अल्प-समाधि को तोड़ते हुए कहा-बाबा जी, मैना बुआ ने नाश्ता लगा दिया है, क्या हम लोग अब नाश्ता शुरू करें?

मैंने कहा-अवश्य...

मैं नाश्ता तो कर रहा था, पर मेरे मानस पटल पर सात साल पुरानी मस्तेपुर के उस समारोह की रील चल रही थी-

"सात साल पहले 17 अगस्त को व्यवस्था की विद्रुपता से दो-दो हाथ करने वाले, साहित्य, संगीत और कला के पारखी 'कला वसुधा' पत्रिका के प्रधान संपादक श्री शाखा जी तथा दूरदर्शी शिक्षाविद् सुश्री कुसुम जी द्वारा संयुक्त रूप से राजकीय हाईस्कूल, मस्तेपुर, लखनऊ के प्रांगण में 'चौक साहित्य विश्वविद्यालय के कुलपति' कहलाने वाले स्वनामधन्य साहित्यकार पद्मभूषण पंडित अमृतलाल नागर जी का जन्मोत्सव कार्यक्रम मनाया गया था।

छात्र-छात्राओं द्वारा नागर जी की कहानी और व्यंग्य रचनाओं के पाठ के बाद नागर जी के साथ जुड़े वरिष्ठ साहित्यकारों, चित्रकारों ने उनके रोचक संस्मरण सुनाये थे।

विद्वान वक्ताओं ने "यशपाल जी, अमृतलाल नागर जी और भगवतीचरण वर्मा जी की लखनऊ की साहित्यिक त्रिवेणी के बारे में भी छात्र-छात्राओं को बताया था।"

नाश्ता करने के बाद नारायण जी अपने मित्रों के साथ साप्ताहिक क्रिकेट खेलने के लिए बाहर निकल गए और मैं ड्राइंग रूम में आकर पहले समाचार पत्रों को देखा और फिर टेलीविजन खोलकर अंतर्राष्ट्री समाचारों की चकल्लस देखने लगा...

दोपहर के डेढ़ बजने वाले थे कि नारायण जी हाँफते हुए ड्राइंग रूम में प्रवेश किये और मुझे जल्दी-जल्दी अवगत कराया कि आज वह सलामी बल्लेबाज के रूप में छह छक्कों और चौदह चौकों के साथ नाबाद 101 रन बनाने पर 'मैन ऑफ द मैच' घोषित हुए हैं, और इसके एवज में लगे हाथ शाम को मॉल घुमाने और आइसक्रीम खिलाने का भी वचन मुझसे ले लिया।

नारायण जी स्नान करने बाद कपड़े बदल कर मेरे पास ड्राइंग रूम में आए ही थे कि कॉल बेल बजी। उन्होंने ही दरवाजा खोला। सामने साँवली-सी लम्बी-छरहरी लड़की खड़ी थी। उसने कहा नमस्ते लिटिल मास्टर, मैं पूजा हूँ। क्या मैं अंदर आ सकती हूँ?

नारायण जी ने कहा-नमस्ते पूजा दीदी, अंदर आ जाइये, सुबह आप का ही फोन बाबा जी के पास आया था न?

हाँ, लिटिल मास्ट, मैंने ही आप के बाबा जी को फोन किया था, कहती हुई वह अंदर आ गई।

मैं सोफे पर से उठकर खड़ा हो गया, वह मेरे पास आई, चरण स्पर्श किया फिर बोली-मैं पूजा हूँ सर, मैंने ही सुबह आप को फोन किया था...

मैंने कहा-बैठो पूजा, हार्दिक बधाई तुम्हारी इस सफलता पर...

हम दोनों बैठ गए। नारायण जी पूजा के पास जाकर बोले-आप आईपीएस अधिकारी बन गईं हैं न पूजा दीदी, मैं अभी आप का मुँह मीठा कराता हूँ। पहले मिठाई फिर अपनी चाकलेट आप को खिलाऊँगा... मुझे भी आगे चलकर आपकी तरह आईपीएस अधिकारी बनना है। मैंने बाबा जी को बता दिया है... और वह दौड़ कर अंदर चले गए...

नारायण जी ने पूजा को मिठाई खिलाया फिर किसी को न देने वाली अपनी चाकलेट दिया, तब तक मैना ने चाय-नाश्ता बना लिया था, जिसे करीने से सजा कर वह सेंट्रल टेबल पर रख गई...

मैंने पूजा से कहा- चाय-नाश्ता करो पूजा...

पूजा ने चाय पीते हुए बताना शुरू किया-सर! मैं मस्तेपुर से सटे हुए एक छोटे से गाँव के मजदूर हरिजन परिवार की बेटी हूँ। मेरे माता-पिता दोनों अनपढ़ है और गाँव के ही पुराने जमीदार पांड़े बाबा के यहाँ मजदूरी करते हैं। माँ घर के अंदर का काम और पिता बाहर का काम...

सात साल पहले जब आप मस्तेपुर सरकारी हाईस्कूल आए थे, उस समय मैं उसकी स्कूल में दसवीं की छात्रा थी। पढ़ने में ठीक थी, पर दसवीं के बाद पढ़ाई बंद करने वाली थी। आप के उद्बोधन ने मेरे अन्दर आगे पढ़ने

और कुछ बनने का बीज बो दिया। मैंने आपकी पंक्तियों-

कदम बढ़े जब उसके, जिसमें सत्य, शौर्य, साहस है,

रोक सके उसके बढ़ते पग जग में किसका बस है?

को कागज पर मोटे अक्षरों में लिखकर अपने घर की मिट्टी की दीवार पर चिपका दिया और फिर मेरा एक ही लक्ष्य रह गया-पढ़ना और कुछ बनना...

हाईस्कूल का बोर्ड का रिजल्ट निकला, मैं गणित में डिस्टिंक्शन के साथ प्रथम श्रेणी में पास हो गई थी...

मेरे माता-पिता नहीं जानते थे कि प्रथम श्रेणी क्या होती है... उन्होंने कहा बिटिया अब तुमने पढ़ाई पास कर ली, अब कुछ काम-धाम देखो...

मैंने कहा-अम्मा-बाबू! मुझे शहर जाकर अभी आगे पढ़ना है, मुझे अफसर बनना है...

उनके समझ में कुछ नहीं आया पर मैं रात भर अपनी जिद पर अड़ी रही... सुबह अम्मा पाँड़े बाबा के घर झाड़ू-पोछा करने चली गईं।

उन्हें उदास देखकर पड़ाइन दादी ने पूछा-क्या बात है कबूतरी, तुम उदास दिखाई दे रही हो?

अम्मा ने कहा-का कहीं मलकिन, पुजवा जिदियाइल बा के वोके आगे पढ़इ के बा, सहर में जाइके... अफसर बनइ बदे...

पड़ाइन दादी बोलीं-अच्छा... झाड़ू-पोछा लगा के घर जाकर उसे लेकर मेरे पास आना।

अम्मा मुझे पड़ाइन दादी के पास ले गईं। मैंने पैर छू कर पड़ाइन दादी को प्रणाम किया। गाँव के सभी लोग सम्मान में पांड़े जी को बाबा और पड़ाइन को दादी बोलते हैं।

पड़ाइन दादी पढ़ी-लिखी हैं। उन्होंने स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरा और कहा तुमने गाँव का नाम रोशन किया है पूजा, मुझे बताओ आगे क्या करना चाहती हो?

सर! डूबते को जैसे तिनके का सहारा मिल गया हो। मैं सिसक पड़ी। मैंने कहा दादी मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ, अफसर बनना चाहती हूँ...

उन्होंने मेरे आँसुओं को पोछते हुए कहा-तो इसमें रोने की क्या बात है? आगे पढ़ो, अफसर बनो...

मैंने रूंधे गले से कहा-पर कैसे दादी? अम्मा-बाबू तो आगे पढ़ाना ही नहीं चाहते...

पड़ाइन दादी ने उसी स्नेह से कहा-मैं हूँ न!

सबके दुःख-सुख में सदैव खड़े रहने वाले पाँडे बाबा और पड़ाइन दादी का पूरा गाँव-जँवार सम्मान करता है। पढ़ाई-लिखाई और सम्पन्नता के बाद भी दोनों में कोई अहंकार नहीं। पर विधि का विधान वही जाने सर, जाने क्यों उसने पाँड़े बाबा और पड़ाइन दादी को हृदय विदारक दुःख दिया, उनकी 16 वर्षीय बेटी लक्ष्मी को छीन कर। उस समय वह दसवीं की छात्रा थी और अपने मामा डॉ. सौमित्र शुक्ल, जो लखनऊ के जाने-मने कार्डियोलॉजिस्ट हैं, के यहाँ रहकर लोरिटो कान्वेंट स्कूल में पढ़ती थी।

सर! पड़ाइन दादी जब यह कह रहीं थीं कि मैं हूँ न। तब पाँडे बाबा वहाँ आ गए थे। मैंने पैर छूकर उनको भी प्रणाम किया और उन्होंने सदा सुखी रहो बेटी, कह कर आशीर्वाद दिया।

पड़ाइन दादी ने उनसे कहा, "रामजी के पिता जी, कबूतरी की बिटिया पूजा प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल पास की है, वह शहर जाकर आगे पढ़ना चाहती है... अफसर बनना चाहती है।"

पाँड़े बाबा बोले-यह तो बहुत अच्छी बात है।

पड़ाइन दादी ने कहा-पर कबूतरी और खेलावन उसे आगे पढ़ाना नहीं चाहते...

पाँड़े बाबा ने कहा-फिर...

पड़ाइन दादी बोलीं-क्यों न हम इसे शहर भेज कर इसकी पढ़ाई पूरी करा दें, लक्ष्मी की आत्मा को शांति मिलेगी...

बेटी की याद में पाँड़े बाबा कुछ देर के लिए खो गए, उनकी आँखें गीली हो गईं, उन्हें गमछे से पोछते हुए उन्होंने कहा-ठीक है, आज ही आप के बड़े भैया डॉ. साहब से बात करता हूँ, किसी तरह से इसका एडमिशन गवर्नमेंट गर्ल्स कॉलेज, गोमती नगर में करा दें। वह पास पड़ेगा।

सर! कर्म ने भाग्य को जगाया और मेरा एडमिशन गवर्नमेंट गर्ल्स कॉलेज, गोमती नगर में इण्टरमीडिएट में गणित के साथ विज्ञान वर्ग में हो गया।

पाँड़े बाबा ने फीस भर दिया, नई साइकिल खरीद कर दे दिया और पड़ाइन दादी ने मेरे कॉलेज का भी नया ड्रेस और लक्ष्मी के कुछ कपड़े अपने आवास के प्रांगण में स्थित शिव मंदिर में मुझे ले जाकर दिया, साथ में अपनी भीगी पलकों के दो मोती भी...

सर! मैं पड़ाइन दादी द्वारा दिया गया कॉलेज ड्रेस धो-सुखाकर अपनी खटिया के बिस्तर के नीचे रात भर रख देती थी, सुबह वह प्रेस मिलता था। प्रतिदिन सुबह चार बजे उठ जाती थी, अम्मा-बाबू का धीरे से पैर छूती थी, फिर शौच-स्नान-ध्यान और मन ही मन शिव जी को प्रणाम। इसके बाद अम्मा-बाबू और अपने लिए खाना बनाती थी, क्योंकि अम्मा को सुबह पड़ाइन दादी के यहाँ झाड़ू-बुहारू के लिए जाना होता था। नाश्ता करने के बाद सरसों का तेल और नमक लगी चार रोटी अपने टिफिन में रखकर सुबह सात बजे साइकिल से स्कूल के लिए रवाना.. . 10-15 किलोमीटर जाना और 10-15 किलोमीटर आना, सवा घण्टे सुबह और सवा घण्टे शाम की साइकिल की सवारी में मैं दिन भर के पढ़ाये गए पाठ को दोहरा लेती थी और वह मेरे मस्तिष्क की स्थाई स्मृति में चला जाता था। लौटते समय पड़ाइन दादी के घर जाकर उनका आशीर्वाद लेना और शिव जी को एक लोटा जल चढ़ाना मेरी दिनचर्या का अंग बन गया था।

मैंने इण्टरमीडिएट में अपने कालेज में टॉप किया, फिर लखनऊ विश्वविद्यालय में एडमिशन हो गया। वही सरसों का तेल, नमक और रोटी का टिफिन, वही साइकिल। वही दिनचर्या और साइकिल चलाते समय मन ही मन पूरे दिन की पढ़ाई को दोहराना...

लखनऊ विश्वविद्यालय से गणित, सांख्यिकी और भौतिक विज्ञान के साथ बीएससी फिर सांख्यिकी में एमएससी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया।

सर! बीएससी में एडमिशन के साथ ही मैंने यूपीएससी की परीक्षा प्रथम प्रयास में अच्छे रैंक के साथ पास करने का लक्ष्य निर्धारित कर लिया था और सामान्य अध्ययन की तैयारी मैं पुस्तकालय में बैठकर और शाम को घर पहुँचने पर पड़ाइन दादी के घर जाकर टेलीविजन में यूट्यूब पर विशेषज्ञों का व्याख्यान सुनकर करने लगी थी।

मेरी लगन, मेहनत और भाग्य ने मेरा साथ दिया और एमएससी करने के बाद पहले ही प्रयास में मैंने प्रारंभिक और फिर मुख्य परीक्षा को पास कर लिया। इंटरव्यू में भी मैंने धैर्य और विश्वास के साथ सभी प्रश्नों का तार्किक उत्तर दिया।

सर! मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं आईपीएस में चयनित होऊँ, क्योंकि इस वर्दी में, मैं अपने जैसे गरीब-वंचित लोगों को त्वरित न्याय दे सकने, अपने नीचे के रैंक के दुर्व्यवहार, कदाचार, हफ्ता वसूली आदि को रोकने और बिगड़ी हुई कानून व्यवस्थ को पटरी पर लाने में अपने को सक्षम पाऊँगी, ऐसा मेरा मानना था।

और कल जब रिजल्ट आया तब शिव जी ने मेरी सुन ली, मेरा चयन आईपीएस में ही हुआ...

सर! यही है मेरी, आप को मस्तेपुर स्कूल में सुनने और गुनने के बाद की, नागर जी को नमन करती, सात साल की कहानी। मेरे माँ-बाप तो अनपढ़ हैं, पाँड़े बाबा का घर ही उनका मंदिर है और मजदूरी उनकी पूजा.. . वे नहीं जानते आईपीएस क्या होता है...

हाँ, पाँड़े बाबा और पड़ाइन दादी की खुशी का ठिकाना नहीं... पड़ाइन दादी तो कल शाम शिव जी के

मंदिर में बैठकर देर तक खुशी के आँसू बहाती रहीं...

इसके बाद पूजा लम्बी गहरी साँस लेकर चुप हो गई। उसकी कहानी सुनते हुए मेरी आँखें भीग गईं थी, मैंने उन्हें हाथ से पोछा और खड़ा होकर पूजा की पीठ को थपथपाते हुए कहा-वेलडन पूजा! तुमने मेरी चाह को चरितार्थ कर दिया।

अब यदि तुम मुझे अपना मेंटर मानती हो तो मुझे एक वचन दो, जो मैंने अपने पिता जी का दिया था-अपने वेतन के अतिरिक्त तुम अपने पूरे सेवाकाल में एक नया पैसा भी कभी, कहीं, किसी से, किसी भी तरह नहीं लोगी...

एक बात और-फटे-पुराने कपड़े पहने, खुरदुरे हाथ-पैर वाले, अपने माँ-बाप की और निःस्वार्थ भाव से तुम्हें, तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचाने वाले पाँड़े दम्पति की फोटो तुम अपने ऑफिस के अपने कक्ष के अपने सामने वाली दीवाल पर सदैव लगाये रखना। ये तस्वीरें तुम्हें, तुम्हारी जड़ों से जोड़े रखेंगी और जरूरतमंदों की बिना किसी स्वार्थ या अपेक्षा के सहायता करने के लिए तुम्हें प्रेरित करती रहेंगी...

पूजा वचन देती हुई उठ खड़ी हुई और मुझे सैलूट करते हुए कहा-जय हिंद सर!

मैंने भी उसके सैलूट का प्रत्युत्तर सैलूट से दिया-जय हिंद पूजा!

और नारायण जी, जो हमारे पास बैठकर पूजा की कहानी, पूजा की ज़बानी सुन रहे थे, उठ कर खड़े हुए और पूजा की तरफ मुँह करके एड़ियां बजाकर सैलूट किया-जय हिंद मस्तेपुर की पूजा!

पता- 510/133, न्यू हैदराबाद,
लखनऊ
पिन- 226007
मो0- 9369985700

तुमने इस तालाब में रोहू पकड़ने के लिए
छोटी-छोटी मछलियाँ चारा बनाकर फेंक दी।
हम ही खा लेते सुबह को भूख लगती है बहुत
तुमने बासी रोटियाँ नाहक उठाकर फेंक दी।
जाने कैसी उँगलिया हैं जाने क्या अंदाज है,
तुमने पत्रों को छुआ था जड़ हिलाकर फेंक दी।
इस अहाते के अँधेरे में धुआँ-सा भर गया
तुमने जलती लकड़ियाँ शायद बुझाकर फेंक दी।

- दुष्यन्त कुमार

ढुकनी

➲ श्यामल बिहारी महतो

समय का चक्र जैसे फिर से घूमा था। चेहरे बदल गये थे। मगर चेहरे के अंदर से झाँकती हुई आँखें वही थीं। उनसे बाहर लपलपाती हुई चिंगारियों और घुन लग चुकी व्यवस्था के प्रति उनका अनुराग भी उतना ही स्पष्ट था। पीपल का वो पेड़ भी वही था, जिसके नीचे आज से बीस साल पहले भी एक पंचायत लगी थी और आज भी एक पंचायत लगी है और उसमें बैठे लोग उसी तरह जाति के समीकरण, और समाज के ऊँच-नीच को समझने-समझाने की चिंता में एकत्र हुए हैं। हाँ, कुछ नहीं बदला है तो वो है मुखिया नंदलाल जी की न्यायप्रियता। आस-पास के सभी गाँवों में उनके प्रति लोगों में सम्मान था। उनकी लाठी और उनकी कर्त्तव्य-परायणता पर लोगों को आज भी पूर्ण विश्वास था। झुर्रियों से ढके होने के बावजूद उनका चेहरा तटस्थ-निर्लिप्त और निःसंग लगता था। उनके सामने अभियुक्त की जगह पर पच्चीस साल का नवयुवक कमलेश खड़ा था। संयोग है कि आज से बीस-पच्चीस साल पहले की पंचायत में कभी वहीं पर, इसका बाप झुमरू महतो भी अभियुक्त होकर खड़ा था। कमलेश दूर से बिल्कुल झुमरू-सा दिखाई पड़ता था। इस बात पर मुखिया नंदलाल तो एक बारगी चौंक पड़े थे। उन्हें विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वे कमलेश से नहीं, बल्कि झुमरू से मुखातिब है।

मुझे आज भी उस दिन की याद है, जब ठीक इसी जगह पर झुकरू मुखिया के सामने खड़ा था-अपने होने वाले बच्चे और अपनी दूसरी पत्नी की सुरक्षा का सवाल लेकर। एक ओर सारा गाँव खड़ा था, तो दूसरी ओर झुमरू और करमी और उनका प्रेम! करमी अर्थात कमलेश की माँ जो झुमरू की दूसरी पत्नी थी।

यह आज से बीस-पच्चीस साल पहले की बात है। तब कमलेश का कहीं पता नहीं था। उसका जन्म नहीं हुआ था। उसकी माँ करमी एक कोलियरी में मजदूर थी, उसका मलकटा साथी झुमरू जो विवाहित था, पर वह उसकी माँ पर आसक्त था। अब यह पता नहीं कि झुमरू की नजर उसकी माँ के हाथ में सप्ताह के आखिरी दिन अर्थात शनिवार को मिलने वाली कमाई-रुपयों पर थी या उसके शरीर पर, हो सकता है उसे सचमुच करमी से प्रेम रहा हो। मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह क्या था, जिसके चलते उसकी माँ झुमरू के निकट होती चली गई थी-संभव है वह प्रेम के अलावा सामाजिक सुरक्षा भी चाहती हो। उस दिन जब करमी ने झुमरू से पूछा था "क्या सचमुच तुम मुझसे शादी करोगे-एक मोदीन से? क्या तुम्हारी पत्नी मुझे कबूल करेगी?"

झुमरू ने अपने स्वर में दृढ़ता लाते हुए कहा था "करमी, तुम्हें साथ रखने वाला तो मैं हूँ। वो कौन होती है, मेरे फैसले पर हाँ, न कहने वाली? माना, वह मेरी पहली

पत्नी है, परंतु उसे हम खिलाते हैं, वो हमें नहीं। तुम जहाँ चाहो, कोर्ट या मंदिर में, मैं तुमसे शादी करने को तैयार हूँ।"

उन दिनों पत्नी शांति देवी की हर बात झुमरू को बुरी लगती। करमी की देह-रस में डूबी झुमरू की आँखें शांति देवी की तरफ से कुछ ऐसे फिरीं कि उसे अब शांति में बुराई के सिवाय अच्छाई नजर ही नहीं आती थी। कुल मिलाकर झुमरू का हृदय शांति देवी की तरफ से दिन-ब-दिन फटता जा रहा था। कभी उसे लगता कि पत्नी उस पर अपनी हुकूमत चलाना चाहती है। वह उफन पड़ता "तुम क्या जानो, दीन-दुनिया की बात। हम साथ-साथ खटते हैं, उसी से लोग हमसे जलते हैं। पर बोलने वालों से कभी तुम यह नहीं पूछती हो कि हम नहीं खटेंगें तो, हमारा घर परिवार कैसे चलेगा, हमारा पेट कौन भरेगा?" इस पर शांति देवी चुप लगा जाती और पति को मुलुर-मुलुर देखने लगती थी।

इधर समय के साथ-साथ करमी और झुमरू का संबंध प्रगाढ़ होता जा रहा था। तभी एक दिन नशे की हालत में करमी ने झुमरू से कहा कि वह दो माह पेट से हो गयी है। सुनकर पहले तो झुमरू ने कहा कि बच्चा गिरा दो, हमें अभी मौज-मस्ती करनी चाहिए। परंतु करमी ने ऐसा करने से साफ मना कर दिया-इंकार कर दिया "नहीं, हम ऐसा नहीं करेंगे, यह हमारे प्यार की पहली निशानी है।" लेकिन झुमरू सहमत नहीं था। वह थोड़ा वक्त चाहता था। वह नहीं चाहता था कि शादी के पहले बच्चा हो जाए।

उस दिन काम से घर पहुँचा तो काफी रात हो चुकी थी। शांति देवी बाहर खड़ी उसका इंतजार कर रही थी। देखते ही बोली "कभी तो समय पर घर आ जाओ। रात को आने से कलमुंहा कहना लोग छोड़ नहीं देंगे।" पत्नी का उलाहना झुमरू को पसंद नहीं आया-खल गया। पर अपनी नाराजगी को उसने व्यक्त नहीं होने दिया। बिगड़ने से और बिगड़ेगी, उसने सोचा। आज पहली बार उसने पत्नी के सामने खुद को कमजोर महसूस किया था। वैसे भी वह आज कल हमेशा समझौते की मुद्रा में दिखता। सामने चाहे शांति देवी खड़ी हो या फिर करमी! सो अपनी बात में नरमी लाते हुए कहा था "आज खदान में एक घटना घट गई, मुंशी बाघा सिंह सोमरी तुरीन को लेकर कहीं भाग गया...!"

शांति देवी ने इस पर कुछ नहीं बोला तो उसने आगे कहा "अब उनसे जन्में बच्चे भी राजपूत कहे जाएंगे-कहलाएंगे...।"

इस पर भी शांति देवी खामोश बनी रही। हर दिन की शिकायत का पुलिंदा उसी वक्त खुलता था। लेकिन शांति आज शांत थी, जाने क्यों? चाँद का टुकड़ा आकाश पर लटका था, और तारे झुण्ड में नजर आ रहे थे, जिसे देखते हुए आँगन की खटिया पर लेटे शांति देवी ने कहा "और अब बारी तुम्हारी है।" स्वर में व्यंग्य का पुट शामिल था। पर झुमरू ने उस पर ध्यान न देकर कहा "अगर ऐसा करूं तो बुराई क्या है? घर में "डबल" पैसे आने लगेंगे, सालों से सेठ के यहाँ बंधक पड़ा बहियार खेत छुड़ा लेंगे, घर में अनाज बढ़ जाएगा...!" झुमरू का स्वर बेहद मीठा हो गया था। उसे बोलने का सूत्र जो मिल गया था "और तुम रानी बन कर घर में राज करोगी। वह तुम्हारी चाकरी करेगी। पैसा लाकर हम तुम्हारे हाथ में धरेंगे सो अलग...।"

झुमरू हर हालत में पत्नी को मना लेना चाहा था। पर शांति देवी भी त्रिया चरित्र में झुमरू से बीस थी। हाथ नचाकर बोली "हाँ, हाँ काहे नहीं कहोगे, अभी तो वह आई भी नहीं है तो यह हाल है हमारा, घर आ जाएगी तो तुम हमें पूछोगे भी नहीं...!"

ऐन वक्त झुमरू की चाल पट पड़ जाती और वह शुतुरमुर्ग बन जाता था।

उधर अपने बढ़ते पेट पर उठ रही लोगों की

निगाहों से करमी बेहद परेशान थी। वह झुमरू से एक ही बात कहती "कुछ करो, वरना मैं जहर खा लूँगी...!"

झुमरू भी काफी गंभीर था।

और उस दिन खनखना उठी थी करमी के हाथ में काँच की चूड़ियाँ, और चूड़ियों की झनकार से चौंक उठी थी पूरी बस्ती। गाँव में बात फैलते देर नहीं लगी "झुमरू रजरप्पा मंदिर से करमी को ब्याह कर ले लाया है...।"

"करमी के बाप-भाई खफा तो थे ही, सुना तो जात-भाई वाले भी उत्तेजित हो उठे थे। बाप कुछ कहने आया तो उसने बाप से साफ बोल दिया "हमने अपनी मर्जी से शादी की है, कोई जोर जबरदस्ती से नहीं...!" दूर खड़ा भाई चिल्ला उठा "स्याला झुमरूवा ने हमारी बहन को बहका दिया है, हम भी चुप नहीं बैठेंगे...।" मौजूदा समय में चुप रहना ही झुमरू ने बेहतर समझा था।

"हम मुखिया के पास जायेंगे।" बाप गाजो मोदी बोला और उठ कर चला गया था।

झुमरू करमी को लेकर घर की ओर चला, तब तक शांति देवी को इसकी भनक लग चुकी थी। जल्दी-जल्दी उसने संझा-बाती दिया और घर के बाहर आकर खड़ी हो गई और गाँव की हवा का रूख भांपने लगी।

झुमरू की बुढ़ी माँ आँगन में खटिया पर बैठी साग टूंग-निका रही थी। तभी करमी को साथ लिए झुमरू ने आँगन में कदम रखा। सख्त चेहरा और चढ़ी हुई आँखें देखकर शांति देवी पहले ही दरवाजे से हट चुकी थी। "हम दोनों ने शादी कर ली है और अब यह हमारे साथ यहीं रहेगी।" पता नहीं यह बात झुमरू ने किससे कही थी। बेटे के स्वर की गरमी बुढ़ी माँ ने भी महसूस की, पर उसने तत्काल कुछ न कह कर दूर खड़ी शांति देवी की ओर इस भाव से देखा कि यह तुम्हारा मामला है, निपटो या चिपटो! सास के इशारे से शांति देवी को बल मिला वह हाथ नचाकर बोली "अरे, कुछ तो लाज-शरम किया होता, आज तक ढंग का ऐको घर न छार सका है, एक ही घर में सूअरों जैसा रहते हो-सूतते हो, अब इसे कहाँ रखोगे, कहाँ लेकर सूतोगे-मेरे ऊपर...?"

झुमरू का पूरा शरीर जल उठा। लगा शांति देवी को थूर कर रख देगा। आगे बढ़ा भी, पर करमी सतर्क थी। इशारे से रोक दिया उसने झुमरू को" ठीक नहीं होगा..."

फिर भी झुमरू के मुँह से गरम भाप-सा निकला "ज्यादा भचर-भचर, मत करो, वरना रोने के सिवाय कोई काम नहीं रहेगा...।" फिर उसने करमी को इशारा किया कि आगे बढ़ो और माँ का आशीर्वाद लो। करमी झट पल्लू ठीक की और आगे बढ़ी, पर बुढ़िया ने दोनों पैर कछुआ की भाँति छुपा ली और बोली "मेरे बेटे ने तुझे रख लिया तो ढुकनी (रखैल) की तरह ही अलग रह। मेरे जीते जी तुम मेरे घर के हंडिसार में कदम नहीं रख सकती है। मेरा बेटा भले ही लाख कमा कर हम सबको खिलाता-पिलाता है, पर आज भी मैं इस घर की मालकिन हूँ...!" बोलते-बोलते बुढ़िया ने किसी तरह खुद को नियंत्रित की तो शांति देवी से बोली "बहू, मेरी चिलम जला दो...।"

शाम हो चुकी थी, बाहर की एक गोदरीनूमा कोठरी में करमी ने डेरा डाला।

गाजो मोदी की फरियाद पर तीसरे दिन पीपल पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। गाँव के मुखिया नंदलाल महतो का दबदबा था। उसके फैसले के विरुद्ध कोई आवाज उठी हो, ऐसा कभी देखने को नहीं मिला। पंचायत में जमा भीड़ भी इस बात का सबूत दे रहा था कि लोग इस पंचायत के फैसले को मानते हैं। धीरे-धीरे लोग इसी पर चर्चा कर रहे थे कि कुछ दूरी पर हल्ला सुनाई दी। मुखिया भक्त जीतना एक मोदी लड़के को धकियाते हुए पंचायत तक घसीट लाया "स्याला, मुखिया जी पर इल्जाम लगाता है...!"

"जीतन, क्या बात है, सामने आकर बताओ...।" मुखिया नंदलाल महतो ने हांक लगाई।

जीतन ने उसे लड़के को धकियाते हुए पंचायत बीच खड़ा कर दिया। जीतन का हाथ अब भी उस लड़के की गर्दन पर कसा हुआ था। यह देख मोदी जमात में थोड़ी गुस्सा दिखी। पर किसी का मुंह नहीं खुला। ऊपर से मुखिया की चेतावनी "ऊफियों को पर निकल गया है लगता...!" इसके बावजूद उसके लड़के ने मुँह खोल दिया "हमने सुबह झुमरू को मुखिया जी के घर जाते देखा था।"

"तो...?" कोई बोल उठा।

इस पर थोड़ी देर तक पंचायत में हाय, हपर! होता रहा। फिर लोग असल मुद्दे पर आ गए। दोनों पक्षों की बात सुनी गई। करमी से पूछा गया। उसने अपनी बात दोहराई "हमने, अपनी मर्ज़ी से शादी की है, कोई जबरन नहीं!"

मुखिया को फैसला करने का सूत्र मिल गया। उन्होंने कहा "झुमरू ने करमी को रख कर कोई गुनाह नहीं किया है। जब दोनों राजी है, तो हम क्यों गुनाहगार बनें!"

इसी के साथ पंचायत उठ गई थी। गाजो मोदी को लगा पंचायत में सही फैसला नहीं हुआ। पक्षपात किया गया "सब फैसला पहले से तय था।" और उठ कर चल दिया था।

मुखिया नंदलाल महतो ने झुमरू को बुला कर कहा "कल दस भयाद को खस्सी-भात खिला दो और पाँच सौ पंच खर्चा यहाँ जमा कर दो... ।"

झुमरू फैसला तो अपने पक्ष में करा लेने में सफल हो गया था। लेकिन उसकी असल परीक्षा, माँ और पत्नी को अपने पक्ष में करने के बाद ही पता चल पाएगा।

माँ की एक ही जिद "मेरे जीते जी वह इस घर के अंदर कदम नहीं रख सकती है... ।"

करमी का घर में आए, अभी आठ दस दिन ही हुआ था कि एक रात घर में तूफान-सा उठा। दरअसल जब से करमी इस घर में आई थी, झुमरू का सारा समय उसी के साथ बीतता, झुमरू अपना और करमी का खाना भी करमी की कोठरी में ही ले जाता और दोनों साथ-साथ खाते। शांति देवी की तरफ से झुमरू ने जैसे नजरें ही फेर लिया था। कभी ताकता भी नहीं था। कभी सामने पड़ जाता तो वो नजरें बचाकर निकल जाता। पति की यह उपेक्षा शांति देवी से सहा नहीं जा रहा था। मन को कचोटता। वासना की आग उबाल मारता। भात-मांड से पेट की आग तो बुझ जाती परंतु देह की आग...!

उस रात शांति उसी आग से वशीभूत होकर पहुँची थी पति के पास। उस वक्त झुमरू और करमी दोनों किसी बात को लेकर मीठी बहस कर रहे थे कि अचानक शांति पर करमी की नजर पड़ी। करमी कांपती हुई झुमरू को इशारा किया। एक पल के लिए झुमरू भी शांति को देखता रह गया था। अपनी भड़ास निकालने में शांति ने जरा भी देर नहीं किया "तुम दिन-रात इसी भैंसिया के साथ लगे रहोगे तो मैं किसके पास जाऊँगी? सुन रहे हो, मुझे भी तुम्हारी जरूरत है। मैं बूढ़ी नहीं हो गई हूँ...!"

आदेश मिश्रित आमंत्रण सुनकर झुमरू भड़क गया। वह कब खाट से उठा, कब शांति देवी की झोंटी (बाल) पर उसका हाथ गया और कब शांति देवी जमीन पर चित गिरी खुद शांति देवी को पता न चला। उल्टे उसे लगा कि वह खटिया पर सोई है और झुमरू उस पर चढ़ा हुआ है। लेकिन जब उसकी देह पर पति की जोरदार लात पड़ी तो जैसे वह जाग उठी थी। यह सब कुछ इतनी जल्दी-जल्दी हो गया कि करमी को भी झुमरू को रोकने-टोकने का मौका नहीं मिला। अब झुमरू चीख रहा था "भाग, हरामजादी, भाग, नहीं तो आज मैं तुम्ळारी देह की सारी गरमी यहीं निकाल दूँगा।"

सौतन के सामने अपनी दुर्गति देख कर शांति देवी घायल नागिन की तरह फुफकार उठी थी" अरे, पांठा, पहलवान बना है, हमें पिटता है, मैं भी देखती हूँ, यह चुड़ैल

कब तक इस घर में रहती है...।"

शांति देवी का प्रचंड चेतावनी करमी को इस कदर भयभीत कर दिया कि वह दूसरे दिन ही गाँव छोड़ धौड़े में चली गई। हाँ जाने से पहले झुमरू से एक बात कहती गई "जब तक मैं वहाँ अपने लिए एक अलग से छोटा-सा घर बनवा नहीं लेती हूँ, तब तक चमनी दीदी के साथ रहूँगी। जब तुम्हारा मन करे, मिलने चले आना...!"

करमा परब के दिन कमलेश का जन्म हुआ। लोगों ने करमा नाम रखा। करमी के अंधेरे जीवन में जैसे सूरज उग आया था। फिर तो उसके जीवन के आकाश में दिन-प्रतिदिन चाँद-सूरज उगता और डूबता रहा। वर्तमान अतीत बनता गया और जीवन की पहिया को गति मिलता गया। बेटे के लालन-पालन, उसकी शिक्षा-दीक्षा और पहनावा-ओढावा में करमी इस कदर डूब गई कि उसके काले बाल कब सफेद हो गए पता तक नहीं चला। बचपन का वही करमा, पढ़-लिखकर अब कमलेश के रूप में जवान हो चुका था। इतना जवान कि जब उसने कजेता घर के आँगन में अनशन का ऐलान कर दिया तो लोग सकते में आ गए थे। जाति ठेकेदारों को तो उसने तिलमिला कर ही रख दिया था।

आखिर करमी भी तो इसी कमलेश को कुंदन की तरह निखारने में अपना एक पूरा जीवन बीता दिया। सफेद पड़ते सिर के बाल, उसकी ढ़लती उम्र का ही तो संकेत था। परन्तु मन से वह कभी कमजोर नहीं हुई, ऐसा न कभी देखा गया और न किसी के मुँह से सुना। एक परियोजना की तरह कमलेश को सींचती-संवारती रही। स्कूल से लेकर कॉलेज तक पहुँचाया उसने बेटे को, लेकिन कभी बेटे को बाप का अभाव महसूस होने नहीं दिया-किसी खास अवसर पर खटकने तक नहीं दिया था। कमलेश भी सारी परिस्थितियों को समझते हुए सिर्फ अपनी पढ़ाई में लगा रहा। भूलकर भी उसने कभी माँ से उल्टे-पुल्टे सवाल नहीं किये और माँ की भावनाओं का पूरा-पूरा आदर करता रहा। हाँ मन में एक इच्छा, एक साध जरूर थी कि वह कभी एक बार गांव जरूर जाएगा। चाहे वो समय कुछ ही पल का क्यों न हो। लेकिन हर बार परब की भांति समय निकलता जा रहा था। दशहरा (दुर्गा पूजा) की छुट्टी में वह होस्टल से माँ के पास आया था। संयोग से झुमरू भी पहुँचा था करमी के पास। बहुत दिनों बाद बाप-बेटे का मिलन हो रहा था। इसके पहले होली में दोनों मिले थे। कमलेश ने झुमरू के गाल में लाल अबीर लगा दिया था। सफेद दाढ़ी में झुमरू बूढ़ा बांदर लग रहा था। यह देख करमी खिलखिला कर हंस पड़ी थी। कमलेश भी हंसा था।

"अच्छा मौका है" कमलेश ने सोचा था और गांव जाने की तैयारी में लग गया था।

दूसरे दिन सुबह बाप के साथ कमलेश गांव आ गया था। उस गांव में जिसे आज तक देखा नहीं था, केवल सुन रखा था - मानपुर! जिसे आज तक अपना गांव कह नहीं सका था। ऐसी बात नहीं थी कि मानपुर को अपना गाँव कहने से वह डरता था, ऐसी भी बात नहीं थी कि वह उस गाँव से घृणा करता था। बस मन में एक स्वप्न-सा भाव बना हुआ था। क्या सोच रहे होंगे लोग उसके प्रति, किस तरह का व्यवहार करेंगे लोग उसके साथ। विचित्र-सी अनुभूति हो रही थी उसे। देर रात तक वह इन्हीं बिन्दुओं पर सोचता रहा था।

डायरिया-डिसेन्टरी से गांव के जोधन महतो की मृत्यु हो गई थी। आज उसका कुटुम्ब भोज था। कोखपोछवा के रूप में जन्में अपने सौतेले भाई मंगरा के साथ कमलेश भी पहुँचा था-कजेता घर में। जन्म के बाद पहली बार कमलेश ने गांव में कदम रखा था। हाँ इसके दो माह पूर्व और गाँव छोड़ने के बाद पहली बार करमी गाँव में कदम रखने की पहल कर चुकी थी। उसका आना भी विचित्र रूप में हुआ था।

शाम का समय था। दुकान से एक जरूरी सामान लेने मैं घर से निकल रहा था कि तभी आंगन में खड़ी महिला पर नजर पड़ी तो चौंक उठा। वह करमी थी "दीदी तुम! अंदर आओ, बाहर क्यों खड़ी हो?"

अंदर पहुँचकर पहले मैंने पत्नी से उसका परिचय कराते हुए कहा "आरती, तुमको करमी दीदी के बारे में बताया था न, वो यही हैं...।"

खबर पाकर झुमरू दौड़ा चला आया था। वह बार-बार करमी से घर चलने को कहता रहा और जवाब में करमी कहती रही" तुम मेरी चिंता छोड़ो, बेटे के बारे में सोचो, वह अब मुझसे सवाल करने लगा है कि माँ, गाँव में हमारे लिए जगह है या नहीं?" वह एक पल रूकी थी फिर बोली "अगर जगह है तो बोलो, नहीं है तो भी बताओ, ताकि मैं उसे अपने ढंग से संभाल सकूं, जैसे आज तक संभालती रही हूँ...।"

"तुम कैसी बात करती हो, कमलेश हमारा बड़ा बेटा है, हमारी संपत्ति में उसका भी उतना ही हक़ है जितना अन्य बेटों का है। तुम घर तो चलो...।"

"अभी नहीं!" करमी की आवाज दूर खंडहर से निकलती लगी।

"अभी नहीं का क्या मतलब? पहले कहती थी माँ जीवित है। पर अब तो वो भी नहीं रही, उसको मरे दस साल से ऊपर हो गया, फिर अब...?"

"कहा न, पहले बेटे को ले जाओ...।"

उस रात करमी दीदी का खाना सोना हमारे यहाँ ही हुआ। दूसरे दिन पौ फटने से पहले वह गाँव की चौहद्दी से बाहर हो चुकी थी।

कजेता घर में खाने वालों का तांता लगा हुआ था। एक पांत उठती तो दूसरी पांत बैठने का आपा-धापी शुरू हो जाती थी। खाने के लिए एक-दूसरे को धकियाते देखना कमलेश को बड़ा मजा आ रहा था। गाँव के इस गंवारूपन में भी कितना सौहार्द था, कितना भाईचारा था। कमलेश को बड़ा सुखद आश्चर्य भी हो रहा था। ग्रामीण जीवन का यह उसका पहला अनुभव था। इधर मंगरा भी बैठने की जुगत में लगा हुआ था। तभी उसने कमलेश को एक पांत की तरफ खींचा था। कमलेश को अजीब लग रहा था, फिर भी उसे आनंद आ रहा था। सब ठीक-ठाक चल रहा था। इसी बीच एक पांत में जगह मिली, दोनों बैठ गये।

घना महतो पांत में पतल चला रहा था। कमलेश के पास पहुँचा तो उसका भेष-भूसा और पहनावा देख वह चौंका था। गांव के लोग आदमी के शरीर का काला-गोरा नहीं देखते पर, कपड़े और पहनावे को घूर-घूरकर जरूर देखेंगे। यह कौन है? कहां से आया है? किसका बेटा है? गांव में कभी दिखा नहीं। घना महतो के मन में कई सवाल उठ खड़े हुए थे। पतल तो उसने कमलेश और मंगरा दोनों को दिया "मंगरा, तुम्हारे बगल में बैठा यह लड़का कौन है, कभी गांव में देखा नहीं...?" आखिर घना महतो ने मंगरा से पूछ ही लिया था।

मंगरा को यह कहां पता था कि यह बात उनसे किस प्रयोजन से पूछी जा रही है। उल्टे अपने बड़े भाई का परिचय देते हुए उसे गर्व महसूस हुआ। बोला था "यह हमारा कमलेश दादा है, कॉलेज में पढ़ता है, कल ही शाम को घर आया है...।"

"मतलब कि यह करमी का बेटा है। है न...?" घना महतो ने जैसे जाति घंटा बजाते हुए कहा था "एक मोदीन का बेटा, कुडमियों के पांत में खाने बैठा है...!"

इस खुलासा से लोग चौंक उठे। जिसने भी मुंह में पूड़ी डाले थे, मुंह चलाना भूल गए, जो सब्जी को पूड़ी से लपेट रहे थे, उसके हाथ रूक गये। सब तरफ से एक ही आवाज आनी शुरू हो गई "करमी का बेटा! करमी का बेटा! कौन है, कहां है, कैसा है... आदि-आदि!" फिर तो कजेता घर में जैसे एक सायरन-सा बज उठा था।

देखते-देखते खलिहान मीटिंग का मैदान में बदल गया था। जहाँ सबकी आँखों में जातियता का रंग चढ़ा नजर आने लगा था। तभी किसी ने अपनी औकात उछाल दी "अरे, मोदीन के बेटे को, किसने पांत में बैठने दिया...?"

कुछ देर पहले तक कमलेश के मन में गाँव के प्रति सौहार्द और भाईचारा पर आश्चर्य हो रहा था, मौजूदा रंग ढंग देख-सुन मन में एक नफरत-सा भाव उभर आया था। कमलेश एक सुंदर-सा सपना लिए गाँव आया था मगर यहाँ जातियता की कंटीली झाड़ियों में उलझ गया। उसका शहरी मन एक दम से बगावत पर उतारू होने को मचलने लगा। आसन हालात से अब उसे लड़ना ही होगा नहीं तो उसका पढ़ा-लिखा होने का क्या अर्थ रह जाएगा? उसने मन में सोचा था।

तभी घना महतो ने सीधे कमलेश से कहा था "सुनो, तुमको खुद सोच-समझकर बैठना चाहिए था। खैर, यहाँ से उठो, मोदी-महराओं के लिए घर के पिछवाड़े खाने की व्यवस्था की गई है, तुम उधर जागर बैठो...!"

कमलशे से पहले मंगरा तमक कर उठ खड़ा हो गया और जोर से बोला उठा "दादा, क्यों जाएगा उधर, यह हमारे साथ ही खाएगा। आप लोग हमारे बाप से खस्सी भात किस लिए खाये थे ?"

"हम बहस नहीं करना चाहते है, जात-भात खाये हैं लोग तो मुखिया जी से कहा, अगर इसको खाना है तो उधर ही जाकर खाना होगा...।"

घना महतो ज़िद पर अड़ गया था।

"दादा, कहीं नहीं जाएगा और खाएगा भी यहीं बैठ कर।" मंगरा भी अड़ गया था जैसे। कमलेश को पहले अंदेशा था कि घर में बड़ी मां और तीनों सौतेले भाई उसे देखना भी पसंद नहीं करेंगे, लेकिन यहाँ मंगरा का यह रूप देखकर उसकी सारी आशंकाएं निर्मूल साबित हुईं। मंगरा मतवाला रूप देखकर उसे बल मिला। फिर तो उसने भी एलान कर दिया "अब तो खाना, खाना ही है और यहीं बैठ कर खाना है, जिसको जो करना है, कर ले...!" और वह अनशन की मुद्रा में बैठ गया-समाधि स्थल-सा!

"चाहो तो, हमें भी पकड़कर उठा दो...!" मंगरा भी कमलेश के बगल में बैठ गया था।

"अरे, यह तो अनशन पर बैठ गया...?" भीड़ भकुआ उठी थीं।

"अब देखो, खस्सी भात खाये लोगों का तमाशा...।" एक बूढ़े ने बात रखी।

"ठीक तो, जब खस्सी भात खाकर, इसकी माँ को झुमरू महतो की पत्नी मान लिया तो उसके बेटे को जाति का बेटा मानने में कैसा एतराज?"

"यह जात-पात का टोटका ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है...।"

"आखिर लड़का, झुमरू का ही तो बेटा है...!"

"अब वो ज़माना नहीं रहा, आज तो दलित-चमार का बेटा भी कारखाने का बना जूता पहनता है...!"

ऐसी प्रतिक्रियाओं की उम्मीद नहीं थी घना महतो को, वह भीड़ में ज्यादा देर खड़ा नहीं रह सका, चुपके से निकल गया था।

खलिहान के पुआल में लगी आग की तरह बात समूचे गाँव में फैलती चली गई थी। अनशन की बात मुखिया के कानों से जा टकरायी। अस्सी बरस का जर्जर पिंजरा झनझना-सा उठा था। जैसे कोई नादान लौंडे ने जोर से पत्थर दे मारा हो। सन जैसे पके बाल खड़े हो गये थे। उसके जीवन काल में ही उसके दिये फैसले को यहाँ चुनौती दी जा रही थी। उन्होंने चौकीदार को बुलाया। बात झुमरू ने भी सुनी, वह दौड़ा-दौड़ा पहुँचा था कजेता घर। बेटों के चेहरे का भाव देख सब समझ गया था। पहले अगल-बगल की जमा भीड़ को देखा, फिर कसैले स्वर में कहा था "बेटा,

घर चलो, तुम्हारे जज्बातों और भावनाओं की कद्र करने वाला यहाँ कोई नहीं है।" आज झुमरू का चेहरा भी तमतमा उठा था-"बेटे, खस्सी भात खिलाने वाले कहा कहां याद रखेंगे। हाथी भी काट कर खिला दे कोई, फिर भी खिलाने वाले को भूल जाना इस समाज का दस्तूर है। जाति कीचड़ से सना हुआ है-यह समाज?"

तभी गांव का चौकीदार आता दिखा। लोगों की उत्सुकता बढ़ गई।

कमलेश पिता के साथ खींचा-खींचा सा पंचायत स्थल पर पहुँचा तो वहाँ काफी भीड़ हो चुकी थी। पीपल का पेड़ और उसके इर्द-गिर्द का स्थान कोलाहल का केंद्र बना हुआ था। भीड़ में मोदी जमात भी शामिल था। क्षितिज पर सूर्य का ढकना जारी था, तो सामने पीपल के पेड़ पर पक्षियों का आना शुरू हो चुका था। बीच-बीच में वातावरण में एक शोर-सा उठता था। लोगों की उत्सुकता आज चरम पर थी। बस अब प्रतिक्षा थी मुखिया के आने की, वे भी आते हुए दिखे। उनको देखते ही झुमरू उनकी ओर लगभग दौड़ता हुआ आगे बढ़ गया। कई आँखों झुमरू का पीछा करने लगी। दबी-दबी आवाज में एक शोर-सा उठता कि झुमरू आज फिर जीतेगा, कि निर्णय आज फिर झुमरू के पक्ष में ही होगा। कमलेश को भी सारी स्थिति और सारा समीकरण समझने में बहुत देर न लगी। उसका शहरी मन व्यवस्था के इस बाजारू रूप को देख विरक्ति से भर उठा। मान लो पिताजी, मुखिया जी को मनाकर निर्णय अपने हक में करवा ही लेते है और एक ही पांत में बैठने का अधिकार भी मिल जाता है, तो क्या वह सबके हृदय में भी स्थान पा लेगा? ऊँच-नीच के तराजू पर तौली जाने वाली नजरें क्या उसके सजातिय होने का सम्मान दे पाएंगी?

बगल के गांव में आकर ठहरी, करमी को इधर की खबरें लगातार मिल रही थीं। पक्ष-प्रतिपक्ष की बातें भी उसे सुनाई पड़ रही थीं, फिर भी खुद को रोके हुए थी वह "बेटे को समाज में जगह मिल जाए, उसको अपनी चिंता नहीं!" मन में वही बात बैठी थी।

उधर कमलेश का शहरी मन हुंकारने लगा था। उसे लगा, पीपल के इर्द-गिर्द बैठे लोग मनुष्य नहीं केंचुए हैं, जिनको जहाँ "आधरा-खुराक" मिला वहीं चिपक जाते हैं।

झुमरू वापस आता दिखा, शायद उसका काम हो गया था। उसका खिला हुआ चेहरा इसी बात का सबूत था। उसने आते ही कमलेश को सान्त्वना के स्वर में कहा "अब तुम्हें घबराने की कोई जरूरत नहीं है, मुखिया मान गया है, अब सबको मानना होगा।" लेकिन कमलेश के मन में कुछ और ही उथल-पुथल हो रही थी। वह निर्विकार होरक झुमरू को देख रहा था। उसकी सीधी नजरों का प्रहार झुमरू भी नहीं झेल सका। शंकित मन से उसने पूछा "ऐसा क्या देख रहे हो बेटे?"

"देख नहीं रहा हूँ पिताजी, सोच रहा हूँ। मुखिया जी की न्याय व्यवस्था पर। उनकी हस्ती पर! उनकी लाठी की पकड़ पर! पंचायत के ढोर गंवार जैसे लोगों को यह एक साथ कैसे हांक लेते हैं!"

"बड़े लोगों का यही तो बड़ी खासियत होती है बेटे!"

कमलेश का दोनों हाथ कद्दावर मुखिया के सम्मान में जुड़ते चला गया था "मुखिया हो तो ऐसा ही हो!" मुँह से निकला था।

पता- बोकारो, झारखण्ड
मो0- 6204131994

यौवन उपवन का पति बसन्त
है वही प्रेम उसका अनन्त
है वही प्रेम का एक अन्त
- महादेवी वर्मा

लड़ाई

○ विनय दास

गाड़ी के तेज हार्न ने मेरा ध्यान भंग कर दिया। निगाह उठायी... गेट की ओर देखा। गाड़ी किनारे पार्क कर एक नौजवान बाहर आया। आगे बढ़ गेट के लैच को खोला। मैंने अपना चश्मा ठीक किया। फिर भी नौजवान बूढ़ी आँखों की पहचान के बाहर था। वह अत्यंत निर्भीक कदमों से मेरी ओर बढ़ रहा था गोया कोई घर का सदस्य हो। उसके भूरे-सुनहले बाल हवा में उड़ रहे थे। आँख पर एक पतले फ्रेम का फोटोक्रोमिक चश्मा था। लम्बा-तगड़ा, गौरवर्णी जिस्म, किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ था। हाथ में एक वजनी वी.आई.पी. बैग था। उसके चेहरे की प्रसन्नता उसके पवित्र हृदय की गवाह-सी, लग रही थी। जैसे-जैसे वह निकट आ रहा था मेरे हृदय की उत्सुकता का पारा चढ़ रहा था। किन्तु आश्चर्य बिल्कुल निकट आने पर भी मैं उसे पहचान न सका। उसने लपक कर मेरे दोनों पैर पकड़ लिये। फिर सीने से आ लगा। इतनी आत्मीयता तब भी अनचीन्हापन मुझे स्वयं पर लज्जित कर रहा था।

-बैठो, कहो कैसे हो? औपचारिकतावश मैंने कहा।

मेरे इतना कहते ही वह सोफे पर संकोच के साथ बैठ गया।

-ठीक हूँ सर! बस आपका आशीर्वाद है। धूप में तपिश तेज है। मगर...।

-मगर क्या?

-दिल्ली की सभ्यता का पानी मत पिलाना। अवधी संस्कृति का पानी चाहिए। यानि साथ में कुछ मीठा भी।

उसके 'जी सर' सम्बोधन के साथ एक चीज मन में आयी, हो न हो यह मेरा कोई विद्यार्थी हो। फिर एक क्षण में ही यह विचार तिरोहित हो गया। आजकल तो बहुत सारे बी.ए., एम.बी.ए. करके नौजवान विभिन्न कम्पनियों के प्रोडक्ट लेकर आया करते हैं। वे भी तो जी सर, यस सर के लुभवने अंदाज में सामने वाले को नवाजा करते हैं। कहीं यह उन्हीं में...।

मैं यह सोच रहा था तभी दो गिलास ठंडा पानी मेज पर आ गया।

-लो, पहले कुछ खाओ, फिर पिओ।

-शायद आपने मुझे पहचाना नहीं सर!

मेरी चुप्पी इस अपरिचय की गवाह थी।

-मैं आपका अनंत।

-क्या? तुम अनंत हो। मैंने आश्चर्य से पूछा।

इसी के साथ हम दोनों अपनी-अपनी जगह से उठ खड़े हुए। वह मेरे सीने से एक बार फिर आ लगा। उसके बाल, मत्थे और पीठ को सहलाते हुए एक प्यार भरा

चुम्बन मत्थे पर जड़ दिया।

-सर, दूसरे गाल पर भी।

उसके इस इनोसेंस कथन से वह जूनियर का स्टूडेंट आज भी लग रहा था।

-लो, कुछ उठाओ।

-पहले आप! कहने के साथ उसने हाथ से एक टुकड़ा मिठाई मेरी ओर ले आया।

मैं संकोच में पड़ गया।

-सर! अब कैसा संकोच! कभी आपने ही स्कूल में मेहमान नवाजी का गुर सिखाते हुए कहा था, जिसे आप बहुत चाहते हों, उसे अपने हाथों से आग्रहपूर्वक खिलाना चाहिए।

उसके इस स्नेह के आगे मैं कुछ कह न सका। मुँह खोल दिया। फिर मैंने भी उसे एक मिठाई का टुकड़ा... ।

-लीजिए, सर! यह आपके लिए स्पेशल है। रेमण्ड का सूट लेंथ विद शर्ट। आंटी के लिए कश्मीरी सिल्क की साड़ी।

-इतने महंगे। इनकी क्या जरूरत थी।

-महंगा क्या? जेब की माली हालत महंगा-सस्ता तय करती है। पैसा हो तो बड़े मूल्य की चीज भी सस्ती और पैसा न हो तो सस्ती चीज भी महंगी लगती है। फिर आप ही कहा करते थे, कपड़ा चाहे एक ही क्यों न हो ? मगर ब्राण्डेड कम्पनी का हो तो उसका लुक ही दूसरा होता है।

-मेरे लिए क्या? अपने माँ-बाप के लिए कुछ करते।

मेरे इतना कहते ही उसके चेहरे की वह निश्छल आत्मीय हँसी की जगह एक मायूसी ने ले ली। मुझे लगा, उसके भावनाओं की हृदय रूपी फसल पर मेरा इंकार रूपी कोहरा काफी भारी पड़ गया है।

-क्या आप मेरे माता-पिता नहीं? लोग कहते हैं शिक्षक दूसरे माता-पिता होते हैं। पर मैंने तो आपको ही...? आपने ही मुझे इस मुकाम तक पहुँचाया है। वे जन्म देने के नाते पिता और आप जीवन की इस सफलता की कुंजी देने के नाते पिता हैं। मुझे लगता है अब आप इंकार नहीं करेंगे। इसे आप स्वीकार करें। इस पर आपका पूरा हक...? अन्यथा मेरा हृदय...? फिर एक यात्रा के दौरान जब हम दोनों के हाथ एक साथ जुड़ गये तो मैंने पूछा था, 'हाथ किसके सुंदर हैं।' आपने कहा था, 'तुम्हारे', मैंने कहा था, 'सर! आपके' थोड़ी देर फिल्मी अंदाज में आपका-आपका हुआ। तब आपने एक निष्कर्ष दिया था याद है आपको, कि हाथ वे सुंदर हैं जो दूसरों का हित करते हैं। सृजन का कार्य करते हैं, अपनो के लिए तो सभी... ।

-मेरे लिए तो एक कलम और किताब ही काफी थी, जिससे मेरा असली नाता है। उसी से मुझे यह सब वैभव मिला है।

-आपकी बात सच है। आपकी उस रुचि का भी मुझे पूरा ध्यान है, यह रही अरुंधती राय की लेटेस्ट बुक, कमलेश्वर की 'कितने पाकिस्तान' और साथ में एक जोड़ी पेन सेट भी और आपके बुढ़ापे का साथी नामचीन चश्मा। आँख पर रखिये और फटाफट पढ़िये।

-मगर तुमने यह नहीं बताया, आजकल तुम करते क्या हो?

-आपके ही शहर में 'इम्फोसेस' कंपनी में मैनेजिंग डायरेक्टर हूँ।

-क्या...? इतनी बड़ी कंपनी में...? मैंने आश्चर्य से कहा।

-इसमें क्या आश्चर्य सर! आपने ही कहा था प्यार और नफरत जीवन में दो बड़ी ताकतें हैं। प्यार अगर उन्नति के शिखर पर पहुँचाता है तो नफरत पतन के गर्त में। आपके प्यार ने ही मुझे यहाँ...? उसी का प्रतिफल मैं... ।

आपका स्नेह मेरे जीवन की अमूल्य पूँजी है। मेरा जीवन तो धूल का तिनका था। जो हवा का स्पर्श पा आसमान की ऊँचाई को छूता है। आप ही वह हवा का झोंका हैं सर।

मेरे सामने हमेशा न चुप रहने वाला, मितभाषी अनंत, इतना बातूनी... इतनी वाकपटुता...। इतना आत्मविश्वास। सच ही कहा गया है कि पद और पैसा आदमी में आत्मविश्वास भर देता है। समाज ऐसे लोगों को आँखों पर बिठाता है। वह इन बातों से मेरी स्मृतियों के एलबम को पर्त दर पर्त खोल रहा था।

पहला चित्र! अगस्त-2004

बरसात के दिन थे। विद्यालय एकल था। मैं कुर्सी पर बैठा छात्रों के नाम रजिस्टर पर अंकित कर रहा था। तभी मेरे सामने एक सामान्य से अपेक्षाकृत लम्बा, गेहुँआ रंग का, उलटकर तहमद को कमर तक बांधे, सारस जैसी टांग लिए, सैंडो बनियान से लैस, पसीने से तर-बतर एक लड़का मेरे सम्मुख आ खड़ा हुआ।

-क्या हमें भी पढ़ा सकते हो मास्टर जी।

-क्यों नहीं?

-मगर पढ़ाई छोड़े मुझे तो कई साल हो गये।

-तो क्या हुआ? पढ़ने की इच्छा होनी चाहिए। प्रबल इच्छाएँ आगे का रास्ता स्वयं बनाती हैं। सरकार तो ऐसे लड़कों को ढूँढ़ती है। मगर हमारे अध्यापक...?

-हमारे अध्यापक क्या...?

-खैर तुम इसे छोड़ो। बताओ, तुम करते क्या हो?

-अपनी किस्मत को रो रहा हूँ। बढ़ईगिरी करता हूँ, लोग मुझै लकड़कट्टा भी कहते हैं। रन्दा, बसुला, आरी, कुल्हाड़ी में जिन्दगी सिमट कर रही गयी है। घर का बड़का बाबू हूँ न सो परिवार का भरण-पोषण करता हूँ। खेती मात्र एक बीघा। पाँच जन का खर्च। ऐसी गरीबी में कैसे पढ़ना होगा मास्टर जी? मगर, मैं पढ़ना चाहता हूँ।

-कहाँ तक पढ़े हो।

-पाँच पास करे हन। दो वर्ष हुए पैसे की तंगी और अम्मा की जिद ने स्कूल छोड़ा दिया। बप्पा अम्मा के सुर में सुर मिलाते रह गये। अम्मा कहती हैं तू बढ़ कर लम्बू चिकारा हो गया है। बस्ता लेकर स्कूल जाएगा। घर का काम-बूत संहाल, जिससे दो जून चूल्हे में आग पड़ने की नौबत तो आये। पढ़ाई में रखा ही क्या है? पढ़ी-लिखी कै गाँव के गलियारन मां मंझइ हौ। गाँव के सब लरिका पढ़ि-लिखि के यहै करत हैं। बहुत देखा है पढ़इयन का?

-मेहनत की कमाई खाना कोई बुरी बात नहीं। बहुत सारे लोग खुद कमा कर पढ़ते हैं। फिर आजकल सरकार तो किताबें, ड्रेस मुफ्त देती है। कोई भारी-भरकम फीस भी नहीं लेती। तुम चाहो तो पढ़ सकते हो।

-मगर मेरा कोई आगे-पीछे...?

-जिसका कोई नहीं होता उसका भगवान होता है।

-इतने दिन से तो देख रहा हूँ। कहीं कोई भगवान नहीं दिखता। यह सब किताबी बातें हैं मास्टर जी।

-क्या तुम सोचते हो, अब वे चक्रसुदर्शन, तीर-धनुष और अपने चार मुँह लेकर तुम्हारे सामने आयेंगे। यहाँ पर हर सामने वाला आदमी ही भगवान है। क्या तुम्हें धरती माता नहीं दिखती, जिसका दिया खाते हो, क्या सूरज, चाँद और पेड़-पौधे भगवान नहीं?

अब वह चुप हो, कुछ सोचने लगा।

-नाम लिखाई और माहवारी फीस के पैसे भी नहीं है घर पर मास्टर जी।

-तुम इसकी चिंता छोड़ो। मेरे लिए यही बहुत है कि तुम फिर से पढ़ना चाहते हो। फीस तुम्हारी मैं दूँगा, माफ कर दूँगा, बस। जाओ टी.सी. लेकर कल आना। मगर क्या तुम सचमुच पढ़ सकोगे...?

-हाँ, हाँ, मैं पढ़ूँगा, मैं पढ़ना चाहता हूँ मास्टर

जी। गुमटी के पल्ले-दरवाजे बनाते जब नित्य आपके साथ मिलकर बच्चों को खेलते देखता हूँ तो मेरा भी मन खेलने को होता है। कविता कितने मन से सुनाते हैं आप। आपकी कहानी-कविता सुनकर दूसरे लड़कों की तरह मेरा भी मन मंच से बोलने को करता है। फिर पढ़-लिखकर मैं भी आपकी तरह ये सुंदर कपड़े, ये गाड़ी, बच्चों की यह सेवा करना चाहता हूँ अपने जैसों को आपकी तरह आगे लाना चाहता हूँ मास्टर जी।

-उसकी ये बातें मुझमें गुस्से की जगह उसके भावजगत की पवित्रता की सराहना करने को मजबूर कर रही थी। मैं सोचने लगा ऐसे लोग अगर शिक्षा जगत में आ जाएँ तो काया पलट होते देर न लगे।

दूसरे दिन वह लड़का मेरे पहुँचने के पहले ही विद्यालय में हाजिरी बजा रहा था। उसके लगन की यह पहली परीक्षा थी।

विद्यालय की औपचारिकताएँ पूरी करने के साथ मैं कार्यालय की कुर्सी से जा लगा।

तभी वह लड़का सामने आया।

आपके साथ कोई नहीं आया है। माता-पिता में किसी को साथ लाना था। उनके हस्ताक्षर होने हैं।

-अगर उइ अत्तेन समझदार होइती तौ हमार पढ़ाइ काहे छूटत मास्टर जी। फिर सुनित है मास्टर दूसर महतारी-बाप होत हैं।

उसकी इस बात ने मुझे निरुत्तर कर दिया। टी. सी. लाए हो।

-जी, पूरे पच्चीस रुपया पड़े हैं मास्टर जी। अपनी मजूरी कै पइसा दबाइ कै रक्खे रहन उनहिन पूजाय आयेन।

-पचास पैसे पड़ते हैं टी.सी. के। पच्चीस रुपये कैसे?

-इहु सब तौ आपै जानी मास्टर जी। उई मास्टर जी, आप मास्टर। अब नाम लिखाई एकौ टका जेब मा नाही बचा है।

-कैसी नाम लिखाई? नाम तो हम बिना पैसे के ही लिखते हैं। प्रत्येक घर से चौदह वर्ष के बच्चे को स्कूल लाना है, पढ़ाना है। क्या ये सरकारी मंसूबे इसी तरह पूरे होंगे। गरीबों के गले पर छूरी चलाकर...। केवल विद्यालय की कुर्सी से चिपके रहकर। मैं सोचने लगा।

-तुम्हारा नाम।

-अनंत प्रकाश

-माता-पिता का नाम

-सुंदरा देवी। घसीटे लाल।

-अपनों से बड़ों के नाम के आगे 'श्री', 'श्रीमती' लगाकर बताते हैं।

-जी! उसने सिर 'हाँ' में हिला दिया।

-कक्षा-6 के रजिस्टर पर उसका नाम दर्ज हो गया। किताबों का एक पूरा सेट उसे थमा दिया।

-अत्ती किताबै! कइसे पढ़ी जायेंगी मास्टर जी। उसने आश्चर्य और प्रसन्नता के मिले-जुले भाव से कहा।

-घबड़ाओ मत! एक दिन में क्या थोड़े ही पढ़नी है। पूरे वर्ष में पढ़ना है उसका चेहरा अब प्रसन्नता से दमक रहा था।

दूसरे दिन यूरिया खाद की पीली बोरी का बस्ता ले कर वह स्कूल आया।

दिन-सोमवार! स्वच्छता का निरीक्षण हो रहा था।

-नाखून।

-उसने हाथ आगे कर दिये।

-दाँत

-इतने पीले। दातून नहीं करते क्या?

-करित है।

-फिर...! दाँत रगड़कर आहिस्ते-आहिस्ते नीम की दातून से साफ करो फिर देखो कैसे मोती जैसे दाँत

चमकते हैं। दाँत चमकने से चेहरा भी चमक उठेगा।

-ये कपड़े? इतने मुड़े-तुड़े। क्या मटकी में संहाल कर रखे थे।

-जी नहीं! धुलकर मां ने निचोड़ कर ऐसे ही फैला दिये थे।

-निचोड़ने के बाद उसे झाड़कर फैला देते। शाम को हाथ से ठीक कर बिस्तर के नीचे रख लो। बिल्कुल प्रेस किये कपड़े हो जायेंगे।

-जी हाँ।

एक हफ्ते लगातार आने के बाद वह अचानक कई दिन विद्यालय नहीं आया। विद्यालय से इस तरह किसी बच्चे का अचानक घर पर बैठ जाना कोई नई बात नहीं थी। परीक्षा और वजीफा के समय बिन बुलाये मेहमान की तरह सबके सब टपक पड़ते हैं। किंतु अनंत का इस तरह गायब होना उसकी लगन पर प्रश्न चिन्ह लगा रहा था।

अगले दिन प्रार्थना-स्थल पर हाजिरी हो रही थी। सभी कक्षा के छात्रों की अनुक्रमांक से उपस्थिति हो रही थी। अनुक्रमांक-51 कहते ही पंक्ति में सबसे पीछे 'उपस्थित श्रीमान' की आवाज के साथ मेरी दृष्टि पंक्ति के अंतिम बच्चे पर जा टिकी।

-इतने दिन कहाँ गायब थे? क्या इसी तरह पढ़ोगे?

-वह चुप रहा। उसकी चुप्पी मुझे चुभ रही थी। मैं उसके निकट पहुँच गया।

-बताओ, तुम विद्यालय क्यों नहीं आ रहे थे? फिर भी वह चुप रहा। जब सीधी उंगली से घी नहीं निकलता तो टेढ़ी करनी ही पड़ती है।

-अच्छा, नहीं बोलते। चलो, सौ उठक-बैठक लगाओ।

मेरे इतना कहते ही उठक-बैठक प्रारम्भ हो गयी। पचास की संख्या पहुँचते-पहुँचते उसका चेहरा आरक्त हो उठा। आँखें पनीली हो आयीं।

-बोलो क्या बात है? रोते क्यों हो?

-सब बताता हूँ मास्टर जी, सब। घर पर न रोटी थी और न भात। दाल तो सपना थी। सूखा कौर गले के नीचे नहीं उतरता है। फिर कापियों की भी चिंता थी। आप किताब ही देते हैं, कापी तो नहीं। सो एक जगह दिहाड़ी पर पल्ले बनाने चला गया था। सोचा, कुछ रुपये हो जायें तो कापी आ जाये। आप सबके लिए रोज कापी लाते हैं, मुझे भी तो चाहिए। आप जब कक्षा में लिखाते हैं उस समय आपका मुँह ताकते रहना या चोर लड़कों की तरह झूठ-मूठ कापी पर कलम फिराते रहना क्या ठीक रहेगा? इस तरह मैं कक्षा में कितने पीछे...।

एक बार फिर मैं गरीबी के आगे स्वयं को पराजित महसूस कर रहा था। मैं सोचने लगा समाज में ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं जो पढ़ना चाहते हैं। गरीबी और अशिक्षा परिवार की बेड़ियाँ आगे नहीं बढ़ने देतीं। फिर दिहाड़ी करके कोई कितना आगे बढ़ सकता है। पढ़ाई के प्रति चिंता और परिवार की जिम्मेदारी ढोने में उसका बचपन कहीं खो गया लगता था। तभी मेरे मन में आया क्यों न मैं इस बच्चे की शिक्षा को गोद ले लूँ। आये दिन डी. एम., बी.एस.ए., बड़े-बड़े अधिकारी एक बच्चा क्या पूरा विद्यालय ही गोद ले लेते हैं। फिर मैं क्यों नहीं...?

इस विचार के आते ही तुरंत दूसरा ख्याल भी आया। क्या इसे परिवार के लोग स्वीकरेंगे? कहीं वे विरोध न करें। विरोध करें तो क्या? पैसे मैं कमाता हूँ। क्या अपनी कमाई का एक थोड़ा-सा हिस्सा भी दूसरे की भलाई में नहीं लगा सकता। जो मेरे सुकून के लिए हो। क्या पत्नी का साधुसंतों को दान देना ही धर्म है? क्या मंगतों को भीख देना ही पुण्यार्जन है? क्या तीर्थस्थलों पर औने-पौने खर्च करना ही धर्म है? क्या किसी गरीब के बच्चे को शिक्षा में सहायता करना धर्म नहीं? समय की जरूरत आज गरीबी और

अशिक्षा से समाज को मुक्त कराने की है। फिर मैं ही क्यों न इसे...? कहीं यह मेरी भावुकता तो नहीं। क्योंकि भावुकता के क्षणों के लिए गए फैसले प्रायः दूरगामी नहीं होते। तमाम तर्क-वितर्क के बाद मेरे मन ने फैसला ले ही लिया। तभी याद आया, एडमीशन के समय संरक्षक के कालम में मेरा ही नाम दर्ज है। उस समय दस्तख्त करते समय मेरी कलम कांप उठी थी। स्याही थोड़ा बहक गयी थी। केवल इस विचार से कि क्या मैं एक शिक्षक होकर उसकी इस जिम्मेदारी को निभा सकूँगा।

मेरे गोद लेने के निर्णय के साथ उसकी तकदीर ने करवट ली।

कुछ ही दिनों में उसकी ड्रेस, जूते, बस्ता, कापी-किताबें सब आ गयीं। इतना परिवर्तन देख उसकी माँ एक दिन विद्यालय आ पहुँची।

-मास्टर जी इहु कर्ज मुड़े ते कब उतरी।

-कइस कर्ज।

-इहै सब जउन हमरे लरिका पै मढ़त जात हो। दिन भै आपेक गाना गावत है।

-चिंता न करौ। तुम्हार लरिका हम न लेबै। उह पढ़ा चहत है तौ पढ़ै, देव। आगे उहिके भाग्य जानै। घीउ ढरिकाई थरियैयम रही। कमाय कै लाई तौ तुमहिन का देई। तब तौ मास्टर जी न याद अइहैं।

उसी के साथ वह चुप हो गयी और लौट गयी।

ज्यों-ज्यों अनंत अपने वर्तमान का बखान करता त्यों-त्यों मुझे उसका अतीत याद आता। अतीत का एक फड़फड़ाता पृष्ठ।

वार्षिक परीक्षा निकट थी। अंग्रेजी का घण्टा था। प्रश्न-उत्तर सुने जा रहे थे। सभी बच्चे फटाफट उत्तर दे रहे थे। एक-दो प्रश्न के बाद अनंत चुप हो गया। मैं बार-बार प्रश्न पूछता और वह बुद-बुदाकर चुप हो अपनी पैंट की सीवन को भींचने लगता। रह-रहकर मुझे क्रोध आ रहा था। मैंने छड़ी उठाई उसे पीटने लगा।

-बताओं तुमने क्वेश्चंस क्यों नहीं याद किये। आज तुमने सभी फिसड्डिडयों को भी पिछाड़ दिया।

उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

-बताता हूँ सर! कई दिन पहले आपने जो इम्पोर्टेंट क्वेश्चंस लिखवाये थे। वे जलकर राख हो गये।

-कैसे?

-मैं रजाई में लेटा प्रश्नोत्तर याद कर रहा था। सिरहाने ढिबरी जल रही थी। न जाने कब झपकी आयी। रजाई और कापी सुलग गयी।

-दूसरी कापी बना लेते।

-कोई अपनी कापी नहीं देता।

-इसमें क्या बताता सर! कहीं आप उन लड़कें की खबर लेने लगते तो। किसी तरह एक लड़के ने कापी दी है। तीन दिन से उसे उतार रहा हूँ। काम खत्म होने का नाम ही नहीं लेता। याद कब करता।

-ठीक है। कल तुम प्रधानाचार्य कक्ष में मिलना।

अगले दिन मैंने उसे लैम्प लाकर दे दिया।

-अब तो ठीक है।

-जी सर! कहकर वह थोड़ी देर रूका, फिर घर जाने लगा। वह सोच रहा था लैम्प क्या आपने जीवन में एक नयी रोशनी ही दे दी है। ज्ञान का एक छोटा सूरज ही आपने हथेली पर रख दिया है। काश! मैं वैसा बन पाता जैसा आप चाहते हैं। काश! मैं आपका नाम रोशन कर सकता। काश! कभी आपके जीवन में काम आ पाता।

-सर मैं अब चलूँ।

-इतनी जल्दी! कहाँ खो गये थे। बस, ऐसे ही कुछ सोचने लगा था।

-हाँ, हाँ मैं सब समझ गया। अतीत में। अभी तक मुझे सब कुछ याद है। आपकी पिटाई, लड़कों के ताने, आपका दिया लैम्प और ठिठुरती सर्दियों में आप द्वारा दिया

गया एक पुराना ऊलेन स्वेटर सब सहेज कर रखे हैं सर! और इस सबके बीच आपके स्नेह का स्थिर हाथ जो तमाम झंझावातों में भी विचलित न हुआ, उसे ही नहीं भूलता हूँ। वर्तमान कितना भी सुखद हो किंतु अतीत उससे भी सुखद और लुभावना लगता है न जाने क्यों?

-मगर एक बात है अनंत! आज गरीबी और अशिक्षा की लड़ाई थोड़ी-बहुत कम तो हुई है किंतु एक उससे भी बड़ी लड़ाई सामने है।

-वह क्या?

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के जाल से देश को मुक्त कराना, जिसके तुम मुलाजिम हो। अन्यथा देश शीघ्र ही एक दूसरी आर्थिक गुलामी का शिकार बन जाएगा।

उनके इतना कहते ही मैं सोच में पड़ गया। अब क्या और कैसे किया जाये। एक नई लड़ाई जो मुझे लड़नी है।

पता- निवास- पटेल नगर, दशहरा बाग
निकट पंचमदास कुटी, बाराबंकी- 225001
मो0- 8707049912

कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना?
सीखा केवल हँसना-केवल-हँसना
शुभ्र-किरण-वसना!
मन्द-मलय भर अंक-गंध मृदु
बादल अलकावलि कुंजित-ऋजु
तारक हार, चन्द्र मुख, माधु ऋतु
सुकृत-अशना।

- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निमंत्रण

○ कृष्ण कुमार 'कनक'

बदहवास रात का अंधेरा, बेतरतीब भोर, दोनों के बीच कोई तो है जो न चैन से सोने दे रहा है और न सलीके से जगने। आखिर ऐसा क्या हुआ जिसने चैन को बेचैनी का उपहार दिया और सुकून को लाचारी। कई बार तो ऐसा लगता है कि मुझमें ही कोई खोट है। जो नहीं चाहता, वही हो जाता है। नहीं करना, वही कर बैठता हूँ। ऐसी भी क्या जरूरत आन पड़ी थी कि बिल्कुल आखिरी क्षणों में सिरदर्दी मोल ले ली। भारतेंदु जी ने लिखा 'विदा के समै सब कंठ लगावें' और यहाँ... सब कुछ उलट-पुलट। विदा गई भाड़ में... टा-टा... बाय-बाय। अरे भाई! ये भी कोई बात हुई... हंसी मजाक भी तो कोई चीज होती है। इसका मतलब ये तो नहीं कि गाल फुला लो...। बात ही मत करो...! इधर-उधर का सारा क्रोध... उड़ेल दो।

आनंद अपनी चारपाई पर लेटा-लेटा न जाने क्या-क्या सोचता चला जा रहा है। लगभग पूरी रात बीत चुकी है। लगभग क्या! पूरी ही बीत गई है। गली में कुछ कुत्ते भौंक रहे हैं। बाकी सब... सन्नाटा! बीच-बीच में सियार की सी लंबी आवाजें आ रही हैं। ये आवाजें भी कुत्तों की ही हैं। कभी लग रहा है, कुत्ते लड़ रहे हैं, तो कभी ऐसा कि मानो किसी अनजान पथिक का स्वागत चल रहा है। बाकी सब ठीक है। गली में स्ट्रीट लाइट की रोशनी सब कुछ दूधिया कर रही है। ठीक सामने की ओर नीम के पेड़ की नव-पल्लवित कोंपलें, बस उतनी ही हिल रही हैं, जिनती वे स्वयं के बल पर हिल सकती हैं। हवा कहाँ हवा-हवाई है, पता नहीं!

आनंद ने करवट बदली। कुत्तों का भौंकना अब भी जारी है। क्या इनको कोई काम ही भी नहीं, बिना बात भौंकते रहते हैं। गली में तो कोई है नहीं! हो भी कैसे! सवेरे के चार बजने में केवल दो मिनट ही तो कम हैं। पर, इन कुत्तों का क्या है! सारी रात का यही रोना-धोना।

वैसे! पहले तो मच्छर भी नहीं थे, तो नींद न भी आए, तब भी सो लो। और अब! नींद आ भी जाए तो भी सारी रात मच्छर मारते रहो। तो क्या वास्तव में रात-भर न सो पाने का कारण मच्छर ही हैं। नहीं-नहीं! बात कुछ और भी है। यह बात आनंद भी जानता है। आनंद ने एक बार फिर करवट बदली। वही स्ट्रीट लाइट, वही दूधिया रोशनी, वहीं चंचल हवा की अचंचल गति में नहाई नीम की नव-पल्लवित कोंपलें। बसंत क्या कुछ नया नहीं देता! वृक्षों की नव-कोंपलें, गेहूँ को बालियाँ, नव-विवाहितों को नई नवेली दुल्हन और अविवाहितों को मित्रों के पाणिग्रहण संस्कार के समय दूल्हे को घेरे हुए नई-नई सालियाँ। होली के रंगों, अबीर, गुलाल आदि के बहाने हृदय के किसी भीतरी कोने में छिपी बैठी अंतर्निहित भावना को उड़ेलने का सुनहरा अवसर। और भी बहुत कुछ। किंतु इस बसंत ने

संसार को सदैव सब कुछ दिया ही है, लिया कुछ नहीं...? सहसा इस प्रश्न ने आनंद को चिंतन की नई धारा में डुबो दिया। रंग भरनी एकादशी को गाँव के लोगों की फाग-गायन टोली ने ऐसे फाग सुनाए कि सहसा अपने दिवंगत ताऊ जी का स्मरण हो आया। क्या यह अजीब नहीं कि बीसियों वर्षों से पिताजी और ताऊजी कभी एक-दूसरे से बात करते नहीं देखे गए, किंतु जब ताऊ जी के स्वर्गीय होने की खबर पिताजी को मिली तो सहसा बिलख पड़े। सहमतियाँ-असहमतियाँ अपनी जगह हैं और सहोदरी रिश्ता अपनी जगह। इस बार बसंत ने मुझसे मेरे ताऊ और पिताजी से उनके भाई छीन लिए। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार इन नीम की नव-पल्लवित कोंपलों से ठीक पहले परिपक्व, दृढ़ और सक्त पत्तियाँ। ऐसा और भी बहुत कुछ रहा होगा जिसे बसंत ने आने से पहले पूरी तरह निगल लिया होगा।

अचानक पंखे से चीं-चीं की आवाज सुनाई दी। आनंद का चिंतन टूटा। कुछ ही देर में आवाज स्वतः शांत हो गई। आनंद के लिए इस चीं-चीं के भी अपने अनेक अर्थ हैं। ये आवाजें सिर्फ आवाजें ही नहीं, अपितु एक सोची-समझी रणनीति का हिस्सा है। उस रणनीति का जिसे तैयार करने वाले को संसार ईश्वरीय सत्ता के विविध नामों से पुकारा करता है। उर्वशी में दिनकर ने लिखा है 'झुके हुए हम धनुष मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से, किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं।' ये आवाजें सामान्य नहीं अपितु जीवन के उन्हीं व्यवधानों की भाँति हैं जो आते तो बहुत कम समय के लिए हैं, किंतु बहुत कुछ तहस-नहस कर डालते हैं। इस बर्बादी के चिन्ह अजीवन चिकोटी काटते रहते हैं। विविध स्वरूपों में, कभी व्यंग्य, कभी उलाहना, कभी झुंझलाहट तो कभी खीज बनकर।

आनंद ने एक बार फिर करवट बदली। आँखें बंद कर भी लो तो क्या होता है। जब तक स्वतः नींद न आए तब तक सोने का अभिनय व्यर्थ ही है। एक मच्छर ने माथे पर डंक मारा और आनंद ने जोरदार हाथ। मच्छर पलभर में ढेर। किंतु उसने जो चुभन दी, वह तो अभी भी है।

धूप बिल्कुल वैसी ही थी जैसी कि अप्रैल के महीने में होती है। अचानक से बादलों ने पूरे आकाश को ऐसे घेरा, मानो चोर दरवाजे से भीतर घसे हों। चारों ओर अंधकार की ऐसी छाया हुई कि मत पूछिए। सुमन ने पहले ही कहा था 'मौसम-विभाग की चेतावनी है, अगले दो-तीन दिन तक पश्चिती उत्तर प्रदेश में बादल छाए रहेंगे।' चंद पल बीते कि पत्थर की पटिया बैठने लायक हो गई। लोगों का आवागमन जारी था। महत्त्वपूर्ण चर्चा योग्य वातावरण न होने के कारण सुमन और आनंद सामने वाले पार्क में एक पेड़ के नीचे बैठे। अब बादलों में बिजली की तड़तड़ाहट भी सम्मिलित हो चुकी थी। कुछ ही देर में धूल भरी आँधी ने जोर पकड़ा। सुमन को बालों में धूल भर जाने की चिंता सता रही थी। खैर... वहां कोई और उपाय ही क्या था। पेड़ों के आपस में टकराने से सूखी टहनियाँ इधर-उधर बिखरने लगीं। पेड़ों की हरी पत्तियों का हवा के साथ तैरकर इधर से उधर मंडराना मनोहारी था। ठण्डी हवा देह के मानो समस्त संतापों का नाश कर रही हो। पहले तो पानी के छींटें टपके, फिर तेजी से बूँदा-बाँदी होने लगी। सुमन के हाथ में जो कुछ महत्त्वपूर्ण कागज था, वे बारिश में गीले न हों इसलिए सुमन उठकर फाइबर की छत के नीचे की पटिया पर जा बैठी। आनंद ने भी अपना सामान उठाया और वहीं जा बैठा। बूँदा-बाँदी भी अब रूक चुकी थी। हवा का वेग भी पहले की अपेक्षा काफी कम। कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर बात हुई चर्चा बड़ी सार्थक और सफल रही। समय था अपने-अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान का। तय हुआ कि अगले चार मिनट में प्रस्थान करेंगे। सहमति में दोनों के सिर हिले। सहसा सुमन ने अंगड़ाई ली। आनंद ने मजाकिया लहजे में छेड़ा। फिर क्या था, एक दम भूचाल।

थामे न थमने वाला आक्रोश। एक क्षण का भी न विलंब न विचार। तूफान की गति से प्रस्थान। आनंद के प्रयासों को अंततः इतनी ही सफलता मिल सकी कि गन्तव्य तक सकुशल...।

आनंद को प्यास लगी। चारपाई से उतर कर सामने दीवार के सहारे रखे मटके से एक लोटा जल लिया, पीकर फिर से चारपाई पर लेट गया। आनंद की कलाई में काफी पुराने स्टाइल की घड़ी रहती है। जब कभी वह खराब होती है तो आनंद सबसे पहले उसे ही ठीक कराता है। हर जेब में अति नवीनतम तकनीकियों से संपन्न मोबाइल के दौर में जहाँ घड़ियाँ अपना अस्तित्व खोने की ओर हैं, ऐसे में भी आनंद की कलाई में पुरानी परंपराओं की निशानी के रूप में टाइटन कंपनी की बेहद पुरानी-सी घड़ी अपनी उपस्थिति जीवंत बनाए रखती है। आनंद आज भी उसी घड़ी में समय देखता है। अभी-अभी आनंद ने अपनी घड़ी पर नजर डाली है। चार बजकर सात मिनट हुए हैं। कितना अजीब है न... जब परीक्षा भवन में बैठे हों तो कब तीन घण्टे का समय बीत गया, पता ही नहीं चलता। और जब स्वयं परीक्षा कक्ष में कक्ष निरीक्षक के रूप में ड्यूटी दे रहे हो तो तीन घण्टे मानो काटे से नहीं कटते।

कई वर्ष पहले स्नातक उत्तीर्ण करते ही जब एक वित्तविहीन विद्यालय में पढ़ाना प्रारम्भ ही किया था, उन दिनों नए-नए अध्यापन के क्षेत्र में प्रवेश का ऐसा प्रभाव था कि नवाचार का भूत उतारने में काफी लंबा समय लगा। सब कुछ बदलकर रख डालने का ऐसा नशा था कि अपने अध्यापकीय जीवन में जो कुछ भी सीखा था, वह सब विद्यार्थियों के बीच उतार देने का ऐसा जुनन कि अपने साथी अध्यापकों से भी लड़ाई ले लेने से कोई गुरेज नहीं। साथियों में दोस्त कम दुश्मन अधिक बनाए। तो क्या! किया वही जो करना था। कक्षाओं में मॉनीटर व्यवस्था, उनमें भी हाउस और उन सबके कप्तान व उप कप्तान। इतना ही नहीं, इन सब के चयन की भी पूरी प्रक्रिया लोकतांत्रिक। पहले सभी कक्षाओं में मॉनीटर तथा क्लास रिप्रजेंटेटिव हेतु आवेदन फिर कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा मतदान। परिणाम घोषणा के तहत सर्वाधिक मत प्राप्तकर्ता हुआ मॉनीटर और दूसरे स्थान का हुआ क्लास रिप्रजेंटेटिव। कक्षा पाँच से लेकर बारहवीं तक के सभी सैक्सनों में इसी प्रक्रिया का पालन हुआ। सभी कक्षाओं को मिलाकर हुए कुल चालीस मॉनीटर और चालीस क्लास रिप्रजेंटेटिव। कुल मिलाकर हुए अस्सी। फिर बने चार हाउस; सुभाष, गांधी, पटेल और टैगोर। सभी हाउस के कप्तान, उप कप्तान, संयोजक और सह-संयोजक के लिए आवेदन कर सकते थे केवल मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव। सोलह पदों के लिए आवेदन भी हुए सोलह। वैसे आवेदन तो दो-चार ही हुए। शेष तो जबरन कराए गए। अब पदों का बंटवारा कैसे हो इस के लिए सभी मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव हुए मतदाता। प्रत्येक व्यक्ति को चारों हाउस के एक-एक व्यक्ति को वोट देना था, इसलिए सभी को चार-चार बैलेट पेपर मिले। प्रत्येक हाउस का एक अलग बैलेट पेपर था। चुनाव चिन्ह बताने हेतु किसी भी कक्षा के बाहर खड़े होकर उस कक्षा के दिन का समय दिया गया। प्रत्येक प्रत्याशी को यह अधिकार मिला कि वह अपना चुनाव चिन्ह बताने हेतु किसी भी कक्षा के बाहर खड़े होकर उस कक्षा के मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव को बुला सकता था। शनिवार के दिन प्रार्थना के मंच पर होना था चुनाव। सभी सोलह प्रत्याशी प्रत्येक वोटर को बड़े ही प्यार से भैया-दीदी कहते नजर आए। वैसे तो सभी को कोई न कोई पद तो मिलना ही था, फिर भी हाउस कैप्टन बनाने की लालसा किसकी न होती। बाकायदा वोटर लिस्ट का प्रकाशन हुआ। जान-बूझकर लिस्ट में कुछ गड़बड़ियाँ की गई। प्रत्याशियों ने प्रधानाचार्य ऑफिस पर धावा बोल दिया। महोदय इस सूची में दो चुनाव अधिकारी को धर लिया। चुनाव अधिकारी ने उन्हें बताया कि इनके

कक्षाध्यापकों की जिम्मेदारी थी कि वे अपनी कक्षा के मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव के नाम इस सूची में दर्ज कराएँ। किंतु फिर भी यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो यह तो उनकी कमी है, हम कुछ नहीं कर सकते। जिन प्रत्याशियों को लगा कि ये तो मेरे वोट हैं, वे जिद पर अड़ गए। या तो सूची में संशोधन करो या फिर चुनाव रद्द करो। प्रत्याशी प्रदर्शन पर उतरे तो बीच का रास्ता निकला, सूची में नए नाम तो सम्मिलित नहीं हो सकते किंतु यदि कक्षाध्यापक यह लिखकर दें कि यह विद्यार्थी मेरी कक्षा का चयनित मॉनीटर या क्लास रिप्रजेंटेटिव है और इस बात को प्रधानाचार्य जी उसी कक्षा के दो विद्यार्थियों के हस्ताक्षर कराकर अपने हस्ताक्षर से प्रमाणित करें तो इन चारों को चेलेंज वोट डालने का अवसर मिलेगा। लेकिन याद रहे कि इन दोनों के वोट वाले बैलेट पेपर मत पेटिका में नहीं पड़ेंगे अपितु अलग से एक लिफाफे में रखे जायेंगे। इन वोटों की गिनती भी उसी स्थिति में होगी जब मत पेटिका के वोटों से स्पष्ट निर्णय न हो। सभी शर्तों को स्वीकार कर दस मिनट में संपूर्ण प्रक्रिया पूरी कर ली गई। सबसे पहले चेलेंज वोट पड़े फिर अन्य। मतगणना से सभी हाउस के चारों पदों पर स्पष्ट निर्णय आया, बस टैगोर हाउस के कैप्टन पर पेंच फंस गया। इस बार चेलेंज वोट का लिफाफा खोला गया। टैगोर हाउस का भी निर्णय स्पष्ट हो गया। अब बारी थी विद्यालय के हैड बॉय और हैड गर्ल की। इस पद पर सिर्फ ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों को ही आवेदन की छूट थी। इस पद पर चुनाव अगले शनिवार को हुआ। इस चुनाव में सभी हाउस के पदाधिकारियों के वोट का मूल्य दो था और अन्य सभी मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव के वोट का मूल्य एक। इस बार सभी प्रत्याशियों ने पहले से ही मतदाता सूची दुरूस्त करा ली थी। प्रत्येक वोटर को दो मत पत्र मिले चार लड़के और छः लड़कियाँ मैदान में थीं। सभी के चुनाव चिन्ह भी अलग-अलग थे। हाउस के पदाधिकारियों को दो अंक वाली मुहर मिली थी और अन्य सभी मतदाताओं को एक अंक वाली। इस तरह यह चुनाव भी संपन्न हुआ।

अब विद्यालय में हर रोज समापन के समय जीरो आवर हुआ करता था। इस आधे घण्टे के समय में सभी बच्चे अपने मन का काम करते। जिसे खेलना होता वह खेलता, पढ़ने वाला पढ़ता। हैड बॉय और हैड गर्ल सभी हाउस के पदाधिकारियों तथा मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव के साथ मीटिंग करते। पूरे विद्यालय के सभी विद्यार्थियों को उनके अनुक्रमांक के अनुसार हाउस में विभाजित कर दिया गया था।

विद्यालय का माहौल पूरी तरह बदल चुका था। किसी भी विद्यार्थी को कोई समस्या होती तो वह अपनी कक्षा के मॉनीटर या क्लास रिप्रजेंटेटिव से कहता। वे या तो उसकी समस्या का समाधान कर देते या उस विद्यार्थी से संबंधित हाउस के पदाधिकारियों को सूचित करते। वे भी पहले तो अपने स्तर पर समस्या का समाधान निकालते अथवा हैड बॉय या हैड गर्ल को सूचित करते। इसके बाद भी समस्या का समाधान न हो पाता तब जाकर उस समस्या को प्रधानाचार्य जी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता। इस प्रक्रिया ने सभी विद्यार्थियों को तो सक्रिय किया ही था। साथ ही प्रधानाचार्य का भी काम काफी हद तक कम कर दिया था। हाँ यह बात अलग है कि विद्यार्थियों से अध्यापकों का सीधा नियंत्रण समाप्त हो गया था। उन्हें प्रत्येक फैसले के लिए पहले मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव को सहमत करना पड़ता था और फिर यह जरूरी तो नहीं कि अध्यापक की प्रत्येक बात से मॉनीटर और क्लास रिप्रजेंटेटिव सहमत हो ही जाएँ। ऐसे में इस पूरी प्रक्रिया की सफलता के बाद आनंद प्रधानाचार्य का तो करीबी हो गया किंतु कई अध्यापक उसके विरोधी हो गए।

एक दिन एक मित्र ने आनंद से पूछ लिया, 'मित्र! इन फालतू के चोचलों से विद्यार्थियों का क्या भला हुआ।

बिना मतलब ही तुमने इतने हैडक बढ़ा दिए।' आनंद ने उसे समझाया 'मित्र! ये फालतू के चोचलें नहीं पाठ्य सहगामी क्रियाओं का अंग है। इससे बच्चों में लोकतंत्र की समझ विकसित होगी साथ ही अपने वोट के महत्त्व का भान अभी से हो जाएगा तभी तो ये निष्पक्ष निर्वाचनों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु कटिबद्ध होंगे। और फिर खेल-कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रार्थना, रैली, बाल सभा आदि सभी में इन बच्चों के सहयोग से हम अध्यापकों का ही काम तो आसान होगा।' आनंद की बात से वह मित्र तो सहमत हो गया किंतु हर किसी को सहमत करना किसके बस की बात है।

विद्यालय में विज्ञान प्रदर्शनी की अद्वितीय सफलता में विभिन्न पदों पर सेवारत विद्यार्थियों ने जिस तन्मयता के साथ सहयोग किया उसकी प्रशंसा प्रत्येक उस व्यक्ति के मुख से सुनी गई जो इनके चुनाव वाली प्रक्रिया का खुलकर विरोध कर रहे थे। यहीं से विद्यालय के वार्षिकोत्सव को और भी अधिक धूमधाम से मनाए जाने का विचार जागृत हुआ। इस बार पिछले वर्षों से काफी कुछ अलग होने जा रहा था। सभी विद्यार्थी पदाधिकारियों का जोश देखते ही बनता था। कुल बत्तीस कार्यक्रम तैयार किए गए। पिछले वर्षों में इनकी संख्या दस से बारह के बीच ही रहती थी। मुख्य अतिथि के रूप में मण्डलायुक्त की स्वीकृति मिली। अब चर्चा थी कि कार्यक्रम का संचालन कौन करेगा। सभी ने एक स्वर में कहा 'आनंद'! 'अरे! ये क्या बात हुई? जब विद्यालय के हैड बॉय और हैड गर्ल अपना प्रत्येक कार्य पूरी निष्ठा से कर रहे हैं, तो फिर संचालन मैं क्यों करूं? वे ही करेंगे। इस बार हर ओर सन्नाटा। प्रधानाचार्य जी ने धीरे से कहा 'आपकी बात अपनी जगह ठीक है, किंतु कार्यक्रम में मण्डलायुक्त आ रहे हैं इसलिए हम न तो बच्चों पर भरोसा कर सकते हैं और न रिस्क ही ले सकते हैं, आप नहीं करना चाहते तो रहने दीजिए, हम उन्हीं को बोल देंगे जो पिछले कई वर्षों से कार्यक्रमों का संचालन करते आ रहे हैं। इस बार आनंद का आपा टूटा, 'क्यों? क्या हुआ? बच्चों पर भरोसा क्यों नहीं कर सकते? मण्डलायुक्त कोई भूत थोड़े ही हैं जो बच्चे उन्हें देखकर डर जाएंगे। और मान लो बच्चों से कोई गलती हो भी गई, तो क्या हुआ! हम उनसे माफी माँग लेंगे। वैसे भी कोई माँ के पेट से तो सीखकर आता नहीं, सब यहीं आकर सीखते हैं। हम बच्चों को अवसर ही नहीं देंगे तो वे कैसे सीखेंगे? और फिर हम क्या मर गए हैं, हम सिखाएंगे बच्चों को।'

प्रधानाचार्य जी बहुत अच्छे से जानते थे... आनंद को और उसके कमिटमेंट को। वो जो एक बार कह दे, फिर उस बात से पीछे नहीं हटता; परिणाम चाहे जो भी हो। सहमति इसी बात पर हुई कि कार्यक्रम का संचालन स्कूल के हैड बॉय और हैड गर्ल ही करेंगे। कार्यक्रम के अगले दिन अखबारों में हैडलाइन छपी "मण्डलायुक्त ने की कार्यक्रम के संचालक हैड बॉय और हैड गर्ल की भूरि-भूरि प्रशंसा।" प्रधानाचार्य ने अगली मीटिंग में आनंद की प्रशंसा करते हुए कहा कि 'आनंद का निर्णय ही सर्वोत्तम था।'

अब तो लगभग सभी साथी आनंद के मित्र ही बन गए थे। और वे करते भी क्या? विरोध करने का भी तो कोई लाभ न था। आनंद ठहरा आनंद, किसी की सुनता ही कहाँ है। ऐसे ही सब लोग उसे आनंद थोड़े ही कहते हैं। यथार्थ तो यह है कि आनंद का वास्तविक नाम तो सिर्फ उसके दस्तावेजों को पता है या फिर उनको पढ़ने वालों को। बाकी सब तो आनंद ही कहते हैं। इस नाम की भी अपनी मस्त कहानी है। कभी भी कोई भी पूछे कैसे हो भाई, 'आनंद!' क्या हो रहा है, 'आनंद!' हर सम-विषम परिस्थिति में एक ही उत्तर होता है, 'आनंद!' इसीलिए उसे सब आनंद ही कहने लगे हैं। अब वह भी भूल चुका है कि उसका वास्तविक नाम तो कुछ और ही है।

एक मच्छर ने अबकी बार बाजू में डंक मारा।

मच्छर तो इस बार भी ढेर हुआ, किंतु इस बार मच्छर और हाथ दोनों की ही चुभन इतनी हुई कि दोनों में अंतर समाप्त ही रहा। घड़ी पर दृष्टि डाली तो पता चला, चार बजकर ग्यारह।

इण्टर कॉलेज में पढ़ाते समय जब बोर्ड परीक्षा में ड्यूटी लगी तो पता चला कि लगातार तीन घण्टे तक बिल्कुल मौन रहने की ड्यूटी कितनी कठिन होती है। जब भी घड़ी की ओर देखो, हर बार सुई दो, चार, छः मिनट से आगे बढ़ी हुई मिलती ही नहीं। और जब स्वयं परीक्षा देते थे तब हर बार समय कम ही पड़त रहा। एक बड़ा प्रश्न यही रहा कि ये सब लोग आखिरकार लिखते क्या हैं कि ए, बी यहाँ तक कि सी और डी कॉपी तक भर आते हैं। हम से तो कभी ए ही पूरी नहीं भरी गई। हर बार यही सोचते कि जो पेज बच गए वे तो बेकार हो गए। काट ही लिए होते, कुछ लिखने के काम आते, परंतु यह संभव ही कहाँ था। पूरी कॉपी भरने की तो बात ही दूर, हमसे तो कभी पूरा पेपर भी हल नहीं हुआ, हर बार कोई न कोई प्रश्न छूट ही जाता। कारण एक ही था, समय ही नहीं बचा और आज की रात है कि घड़ी की सुई आगे ही नहीं बढ़ती।

यूँ तो घड़ी की प्रत्येक सुई अपनी गति से ही आगे बढ़ती है, फिर भी कुछ तो है जो कभी समय बीतने नहीं देता और कभी समय बचने नहीं देता। मुझे लगता है कि ये सिर्फ मानव मन का भ्रम है, किंतु यह बात सच तो हनीं, वर्ना जिन दिनों चार पैसे कमाने के लिए बारह घण्टे कई सौ डिग्री सेल्सियस के ताप में तपती भट्टियों के सामने से बार-बार गुजरने पर भी समय चलता कहाँ, रेंगता था। चाय पीने के नाम पर दस मिनट की छुट्टी लो तो दस मिनट आते-जाते ही फुर्र...। समय की यह दौड़... कभी मासा कभी तोला... घड़ी की सुइयों की गति वैसी ही, जैसी सदा।

इस बार मच्छर चुपके से कान पर डंक मार कर निकल गया। रह गई बस तिलमिलाहट। सुमन बाहर से भले ही कठोर हो भीतर से बहुत कोमल। हर मुद्दे पर या तो बिल्कुल चुप रहना, या फिर दो टूक राय रखना, आर या पार। किसी को बुरा लगे तो लगता रहे... ऐसा भी नहीं है। वह किसी से कहे या नहीं, किंतु जो कुछ भी उसकी नजर में उचित नहीं, वह उस पर लंबे समय तक चिंतन करती है, पश्चाताप भी। हाँ, ये बात अलग है कि उसके पास लुभवनी लपेटेदार भाषा का वाग्जाल नहीं। कोई बात बुरी लग जाए तो उस पर भी चिंतन उतना ही लंबा। किसी बात के लिए हाँ या ना जो भी एक बार कह दिया तो फिर उस निर्णय को बदलवाने का प्रयास व्यर्थ ही है। गुस्से की पहचान बस एक ही, मौन। क्रोध के कम होने का एक मात्र माध्यम, चुप रहकर समय बीतने दो। यदि नाराज नहीं करना तो पूरी सावधानी से बात करो, न एक भी शब्द कम, न ज्यादा। साथ रहते-रहते काफी कुछ समझ चुका हूँ। फिर भी त्रुटि हो ही जाती है। आज की त्रुटि कुछ ज्यादा ही बड़ी थी। अब तो इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि कुछ और न हो जाए... वर्ना तो कोढ़ में खाज।

पंखा अपनी गति से चल रहा है। मच्छर कान के आस-पास बीन तो नहीं बजा रहे, अवसर खोजकर डंक अवश्य मार जाते हैं। ये डंक जीवन के न जाने कितने पहलुओं को कुरेद रहे हैं। एक मतदाता जागरूकता मंच पर पिंकी किन्नर टकरा गई। बड़ी ही खूबसूरत थी, किसी कमसिन हसीना से एक सूत भी कम नहीं। यदि किसी को पता न हो कि वो किन्नर है, तो अच्छा खासा आदमी भी दीवाना हो जाए। इस अलग-सी दुनिया के प्रत्येक सदस्य की अपनी ही कहानी है, हर कहानी में जो कुछ समान है वह है 'खून के आँसू'। हर किन्नर की व्यथा-कथा कमोवेश एक-सी ही है; परिवार में तिरस्कार, समाज में अस्वीकृति, अपनों के द्वारा ही अपमान, यौन शोषण, बलात्कार। किन्नरों की दुनिया का एक ऐसा सच, जिसे कोई स्वीकारे या न स्वीकारे, सच बदलता नहीं। इसी पथ से गुजरती है हर

किन्नर की जीवन यात्रा। पिंकी की कहानी भी कुछ ऐसी ही थी। सुनाते समय वह रो रही थी और सुनते समय मैं। वह जल्दी में थी। बता रही थी, "मेरे गुरू का फोन आ रहा है, कहीं बधाई के लिए जाना है, मेरा फोन नंबर लिख लो, बाद में बात करती हूँ।" कहकर तेजी से चली गई। उसका चेहरा अभी भी जस का तस छपा है, आँखों में...। इस जीवन का भी कोई उद्देश्य है, कोई मार्ग है, कोई मंजिल है? पता नहीं। पर यह भी झूठ नहीं कि किन्नर भी इसी दुनिया के प्राणी हैं, खाते हैं, पीते हैं, पहनते हैं, सोचते हैं, समझते हैं। हर वो काम कर सकते हैं, जोकि एक पूर्ण नर या पूर्ण नारी कर सकती है। बस एक ही काम है जो वे नहीं कर सकते 'नव-सृजन'...! उसकी आवश्यकता भी क्या है! वैसे ही जनसंख्या कम है क्या? जो हैं उन्हीं के खाने-पहनने के लाले हैं। पूरा विश्व जनसंख्या के बारूदी ढेर पर है।

हर ओर कंक्रीट के जंगलों का विस्तार हो रहा है। एक स्थान पर एक वर्ष बाद जाओ तो नजारा ही कुछ और हो। जमीन पर जगह न मिले तो एक के ऊपर एक... मंजिलें गिनते रहो...। जमीन ही नहीं बची तो अन्न कहाँ उगेगा! फिर क्या मनुष्य मनुष्य को ही खाकर अपनी छुदा मिटाएगा...? इन सब बातों पर सोचने का समय किसके पास है! जिंदगी यूँ ही भागती-दौड़ती चली जा रही है, लक्ष्य हीन...!

गली में साइकिल के आने की आवाज सुनाई दी। कोई कारीगर कारखाने में काम करने जा रहा होगा! मतलब... साढ़े चार बजने को हैं। अभी थोड़ी देर में हर ओर चहल-पहल हो जाएगी। गली से लगातार साइकिलों के गुजरने की आवाजें होंगी। इक्का-दुक्का मोटरसाइकिल भी निकलेगी। जिंदगी एक कदम और आगे निकलेगी। और फिर नींद का क्या? अभी तो कहीं आस-पास भी नहीं।

सुमन का विजन बिल्कुल स्पष्ट है, अपने काम से काम। कहाँ क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, मतलब नहीं! कोई कुछ भी करे, कहीं जाए, कुछ भी खाए सब की अपनी स्वतंत्रता है। सुमन का किसी से कोई सरोकार नहीं। किसी भी प्रश्न के लिए कोई स्थान नहीं। सब कुछ उत्तरित, सीधा-सपाट। लाग-पलेट जैसी कोई बात नहीं। शुचिता तन से मन तक, वाणी से भाषा तक, भाव से विचारों तक...। यानी कि शुचिता भी यदि स्पर्श कर ले, तो और अधिक शुचितापूर्ण हो जाए।

आनंद और सुमन की वार्ता जब पर्सनल हुई तो लगा कि कुछ बात तो है, औरों से भिन्न। मित्रता में भी कोई शर्त होती है क्या? हो न हो, पर यहाँ तो थी। मर्यादा का पालन...! हो भी क्यों न? मानव और पशु में कोई तो अंतर है। मानव-जीवन की मर्यादा और संघर्षी प्रकृति उसे पशु से भिन्न बनाती रही है। निराला ने स्वीकारा है "धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध, धिक् साधन जिनके लिए सदा ही किया शोध!" अर्थ हीन लक्ष्य और लक्ष्य हीन जीवन दोनों की गति तालाब के जल के समान ही है, परिणति है 'सड़न'!

इस बार मर्यादा का उल्लंघन या तो वास्तव में हुआ या मान लिया गया, दोनों ही स्थितियों में से जो भी सही, मन पर बोझ तो बढ़ा ही। और फिर निमंत्रण मिला क्रोध को। क्या सुमन को नींद आ गई होगी? लगता तो नहीं, वह तो और भी अधिक संवेदनशील है। छोटे बच्चों की तरह से रिजेक्ट करते समय तो मानो बिल्कुल बच्ची ही हो जाती है, छोटी बच्ची...।

आनंद ने फिर से करवट बदली। सामने मेज पर रखे लैपटॉप पर दृष्टि पड़ी, सेंट्रल लाइब्रेरी दिल्ली से प्राप्त पत्र का प्रिंट लेना था... कई दिनों से ध्यान ही नहीं। आनंद ने चारपाई छोड़ी। लैपटॉप खोला। प्रिंट लिया और फिर आकर लेट गया। घड़ी की ओर देखा... चार बजकर पैंतालीस।

नीम पर बौर लदा है। डालियाँ झुकने की प्रक्रिया में हैं। सुना है फलदार वृक्ष झुक जाता है। व्यक्ति जब

वास्तविक संपन्नता को प्राप्त करता है, तो विनम्रता उसके स्वभाव का अंग बन जाती है। स्ट्रीट लाइट के दूधिया प्रकाश में नीम का बौर और भी मन भावन लग रहा है। कुछ दिन बाद निबौरी लगेगी। बौर झड़ जाएगा और फिर आज का यह आकर्षक नया रूप ले लेगा। पर इस बौर का क्या? जो भावी नवाचार की नींव है!

नींव को तो भूमिगत होना ही होता है। भले ही संपूर्ण इमारत की तस्वीर नींव पर ही टिकी होती है, किंतु नींव का स्थान तो गर्त में ही है। तो क्या सुमन की सफलता की इमारत में मेरा समर्पण गर्त में धकेल दिया जाएगा। आनंद छटपटा कर उठ बैठा। पंखे से फिर चीं-चीं की आवाज हुई। ऐसा लगा मानो पंखा अभी टूटकर गिर पड़ेगा। मिटा देगा, सब कुछ! आवाज थमी, आनंद का उद्वेलन भी।

जो आज नवजात है, वहीं कल युवा होगा और फिर वृद्ध होकर झड़ जाएगा, नीम के बौर की तरह। यह तो प्रकृति का नियम है, अपरिवर्तनीय। आनंद ने लंबी साँस ली, आँखों पर हाथ फेरा और लेट गया।

तकरीबन दोपहर दो बजे की बात रही होगी। फोन की घण्टी बजी। आवाज सुनी हुई-सी लग रही थी। 'आनंद कल मेरी सगाई है, तुम्हें थोड़ा जल्दी ही आना है। निमंत्रण-पत्र तुम्हारे घर दे आया हूँ। ध्यान रखना समय से आ जाना। भूल मत जाना... नहीं तो समझ लियो।' बड़े दिनों बाद किसी ने इतने अधिकार से कहा था। ये कोई सहपाठी नहीं, बस मिलने वाला था, वो भी कभी कभार। कल उसकी सगाई है। जाना ही होगा। पर क्या करूंगा जाकर, जो प्यार करते हैं वे किसी भी बात का बुरा नहीं मानते। वर्ना तो किसी को क्या ही फर्क पड़ता है। यदि नहीं भी जाऊँगा तब भी वो बुरा नहीं मानेगा। मित्र जो मानता है। पर सुमन क्यों हर बात का बुरा मान जाती है? उसने भी तो मित्र ही स्वीकारा है!

शादी में जाऊँगा तो लोग शादी को कम मुझे ज्यादा देखेंगे। पहले तो कोई बोलेगा ही नहीं और फिर कोई बोला भी तो हर तरफ एक ही प्रश्न होगा, 'आनंद! आजकल कहाँ रह रहे हो, दिखते ही नहीं।' सच तो ये है कि मैं आज भी वहीं रहता हूँ, जहाँ पहले रहा करता था, वही सब कुछ करता हूँ जो पहले करता था। हाँ, ये बात अलग है कि पहले हर छोटे-बड़े कार्यक्रम में लोग बुलाते थे, डिग्निटी थी। लोगों लगता था, आनंद की उपस्थिति से आयोजन की गरिमा बढ़ेगी। इस लिए एक बार नहीं, कई-कई बार फोन आते थे।

पिछले दिनों कुछ ऐसा घटा कि अखबार से लेकर इलेक्टॉनिक मीडिया तक में आनंद की कहानी तैरी। सोशल मीडिया भी कहाँ पीछे रहता। लोगों ने चटखारे ले-लेकर बातें बनाईं, "आनंद से ये उम्मीद न थी। एक शिक्षक को ये शोभा नहीं देता। बतबना तो है ही साला। हमें तो पहले से ही पता था, हरामी है। वगैरा-वगैरा..." जिसके मुँह में जो था, सब उड़ेल दिया। जो हर दिन फोन करते थे, उनका फोन कभी-कभार भी नहीं आता। सब ने अपने आप को दूर कर लिया, काम का जो नहीं रह गया था, आनंद।

सुमन ने भी सुनी थी ये कहानी, बिना किसी प्रतिक्रिया के। बहुत पूछने पर बस इतना ही कहा, 'मुझे तुम्हारी इस बोरिंग कहानी में कोई इंट्रेस्ट नहीं, दोबारा मत छेड़ना।' इसके आगे कुछ भी नहीं, कभी भी नहीं। आज जब कोई व्यक्ति अपनी किसी गलत बात को सही सिद्ध करने के लिए दबाव बनाता है तो इसी कहानी का सहारा लेता है। एक सुमन ही तो है जिसने कभी भी उस कहानी की ओर पलट कर नहीं देखा। हर व्यक्ति सदैव हिकारत भरी दृष्टि ही डालता है, और सुमन... उसे तो बस अपने काम से काम रहता है। उसने कभी गुस्से में भी पुरानी कहानी का स्मरण नहीं दिलाया।

जिनके छोटे से छोटे काम भी अनुपस्थिति में

संभव न थे, ऐसे लोगों ने अपनी बहन की शादी में भी निमंत्रण नहीं दिया। क्या अब इतना भी नहीं कि कन्या के हित कुछ दान दे पाता। यह पीड़ा सदैव सालती रहेगी। तुलसी का कथन है, "सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति।।" तो क्या संसार में कोई भी ऐसा नहीं जो स्वार्थ रहित प्रेम करे। बिना किसी स्वार्थ के भी संबंधों को निभाता रहे। सुमन भी तो वही है, उसके संबंध में तो स्वार्थ का लेश मात्र भी नहीं। यही कारण तो है कि वो ऐसी किसी बात को सहन नहीं करती जिसे लोग स्वार्थवश सहज ही स्वीकार कर लेते हैं और स्वार्थ सिद्ध होते ही जीवन से ऐसे पृथक करते हैं, जैसे दूध से मक्खी।

एक बड़े पुराने मित्र के घर कथा होनी थी। संस्कार चैनल पर उसका सीधा प्रसारण होने वाला था। भागवत वक्ता आचार्य बड़े पहुँचे हुए सुने जा रहे थे, नामचीन। व्हाट्सऐप पर निमंत्रण पत्र मिला। वैभव का इतना प्रदर्शन उस कार्ड पर ही था, तो कार्यक्रम स्थल पर कितना रहा होगा... विचारणीय है। फिर फोन भी आया, 'कैसा है रे आनंद?' 'ठीक हूँ'। 'घर पर बाकी सब?' 'सब ठीक हैं, तू सुना!' हम कथा करा रहे हैं, इक्कीस गाँव का भण्डारा है, आना जरूर, कार्ड व्हाट्सऐप कर दिया है।' 'ठीक है।' फोन कट गया।

विचार करने को बहुत कुछ था। पिछले कई महीनों से जिसने न तो फोन उठाया और न किया। एक बार किसी और ने उठा भी लिया तो उससे भी फोन काट देने को कह दिया। वहीं आज निमंत्रण दे रहा हैं कार्ड भी घर भेजा है। आखिर इतना परिवर्तन कैसे? अचानक से मित्रता का जागरण... आश्चर्य! कार्ड देखा तो और भी धक्का लगा। कई वर्षों बाद उसके घर से आए निमंत्रण-पत्र पर पिताजी का नाम नहीं था। यानी मित्रता के नाम पर भद्दा मजाक!

एक लंबा चौड़ा संदेश लिखा, वैभव के प्रदर्शक मित्र को जमकर लताड़ा। उधर से भी संदेश आया, "तुमको ऐसा लगता है, तो कोई बात नहीं।" फिर सदैव के लिए संवाद समाप्त। निमंत्रण आया है तो जाना चाहिए या नहीं यह प्रश्न सुमन के सामने रखा तो उत्तर मिला, मित्रता के नाम पर तो कुछ शेष है नहीं, रही बात कथा की, तो कथा सुनने में क्या हर्ज, बिना निमंत्रण के भी सुन आओ तो भी बुरा नहीं।" एक दिन की कथा सुनने का मन बना। कार्यक्रम स्थल पहुँचा तो जानने-पहचानने वालों की दृष्टि वैसी ही, जैसी कल्पित थी। कुछ देर में ही मन उचट गया। कुछ पुष्प-पत्र भेंट किए... चलता बना। उस दिन से तय किया, कहीं जाना ही नहीं। किसी के होने या न होने से किसी कोई फर्क नहीं पड़ता। सब मन का भ्रम है कि हम न होंगे तो हमारे बाद क्या होगा? सब कुछ अच्छा ही होगा... पहले आप जाओ तो सही। दुनियाँ तुमसे भी बेहतर चलेगी।

जिन विद्यालयों से अध्यापन छोड़ा वे क्या अब बंद पड़े हैं? जिन स्थानों पर उपस्थिति अनिवार्य कही जाती थी, उन स्थानों का महत्त्व कम हो गया क्या? सब कुछ वैसा ही चल रहा है, उससे भी बेहतर। किसी के यहाँ आपकी कोई आवश्यकता नहीं। लोकाचार है, लोग सदियों से निभा रहे हैं और आगे भी निभाते रहेंगे।

आनंद ने घड़ी की ओर देखा, पाँच बज चुके हैं। अंधेरा भी पहले की अपेक्षा कुछ कम हुआ है। स्ट्रीट लाइट की रोशनी अभी भी नीम की कोंपलों को दूधिया किए हुए है।

आनंद ने जग में से एक गिलास पानी पिया। आकाश में बिजली चमकी। कुछ सेकेंड बाद गड़गड़ाहट सुनाई दी। नीम की कोंपलें हवा के सहारे हिलने लगीं। बौर हवा के साथ ऐसे छूल रहा था मानो कोई सोड़षी झूला। स्ट्रीट लाइट की दूधिया रोशनी मानो नृत्य कर रही हो। हवा में ठण्डक बढ़ चुकी है। सवेरा होने को है। आनंद ने कंबल ओढ़ा। मित्र ने अधिकारपूर्वक निमंत्रण दिया है, समय से

पहले ही आने का आग्रह है। निमंत्रण कार्ड न केवल व्हाट्सऐप किया अपितु घर देने आया। जाऊँ या न जाऊँ। सुमन से चर्चा कर लेता, पर वो तो नाराज है। अब तक कोई संदेश भी नहीं आया। ऐसे में उसे छेड़ना उचित नहीं। प्रतीक्षा ही एक मात्र विकल्प। घड़ी की ओर देखा, पाँच बजकर पच्चीस मिनट। अब मच्छर भी सो गए लगता है। मित्रता का सही अर्थ सुमन ने ही सिखाया। और फिर यह निमंत्रण... इसका क्या करूं...! कुछ समझ में नहीं आ रहा...! सोचते-सोचते कब आँख लगी... कब नींद आई... कुछ ज्ञात नहीं।

पता- "कनक-निकुंज", ठार मुरली नगर,
गुंदाऊ, लाइन पार, फिरोजाबाद
उत्तर प्रदेश- 283203
मो0- 7017646795/9259648428

तुम्हारे साथ
देखते-देखते
समुद्र पर पुल बन गया है,
ऊँचे गिरी शिखरों तक सड़क
जन-संकुल नगरों से दूर निकल आया हूँ
हाथों में थामे तुम्हारा हाथ।

- दुष्यंत कुमार

सेतुबन्ध

➲ डॉ. संगीता सक्सेना

फूल और खुशबू-सा साथ होता है बचपन और जिद का। प्रशा और शुभम ने जिद करके अपने दादाजी कर्नल रेवतीरमण सिंह को उनके साथ पूरे एक हफ्ते रूकने के लिए मनाने में जीत हासिल कर ही ली।

"आपका बैग ही छुपा दिया मैंने, आप अब कैसे जाओगे?" प्रशा दादाजी के एक कंधे पर लटकती हुई बोली।

"छुपा लो, छुपा लो, कपड़े तो बहुत सारे हैं मेरे अपने फार्म हाउस पर।" दादाजी उसी की तरह ठुमकते हुए बोले।

"आपकी जीप की चाबी मिलेगी तभी तो जाएंगे वह भी गुम हो गई।" शुभम दूसरे कंधो पर लटकने से भला कब पीछे रहता।

"ओ माय गॉड, फिर तो मुझे बस से जाना पड़ेगा।" दादाजी भी जिद पर अड़े थे।

"पिताजी, बच्चे इतनी जिद कर रहे हैं तो रूक जाइए न इस बार।" अनुज अपने पिता के आगे तो बच्चा ही था।

"हाँ पिताजी, आपके रहने से बच्चों का मोबाइल में लगे रहना भी कम हो जाता है। हम सबको अच्छा लगेगा।" बहू रितिका ने जोर दिया।

"अच्छा ठीक है बाबा, पर अगले संडे तो जाऊँगा ही।" अंततः उन्हें हथियार डालने ही पड़े।

"ये... ये... अब तो मजे करेंगे।" आठ और छः साल के दोनों प्रशा और शुभम उर्फ़ चुन्नू-मुन्नू शैतान खुशी से बेड पर उछलने लगे।

सेवानिवृत्ति के बाद कर्नल रेवतीरमण सिंह ने अपने बेटे-बहू के शहर के बाहरी इलाके में एक बड़ा फार्म हाउस ले लिया था। देखभाल व कामकाज के लिए एक गरीब परिवार को रख लिया था। फल, फूल, सब्जी सभी को उगाने का काम बड़ी अच्छी तरह करते थे वे लोग। एक ऑर्गेनिक एजेंसी स्वयं ही वहाँ से उत्पाद मंगा लेती थी। इस तरह रेवती सिंह ने अपने शौक को ही छोटे व्यवसाय में बदल लिया था। उपयोगिता और व्यस्तता जीवन को सही मायने देती है।

सप्ताहांत पर दादाजी ढेर सारे ऑर्गेनिक फल, सब्जी लेकर आते थे तो प्रशा और शुभम की मौज हो जाती थी। दिन भर ऊधम-धमाल-मस्ती चलती रहती। आर्मी के किस्से, बहादुरी की बातें, देशप्रेम की कहानियाँ, पार्क में घूमना, खेलना-दोनों बच्चे एक पल के लिए भी नहीं छोड़ते थे उन्हें। और इस बार तो सबने मना ही लिया उन्हें रूकने के लिए। दो छुट्टियाँ आने पर अनुज और रितिका भी बच्चों को लेकर फार्म हाउस जाते थे।

कॉलोनी के पार्क में शाम को पाँच बजे से बच्चे और वृद्ध ही अधिक दिखते थे। बच्चे खेलते-कूदते, घूमकर

बैठे हुए वरिष्ठजन उनको खामोश निहारते हुए... शायद अपना बचपन याद करते हुए से। कर्नल साहब की नमस्कार सभी से थी पर वह इस निष्क्रिय समूह में शामिल होने से बचते थे। वह जब भी यहाँ आते, बच्चों के संग बच्चा बनकर खेलों में भाग लेते। चाहे बैडमिंटन हो या फुटबॉल। प्रशा और शुभम को अपने बाल-समूह में अपने दादाजी के ऊपर इसीलिये बहुत गर्व महसूस होता था। उद्यान की यह चल-पहल सात या साढ़े सात बजे तक रहती। भगवान भास्कर के अस्त होते ही धीरे-धीरे सब जाने लगते थे। इस बार कर्नल साहब ने यह तथ्य बारीकी से नोट किया। भीतर पैठी असली रचनात्मकता हो या प्रतिभा, नदी की तरह अपनी राह बना ही लेती है।

घर पहुँचने तक कर्नल साहब के सेनानी मस्तिष्क में एक अद्‌भुत अनूठी योजना का जन्म हो चुका था। इस प्रायोगिक मिशन को नाम दिया उन्होंने 'सेतुबंध'। अब उन्हें अगले दिन के पाँच बजने का इंतजार था। जब तक प्रशा और शुभम से कुछ बातें करनी थीं।

"अच्छा प्रशा, पार्क में आने वाले सारे बच्चे तुम्हारे दोस्त हैं?"

"नहीं दादाजी, बड़े भैया लोग भी आते हैं, उनसे बात नहीं करते हम।"

"और जो इतने बूढ़े अंकल बैठते हैं वहाँ, उन्हें जानते हो तुम?"

"थोड़े-थोड़े को जानते हैं हम, स्ट्रेंजर्स से बात नहीं करते मम्मी ने कहा है ना।" शुभम ने समझदारी की बात की।

"यह तो अच्छी बात है शुभम, पर क्या तुम्हें पार्क में खेलना अच्छा लगता है?"

"दादाजी हम तो वहाँ भी बोर होते रहते थे। क्या खेलें? क्या खेलें? यही सोचते रहते... पर आज आपने 'खो-खो' खेलना बताकर हमें नया गेम सिखा दिया। बहुत ही अच्छा लगा हमें।"

"बच्चों, ऐसे तो हमारे देश के बहुत सारे खेलकूद यानि गेम्स हैं जो दम तोड़ते जा रहे हैं। बच्चे खेलते नहीं हैं इसलिए खत्म होते जा रहे हैं।" दादाजी पचपन साल पहले की दुनिया में चले गये थे।

"कौन से खेल दादाजी?" भविष्य ने उन्हें झकझोरा।

"हाँ बेटा, जैसे कबड्डी, ऊँच-नीच, गिल्ली-डंडा, लंगड़ी टांग, चेन-चेन, टिपीटॉप, गुट्टे, चंगा-पो, कंचा, पीठो, पोशंपा और भी बहुत सारे। और तो और भारत के हर स्टेट के अलग खेल हैं। आप बच्चे लोग खेलोगे नहीं तो जानोगे कैसे उन्हें।" पुल की नींव गहरी रखना आवश्यक था।

"आप बड़े बताओगे नहीं तो हम जानेंगे कैसे?" नन्हें सटीक प्रतिप्रश्न के साथ एक किनारा तैयार था बंधने को।

"ठीक है बेटा, सब सिखाया जाएगा आपको।" दादाजी ने प्यार से उन दोनों के सिर पर हाथ फेरा।

"चलो, चलो, अब डिनर का टाइम हो गया। आपकी मम्मी दो बार आवाज लगा चुकी हैं। मेरी भी डांट पड़ जाएगी।" कृत्रिम भय, तोतली वाणी और जिज्ञासा बड़ों को बच्चों के समूह में सम्मिलित करने में सहायक होता है।

"आपकी डांट... हा... हा... हा... दादाजी आप तो सबसे ही बड़े हैं। आपको कौन डांट सकता है?"

"बेटा, जब छोटे जब प्यार से डांटते हैं तो वह हक-अधिकार वाली डांट भी बड़ी प्यारी लगती है।"

दादाजी की यह बाद शायद दोनों की समझ में नहीं आई तभी बस मुस्कुराकर रह गए दोनों। अगले दिन पार्क में पहुँचते ही दादाजी ने जो सबसे पहला काम किया वह था अपनी ही उम्र के लोगों से गर्मजोशी से बातचीत करना। जान-पहचान बढ़ाना। पुल का दूसरा किनारा भी तो

परखना था। सब कॉलोनी के ही लोग थे। गुप्ताजी शिक्षा-भवन से सेवानिवृत्त है। सिंह साहब चार साल पहले वाटरवर्क्स से रिटायर हुए थे। सूद साहब को रिटायर होने में दो माह ही शेष थे। परिहारजी अपना बिजनेस बेटे को सौंप अब बेफिक्र थे। करीब दस लोगों के जत्थे में दादाजी बात करने में ऐसे मशगूल हुए कि उन्हें बच्चे याद ही नहीं रहे।

"दादाजी, आपने नया गेम सिखाने का प्रॉमिस किया था। सब बच्चे इंतजार कर रहे हैं आपका।" प्रशा और शुभम ने आकर उन्हें झकझोरा।

"ओह... मैं तो अपने दोस्तों से बातों में लग गया, चलो... चलो आता हूँ।" दादाजी ने बच्चों की ओर हाथ हिलाया।

"इन बच्चों को खेलता देख अपना बचपन याद आ जाता है। मौका मिलते ही हम भी घर से रफूचक्कर हो जाते थे।" गुप्ताजी बोले।

"तो क्यों ना हम सभी अपना बालपन इनके साथ फिर से जी लें।" कर्नल साहब को बात का सिरा पकड़ते देन ना लगी।

"वह कैसे?" एक साहब ने पूछा।

"वो ऐसे कि हम इन्हें अपने जमाने के खेलकूद सिखाएंगे जो अब मरते जा रहे हैं। और इस तरह हम अपनी खेल-संस्कृति को नयी पीढ़ी के हाथों में सौंप सकेंगे।" दादाजी ने अपनी दृष्टि स्पष्ट की।

"हाँ विचार तो बहुत ही अच्छा है। हर्र लगे ना फिटकरी रंग आए चोखा।" एक साहब बोले।

"सही कह रहे हैं आप, हम सिर्फ बच्चों को, उनके माँ-बाप को कोसते रहते हैं कि अपनी सभ्यता, संस्कृति सब भूलते जा रहे हैं। संस्कारों से दूर का भी नाता नहीं रहा है। इस तरह खेल के माध्यम से हम बहुत कुछ बांध सकते हैं।" सूद साहब सहमत थे।

"खेल-खेल में कुछ अलग से सीखने का एहसास भी नहीं होगा बच्चों को और हम समाज के सुंदर भविष्य का निर्माण कर पाएंगे। अपनी विरासत भी सुरक्षित हो जायेगी।" सिंह साहब भी सक्रिय हो गये थे।

"अपना जीवन भी तो सार्थक हो जाएगा भाई। समाज से इतना लिया है तो देना भी चाहिये।" परिहारजी का उत्तम विचार था। यह नई टोली भी तैयार थी, उत्साहित थी नई पारी के लिए।

सबसे पहले सूद साहब आगे आए, "मैं आज कबड्डी सिखाता हूँ इन्हें।"

"क्या बात है!! आनंद ही आ जाएगा सिंह साहब!" कर्नल साहब ने उनका उत्साह बढ़ाया।

कुल बीस बच्चे और छह बड़े इस मिशन में सम्मिलित होने को तैयार थे। अब क्या था। पाला बन गया। नियम समझाए गए। बंदिशें बतायी गयीं। रेफरी बन गए सूद साहब। कर्नल साहब प्रशा और शुभम वाली टीम में थे।

शौर्य और कौशल की असली परीक्षा तो मैदान में ही होती है। दोनों सेनायें डट गयीं। इधर वाले बच्चों को बहुत आनंद आया कबड्डी... कबड्डी... कबड्डी करते हुए दूसरे पाले में जाकर प्रतिद्वंदी को आउट करने में। उधर वाले बच्चों को आगंतुक की टांग व धड़ पकड़कर उसे अपने पाले में जाने से रोकने में। अनूठे रोमांच ने सभी को सराबोर कर दिया। गूंगे के गुड़ जैसे ही खेल का रोमांच अनिवर्चनीय होता है। कब सात बज गए पता ही नहीं चला। मन न होते हुए भी गेम ओवर किया गया। कल फिर मिलने के वादे के साथ सब घर को रवाना होने लगे।

"कल मैं चेन-चेन वाला गेम खिलाऊँगा।" सिंह साहब के स्वर में उत्साह था पुरातन और भविष्य के ऊपर वर्तमान का सेतु तेजी से बनने लगा था।

"जरूर। कल की कैप्टनशिप आपके नाम।" कर्नल साहब ने सबसे हाथ मिलाया कहा और सब विदा

हुए।

घर पहुँचते ही हैंडवाश करके शुभम ने गाना गाया, "मम्मी, मम्मी, भूख लगी।"

"खाना दे दो भूख लगी।" प्रशा ने तुक मिलायी।

"अरे वाह! जिन्हें जबरन खाना खिलाना पड़ता था वह चूहे आज इतने भूखे हैं!!" रितिका ने प्लेटें लगाते हुए प्यार भरा उलाहना दिया।

"मम्मी आज कबड्डी खेलने में बहुत मजा आया, दादाजी हमारी टीम में थे।" शुभम ने समाचारा दिया।

"यह भूख-प्यास इस खेल एक्टीविटी का ही परिणाम है बहू।" दादाजी ने कहा।

"पार्क में तो यह रोज ही जाते थे।" रितिका ने सलाद की प्लेट उनके आगे रखते हुए कहा।

"जाकर लगे हुए झूले झूलकर चुप बैठ जाते थे। आज कबड्डी की भागमभाग और धरपकड़ ने इनके पेट में कुलबुलाहट कर दी है।"

"दादाजी, खेलने का भूख से क्या संबंध है?" प्रशा का प्रश्न था।

"बच्चों, खेलने से केवल भूख का ही नहीं, हमारे स्वस्थ स्वास्थ्य और तेज मस्तिष्क का भी घनिष्ठ रिश्ता है। खेलने से हमारी सोई हुई शांत नाड़ियाँ जाग्रत हो जाती हैं, रक्त तेजी से दौड़ने लगता है। हमारा मेटाबॉलिज्म सही हो जाता है। एकाग्रता बढ़ती है। यानि...।"

"यानि खेलने से हमारी पढ़ाई भी अच्छी हो जायेगी?" दादाजी की बात काटकर शुभम बोला।

"हो जायेगी नहीं, हो गयी बेटाजी, अभी-अभी तुम दोनों ने कविता बोली-मम्मी, मम्मी, भूख लगी, खाना दे दो भूख लगी। इसके आगे की लाइन्स हैं-खा लो बेटा मूंगफली, मूंगफली में दाना नहीं, हम तुम्हारे नाना नहीं।" अनुज को भी मजेदार बातों के बीच में अपने छुट्पन की तुकबंदी याद आ गयी।

दोनों बच्चों ने पापा के लिए तालियाँ बजायीं।

"हाँ माई डियर शुभम, प्रशा। एकाग्रता से स्मरण शक्ति बढ़ती है, हम एक्टिव रहते हैं, रचनात्मकता आती है पर अब खाना शुरू करो... नहीं तो कबड्डी खेलते तुम्हारे चूहे बाहर आ जाएंगे।" रितिका की बात सुन सब हँसने लगे।

शुभम, प्रशा को ही नहीं, सभी बच्चों और उन सभी उम्रदराज लोगों को भी अगली सांझ का इंतजार था।

आज का खेल कल ही तय हो गया था। आज के नए खेल के नए निदेशक थे सिंह साहब। और खेल था-चेन-चेन। वहीं, कल की ही तरह नियम बताए गए। सभी की हथेली पुक कर एक चोर का बनाया जाना भी सभी के लिए नया था। और उल्लास के साथ शुरू हो गया चेन का बनना। कम उम्र और उम्रदराज कड़ियाँ सच में ही जुड़ने लगी थीं। जैसे-जैसे चेन बड़ी होती गई भागने में परेशानी बढ़ती गई और घेरने में आसानी। परस्पर सामंजस्य बहुत जरूरी था इसमें। खेल की समाप्ति पर सभी हांफ रहे थे। यह हांफना दिल के स्वास्थ्य के लिए बहुत अच्छा था।

"कर्नल साहब, कल बच्चों को गिल्ली-डंडा खिलाया जए तो कैसा रहेगा?" गुप्ताजी ने पूछा।

"उत्तम विचार। पर शहर में गिल्ली डंडे का इंतजाम करना टेढ़ी खीर है।" सूद साहब बोले।

"जहाँ चाह वहाँ राह। वह मैं कर लूँगा।" गुप्ताजी ने कहा, "मेरे घर में फर्नीचर का काम चल रहा है, मैं सुबह ही बढ़ई से बनवा लूँगा।"

"क्या बात है भाई, आप लोग तो बहुत बढ़िया जा रहे हैं। मेरी उम्मीद से भी तेज।" कर्नल साहब ने उत्साह बढ़ाया और इशारे से सब बच्चों को अपने पास बुलाया, "कल का हमारा गेम है-'गिल्ली डंडा' क्या खेल है

बालो?"

"गिल्ली डंडा... गिल्ली डंड।" सब बच्चे जोर से बोले।

"यह गिल्ली क्या होती है?" एक बच्चे ने पूछा।

"कल दिखाऊंगा बेटा, गिल्ली भी और डंडा भी।" गुप्ताजी मुस्कुराए।

"डंडा तो देखा है अंकल, घर में भी और स्कूल में भी।" बच्चे भी कब कम थे जवाब देने में।

अदृश्य सेतुबंध का निर्माण तेजी से चलने लगा था। अब अगली शाम का इंतजार बच्चों और वयस्कों को भाने लगा और पार्क की शाम उन्हें लुभाने लगी। अगली शाम सब बच्चे गिल्ली हाथ में लेकर उसका आकार-प्रकार परख रहे थे। इससे कैसे खेलेंगे? एक गिल्ली इतने लोग? यह कैसी है बेलन जैसी चीज? वयस्क उनके अचम्भे का रसपान कर रहे थे।

"यह सब तो खेलकर ही पता चलेगा तुम्हें बालकों।" गुप्ताजी मैदान में डट चुके थे। इस नए खेल के नियम बताए गए। रेफरी बनाया गया। सावधानियाँ भी बताई गईं। सबकी बारी आई। सबने गिल्ली उड़ाई। दूरी नापी गई। जीत-हार से ज्यादा रोमांचक था गिल्ली उड़ाना। खेल की समाप्ति पर सबके चेहरे उनकी खुशी और संतुष्टि का बयान कर रहे थे।

रोज-रोज नया परम्परागत खेल सीखते-खेलते पूरा हफ्ता कहाँ गया पता ही नहीं चला। रविवार को कर्नल साहब ने खेल के बाद सब बच्चों और बड़ों की एक मीटिंग बुलाई और अपनी बात रखी,

"बच्चों मैं परमानेंट यहाँ नहीं रह सकता। अब मुझे कल सुबह जाना होगा यहाँ से...।"

वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाए थे कि सब बच्चे एक स्वर में चिल्लाये,

"नहीं... नहीं... आप नहीं जा सकते।"

"आप सब सुनो तो बच्चों। आपकी खेल-यात्रा नहीं रूकेगी। मेरी जगह सूद साहब लीड करेंगे आपको।"

"क्यों सूद साहब?"

"तुसी फिक्र नहीं करो जी... अब हम सब इन बच्चों के दादाजी हैं। बारी-बारी खूब खेल खिलायेंगे अपने पोते-पोतियं नूं।" कर्नल साहब को सूद साहब ने आश्वस्त किया।

"कर्नल साहब, मुझे भी कुछ कहना है।" वर्माजी ने कुछ संकोच के साथ कहा।

"स्वागत है आपका, वर्माजी कहिए।" गुप्ताजी ने उनकी ओर मुड़ते हुए कहा।

"पिछले चार-पाँच दिनों से मुझे इस खेलकूद में बड़ा अच्छा लगा। पर मैं यहाँ अपने बेटे के पास आया हुआ था। वैसे मैं जबलपुर रहता हूँ कल मैं भी जा रहा हूँ वापिस पर मैं यही सब खेल गतिविधियाँ अपनी कॉलोनी के पार्क में कराऊँगा। बच्चों और वयस्कों को ऐसे ही सेतुबंध से जोहुँगा।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है। हमारा सेतुबंध विचार तो राष्ट्रीय व्यापकता की ओर बढ़ रहा है आपके माध्यम से।" कर्नल साहब की बात पर सभी ने तालियाँ बजाई। कर्नल साहब ने फिर कहा,

"यह इतने सारे दादाजी है न तुम्हारे। रोज एक दादाजी एक गेम आपको खिलवाया करेंगे। हमने बात करके तय कर लिया है।"

सबने हामी में सिर हिलाया।

एक बच्चे ने पूछा, "यह सेतुबंध क्या होता है दादाजी?"

प्रश्न गुप्ताजी ने लपक लिया, "सेतु यानि पुल, बंध यानि बांधना। हमारे आपके बीच में कर्नल साहब ने जो पुल बनवा दिया है न खेलने के लिये वही है-सेतुबंध।"

"उबाऊ शहरी सभ्यता के बीच यह एक यूनिक

और सुंदर विचार है जो हर जगह फैलता ही जायेगा। शुक्रिया कर्नल साहब।" सूद साहब ने कृतज्ञता जतायी।

"नहीं भाई, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। यह सेतुबंध हम सबका है, हम सब बनाते ही रहेंगे इसे। अच्छा सुनो बच्चों!" कर्नल साहब आगे बोले, "फिर वीक एंड यानि संडे को मैं आया करुँगा और सबको इनाम दूंगा अच्छे खेल और बढ़िया पढ़ाई का।"

"सच्ची! ढेरों इनाम!! थैंक्यू सारे दादाजी।" बच्चे बड़े उमंगित हुए।

प्रशा, शुभम मुँह पर हाथ रखकर हँस रहे थे। उन्हें पता था इनाम में मिलेंगे दादाजी के फार्म हाउस के स्वादिष्ट ऑर्गेनिक फल और सब्जियाँ।

प्रेम विस्तार की संभावनाओं के साथ दो पीढ़ियों के मध्य सुदृढ़ सेतुबंध के निर्माण का सूत्रपात हो चुका था।

पता- नीड़, 72/123
पटेल मार्ग, मानसरोवर
जयपुर- 302020
मो0- 9413395928

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता-
कहो उसे जड़ या चेतन
दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय-समान,
नीरवता-सी शिला-चरण से,
टकराता फिरता पवमान।

-जयशंकर प्रसाद

यादगार सफर

○ राजेश शुक्ल

ताजा सब्जियों का भी एक नशा होता है। जरा-सी ताक-झाँक करने पर क्या पता किसकी टोकरी में क्या नया दिख जाय और आज आपका ज़ायका ही बदल जाय! हरियाली से आँखों को तो राहत मिलती ही है, साथ ही अपनी इस आदत से उसे अलसुबह से शुरू होने वाली मेहनतकशों की जिंदगी को पास से देखने का सुख भी मिलता है। सिर्फ साग-सब्जी ही नहीं, अपने नन्हें जानवरों के लिए भी उसे थोड़ी हरियाली बटोरनी होती है।

मौसम के बदलने की आहट भी तो सबसे पहले यहीं से मिलती है!

ऐसी ही एक सुबह किसी की टोकरी में सजे हरे, चिकने नेनुओं पर वह रीझ गया। उसने नेनुए के बीच उसके पीले फूल भी जहाँ-तहाँ डाल रखे थे। कुछ में तो एकाध पत्ते भी उनके साथ लगे हुए थे। ताजगी एकदम से टपक रही थी। उसने जो भाव बताया, उसने हामी भर दी। बीस रुपये में एक किलो। लेकिन एक अड़चन खुल्ले पैसों की आ गई। उसके पास सौ का नोट था। पर उस वक्त फुटकर कराने के लिए अपनी दुकानदारी छोड़कर कहीं जाना उसके लिए जरा मुश्किल था।

'ले लीजिए न! पैसे अगली बार दे दीजिएगा।'

और तौलकर नेनुए उसने उसके झोले में डाल दिये।

अगली बार बाजार जाने पर उसने उसे खोजा, लेकिन वह कहीं दिखा नहीं, बाद के दिनों में भी उसे खोजता रहा पर वह मिला नहीं। धीरे-धीरे उसका बकाया भी ध्यान से उतरता गया।

कल अचानक उसी तरह की टाकरी में नेनुआ लिए एक युवक दिखा तो उसे पिछली घटना याद हो आई। पर उसकी सूरत उसके ध्यान से उतर-सी गई थी।

शायद यही हो! यही सोच कर सब्जी उसी से खरीदी और पूछा-'क्या कभी तुम्हारा बीस रुपया हमारे पास बाकी रह गया था?

'नहीं, किसी और का बाकी रह गया होगा।'

उसके इस उत्तर से उसे संतोष नहीं हुआ तो नेनुए वाला उसकी इस उधेड़बुन को ताड़ गया-

'अरे, बीस रुपया ही तो है। जिसका होगा वह खुद माँग लेगा।'

उसके मन का बोझ वैसा का वैसा ही रह गया, पर अब उस बोझ के रेखाचित्र पर किसी की ईमानदारी की एक सुनहरी परत जरूर चढ़ गई थी।

<u>यादगार सफर</u>

पटना से दिल्ली जा रहा था। ट्रेन शायद विक्रमशिला एक्सप्रेस थी। इस ट्रेन में अक्सर बर्थ की बहुत किल्लत रहती है। ट्रेन चली तो सामने वाली बर्थ पर एक सज्जन की सौम्यता ने मुझे आकर्षित करना शुरू कर दिया। टिकट निरीक्षक उन्हें देखते ही बोला-'सर आप...!'

'हाँ, अचानक एक जरूरी मीटिंग में दिल्ली जाना

पड़ रहा है।'

'सर आपने बताया क्यों नहीं, आज तो पूरी ट्रेन पैक है, फिर भी फर्स्ट ए.सी. में कोशिश करता हूँ।'

'नहीं... नहीं... परेशान होने की कोई जरूरत नहीं!

'सर, थोड़ी चाय व कॉफी...?'

'नहीं... नहीं...। फिलहाल इसकी कोई जरूरत नहीं।' उनकी मुस्कुराहट में एक आभार-सा था।

उनके सामानों में एक बास्केट भी थी, जिसमें कुछ किताबें थीं। उन्हीं में से एक निकल कर वे उसे पढ़ने में मशगूल हो गये। मैंने देखा-वह स्वामी सत्यानंद सरस्वती की कोई किताब थी। थोड़ी देर बाद वह फिर आया-'सर, भोजन में कुछ भी आपको पसंद हो, मैं पैंट्री कार में बनवा देता हूँ।'

'आप मेरी चिंता बिल्कुल न करें। मैं भोजन अपने साथ लाया हूँ।'

अब उनके शब्दों में एक संकोच भी छलक रहा था। कुछ देर बाद उन्होंने अपना भोजन निकाला। रोटी-सब्जी जैसा कुछ था। खाना खाने के बाद वे फिर से उसी किताब में डूब गये। वे काफी देर तक पढ़ते रहे और मैं, उन्हें पढ़ने की कोशिश करता रहा। बातचीत का कोई छोर प्रयास करने पर भी नहीं मिल पा रहा था। उन्हें अपर बर्थ मिली थी। वह टिकट निरीक्षक एक बार फिर आया, उनका कुशल-क्षेम पूछने। तब तक वे अपनी बर्थ पर जा चुके थे।

उन्हें अपर बर्थ पर देख वह कुछ हैरान-सा होता हुआ बोला-

'सर आप इतनी तकलीफ क्यों उठा रहे! एटलीस्ट सेकंड ए.सी. कोच में तो चलते।'

'अरे, इसकी कोई जरूरत नहीं। यहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं।'

उनके चेहरे पर संतुष्टि का भाव तैर रहा था। सर झुकाते हुए वह चुपचाप चला गया।

अब मुझसे नहीं रहा गया... वहाँ से थोड़ा हट कर मैंने उस टिकट-निरीक्षक से पूछा-

'अपर बर्थ वाले वे सज्जन कौन हैं?'

'ये एक आई.ए.एस. ऑफिसर हैं।' उसके शब्दों में थोड़ी मायूसी भी थी।

मैं चुपचाप अपनी सीट पर लौट आया। खिड़की के पर्दे हटाकर देखा तो विस्तृत नभ में चाँद जगमगा रहा था। जिंदगी की रफ्तार से बेपरवाह मैं देर तक उसे निहारता रहा... पता नहीं कब नींद आ गई। ऐसी नींद जो ट्रेन में शायद ही कभी मयस्सर हुई हो।

जब नींद खुली, ट्रेन दिल्ली पहुँचने वाली थी। मैंने देखा-ट्रेन में मिली चादरों को वे बड़े करीने से तह कर रहे हैं। पिलो-टॉवेल सब कुछ उन्होंने बड़े कायदे से बर्थ के एक ओर रख दिये। ट्रेन रुकी... कुली लपके... पर उन्हें शायद इनकी दरकार नहीं थी।

कुछ देर तक मैं उन्हें अपना सामान थामे भीड़ में ओझल होता देखता रहा।

रास्ते भर उनसे कोई संवाद स्थापित नहीं कर पाने का मलाल तो था... मगर बाद के दिनों में संतोष भी हुआ। अगर मैं किसी तरह के वार्तालाप में उलघ गया होता तो क्या यह यात्रा मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय यात्रा बन सकती थी?

इस घटना के वर्षों बीत गये, मगर आज भी वे सहयात्री, और धवल चाँदनी के साथ का वह सफर मेरी यात्राओं में स्पंदित होता रहता है।

पता- 41, मालती अपार्टमेंट,
आज प्रेस लेन, फ्रेजर रोड,
पटना- 800001
मो0- 9431040914

ढूँढ़ रहा हूँ

➲ मिकी पासी

मैं खुद को पाने की चाह में आँखों को हूँ मूँद रहा!
मैं खुद में खुद को ढूँढ़ रहा!!
मैं अंजनी लंबी गलियों में अकेले चला करता हूँ!
इस झूठे जग के सामने मेले से डरा करता हूँ!!
जग नाच रहा जिन गीतों पर उन गीतों को जाँचा करता हूँ।
खुद को पाने की चाह में अकेले मैं नाचा करता हूँ!!
यह कोई सुर नहीं, कोई ताल नहीं, कोई गीत नहीं, कोई बात नहीं!
जग पाना चाहता जिन चीज़ों को वह मेरे जीवन भोर नहीं वह मेरे जीवन की रात नहीं!!
मैं सूर्य उदय को देख उम्मीदों को जगाया करता हूँ
अपने सपनों की कल्पनाओं को दृश्यों में सजाया करता हूँ
सुनो मुझे ओ जग वालों मैं अलबेला-सा पागल हूँ
मैं अपने मन की तरंगों को मृदंग-सा बजाया करता हूँ
बस इतना-सा अफ़सोस है कि मैं खुद को ना पहचान सका!
क्या जीवन का उद्देश्य है यह अभी तक ना जान सका!!
आधी-आधी रातों को जो स्वप्न मुझे आते हैं!
वह स्वप्न नहीं सवाल है जो अक्सर मुझे सताते हैं!!
मन मेरा मुझसे पूछ रहा क्या जीवन का उद्देश्य तेरा है!
जब मैं खुद ही नहीं जान सका तो क्या ही कसूर मेरा है!!
सवालों से पीछा छुड़ाने के लिए उलझनों की सीढ़ियाँ चढ़ा करता हूँ!
आधी-आधी रातों को नींदो से लड़ा करता हूँ!!
मिल सकते हैं सवालों के जवाब जहाँ मैं अक्सर जाया करता हूँ!!
मगर सवालों के जवाब पाने में असफ़ल रहा करता हूँ!!
एक नए दिन के साथ नई रोशनी की शुरूआत होती है!
सवालों के जवाब तो मिलते नहीं नए सवालों से मुलाकात होती है!!
मैं अपने मन के सवालों की माला को शब्दों में हूँ गूँध कर रहा!
मैं खुद में खुद को ढूँढ़ रहा!!

पता- 890 आदर्श नगर,
नया गाँव मोहाली, पँजाब- 160103
मो0- 7973352516

प्रतीक्षा

➲ ज्ञानेन्द्र पाण्डेय

दिन ढलता है साँझ झाँकती, धड़कन है मनुहार माँगती,
दर्शन को है नयन तरसते, बिन बादल बे-वजह बरसते,
है विडंबना ये कैसी प्रियवर, सच है, कब तक भरमाओगे?
सब आये, तुम कब आओगे?
चंचल मन चकोर-सा क्यूँ है?
दग्ध हृदय विभोर-सा क्यूँ है?
अम्बर चन्द्र अठखेलियाँ खेले
आँगन में मचा शोर-सा क्यूँ है?
रात घनेरी तारे चुप हैं,
क्या जुगनू बन जल पाओगे?
सब आये तुम कब आओगे?
मैं हूँ इक अनबुझी पहेली
बन्द पड़ी-सी एक हवेली
पाहन शिला स्वरूप ढालकर
दुःख दर्द है बनी सहेली
देख रही हूँ युगों-युगों से,
राम मेरे क्या आ पाओगे?
सब आये तुम कब आओगे?
सुर है पर संगीत कहाँ है?
शब्द रचे पर गीत कहाँ है?
मंजिल एक, एक ही रास्ता
साथी है, पर मीत कहाँ है?
खिड़की खुली झाँकती आँखें,
मिलन की मोहलत कब पाओगे?
सब आये तुम कब आओगे?
गम गुबार में मचलते आँसू
मिलन की चाह में बहकते आँसू
अनजाने में हुई भूल का
प्रतिफल खूब लरजते आँसू
पीर कलेजे धधक रही है,
कैसे तपन बुझा पाओगे?
सब आये तुम कब आओगे?
दादुर मोर पपीहरा बोले
कोयल है मिसरी-सी घोले
बागन गीत सुनाती बुलबुल
मत्त-देह नागिन-सी डोले
सबरस बरस रहा है चहुँ दिशि,
क्या राग प्रीति के सुन पाओगे?

पता- ग्राम व पोस्ट-अगहर
जिला-अमेठी (उत्तर प्रदेश)
मो0- 8707689016

माँ का चेहरा

➲ मनोज शाह 'मानस'

जब...,
संतुलित होने की
कोशिश करते-करते
लड़खड़ाते हुए कदम
भटकने लगे राहों से...!
जब...,
मुस्कुराने की
कोशिश करते-करते
होठों से छूट जाए
रोते-रोते हँसी
नाहक में आहों से...!
जब...,
मिलने की
कोशिश करते-करते
जीवन का इति और अंत
टूटने लगे संबंधों के धागे
परिवारों से..., पनाहों से...!
उसी वक्त...,
मैं चुपचाप स्वयं को
सँभाल लूँगा...,
समझा लूँगा...,
और याद करूँगा...,
मुस्कुराते हुए माँ का चेहरा...!!

पता- डब्ल्यूजेड-548 बी,
नारायण गाँव,
नई दिल्ली- 110028
मो0- 7982510985

हार जाने का सुख

➲ डॉ. रश्मि श्रीवास्तव

कक्षा में,
पीछे बैठे छात्र सीख जाते हैं,
खुद ही,
हार जाने का सुख
मुस्कुराते हैं,
मार्कशीट में
दो-चार विषयों में पास हो जाने की
उपलब्धि पे भी।

उनमें होती नहीं है ज़िद,
हर एक विषय में,
सबसे अधिक नम्बर लाने की।
बजाते हैं तालियाँ,
दूसरों को मिलती ट्रॉफी,
मिलते पुरस्कार पर।
सीख जाते हैं
खुश होना अपने दोस्त की
सफलता पे
बजाना सीटी, दुसरों की खुशी पर
खुद ही।

हम सिखाते हैं
कक्षा में बैठे छात्रों को
प्रति द्वन्दिता।
आगे, बहुत आगे रहने की प्रतिबद्धता।
सुखा देते हैं
इस प्रतिबद्धता से
उनके अन्तर्मन की नमी।
सुखा देते हैं, इस प्रतिबद्धता से
संग साथ,
टोली में
बराबरी से चलने का हुनर
उसकी खुशी।

तरसते हैं फिर
विकसित हुयी सभ्यता में आगे खड़े पुरूष में
देखने को न्याय,
उसके निर्णयों में मानवता।
ढूँढ़ते हैं उसके कृत्य में
निःस्वार्थता, सहजता
जो कहीं दिखती नहीं है।
और जिसे, उन्हें,
हमनें
सिखाया भी नहीं है।

बस यूँ ही

दौड़ कर आते हैं
भीड़ भरे बाजार में
कभी-कभी किसी उत्सव किसी समारोह में
मेरे शिष्य।
छूते पाँव श्रद्धा से,
देखते कौतूहल से कहते हैं
पहचाना सर,
पढ़ाया था आपने फंला कक्षा में मुझे।

कहते हैं जल्दी-जल्दी सधे शब्दों में जाने क्या-क्या?
हम अजनबी से निहारते।
पहचानने की करते कोशिश
देखते हैं अनजानी नजर से उन्हें।

वे बताते अपनी कक्षा अपना नाम,
तारीखें, ले जाते हैं,
पुरानी यादों में मुझे
जहाँ देखता हूँ मैं।
कक्षा में पीछे दुबक कर बैठा हुआ
उनका बचपन।

याद आता है,
प्रश्नों के उत्तर याद होने पर भी उन्हें
बता ना पाने की उनकी अदा,
उनकी हिचक।
याद आती है, उनके झुके कंधों को
सीधा करने की मेरी ढेरों असफल जुगत।
याद आते हैं, उनके नकारेपन के लिए
कढ़े जाते कसीदे।
याद आती है उनकी उधम।

उन्हें आज,
यहाँ तनकर खड़ा अपने करीब देख
सोचता हूँ।
समय की रफ्तार संग
नाजुक महीन, उलझी बेलें
छतों पर, दीवारों पर फैल, अपनी गति से
बन ही जाती हैं फलदार,
बन ही जाती हैं खूबसूरत,
छायादार।
सजा लेती हैं अपनी शिराओं को
रंगीन फूलों से।
हम यहाँ घरों में,
स्कूलों में
यूँ ही करते हैं खींचतान, ठेलमठेल
इन्हें सहजने
इन्हें सधी-सी सीधी लय में, आगे बढ़ाने की।
करते भविष्यवाणी-
इनके नकारेपन की उल्टी-सीधी
देते उलाहनें
बेमतलब, बस यूँ ही।

पता- 5सी/16 वृंदावन कॉलोनी,
रायबरेली रोड, लखनऊ-226029
मो0-9935394231

मैं फकीर

➲ जय प्रकाश त्रिपाठी

सचमुच मैं भी होता फकीर
तो हर दिन ऐसा क्यों होता!

घर आता-जाता क्यों हर दिन,
सामान जुटाता क्यों हर दिन,
कुछ खोता-पाता क्यों हर दिन,
करता, पछताता क्यों हर दिन,
अपना हर मोड़ स्वयं मुड़ता,
पँछी-सी खुला-खुला उड़ता,
सचमुच मैं भी होता फकीर...!

फिर क्यों इनसे-उनसे डरता,
क्षण-प्रतिक्षण क्यों तिल-मिल मरता,
करता जो भी, अच्छा करता,
हर आज़ादी का दम भरता,
सब जन-गण-मन अपना होता,
अंधेरा नहीं घना होता,
सचमुच मैं भी होता फकीर...!

मन क्यों हँसता, मन क्यों रोता,
यश-अपयश होता, न होता,
जैसी दिन की, वैसी रातें,
हर समय एक जैसी बातें,
जैसे अपना हर शहर-गाँव,
होता न कहीं कुछ भेद-भाव,
सचमुच मैं भी होता फकीर...!

क्षय की क्षय हो या जय की जय,
गतियों में लय या महाप्रलय,
मन निर्विकार, निर्लिप्त प्राण,
क्या त्राहिमाम्, क्या त्राण-त्राण,
करता अवनी का ओर-छोर,
मानो तृण-कण-कण को विभोर,
सचमुच मैं भी होता फकीर...!

चहुँ ओर रंग-सुर-जल-तरँग,
होती नद-सी अनहद उमँग,
नभ-सी निर्मल प्रत्येक दृष्टि,
हर लय में, गति में मधुर सृष्टि,
चर-अचर स्वयं निर्माता-सा,
होता हर व्यक्ति विधाता-सा,
सचमुच मैं भी होता फकीर...!

क्या काल-देश, क्या राग-द्वेष,
क्या शेष और क्या-कुछ अशेष,
मानो समस्त में निलय-विलय,

सापेक्ष और निरपेक्ष समय,
प्राणी-प्राणी स्वयंमेव लीन,
कोई न हीन, कोई मलीन,
सचमुच मैं भी होता फकीर...!

क्या पता

लौटना कितना कठिन है,
क्या पता!
दिन, अभी कुछ और दिन हैं,
क्या पता!

ठीक से पन्ने समय के पढ़ न पाया,
घर बसाने के लिए क्यों उजड़ आया,
हर सुबह से शाम तक मरता, सिहरता,
वक्त की गठरी लिए सिर, पाँव भरता,
तंतु टूटे हुए, जो मैंने बुने हैं,
रक्त में भीगे हुए, किसने तुने हैं,
ताँत यह कितना गझिन है,
क्या पता!

चाहकर भी मृत्यु का होना, न होना,
दृष्टियों का जागना, ऊँघना, न सोना,
तीक्ष्ण, शब्दातीत, हर क्षण बिलखता है,
कुछ असंभव है, न होना चाहता है,
क्यों अकेले इस तरह सज-धज रहा है,
रिद्म में अपने अनवरत बज रहा है,
चुभ रहा किस धातु का विषबुझा पिन है,
क्या पता!

सख़्त पत्थर की तरह है, दोहरा है,
मैं जहाँ लिपटा हुआ हूँ, कोहरा है,
आ रहा इस वक्त को हँसना, न रोना,
इस तरह से आदमी का नग्न होना,
शब्दवत जो सहज है, पर बहुत तीखा,
जिसे लिखना आज तक मैंने न सीखा,
सुबह जैसा रात का बासी तुहिन है,
क्या पता!

उम्मीदें

टुकड़े-टुकड़े क़िस्से बुनना,
रात-रात भर जागना।
ऐसे जीवन की राहों पर
क्या रूकना, क्या भागना।

जिन पर किया भरोसा,
उनके मन से कोसों दूर था,
रातों में लम्बे सपने थे,
मेरा यही कुसूर था,
फटे-चीथड़े दिन अब क्यों औरों की खूँटी टाँगना।

घड़ी-घड़ी उम्मीदें टूटीं,
क़दम-क़दम विश्वास लुटा,
साथ न पाया, हाथ न थामा,
गिरते-पड़ते रोज़ उठा,
नहीं नाच पाया, हर कोने टेढ़ा-मेढ़ा आँगना।

पन्ने-पन्ने पढ़े समय ने
मेरी खुली किताब के,
काश, जड़े होते मेरे
शब्दों में पर सुर्खाब के,
उड़ते-उड़ते शाम हो गई, अब क्या पर्वत लाँघना।

घाव हरे

आज सुबह
आया था, रहा शाम तक,
वह भी
चला गया
एक दिवस और।

टुकर-टुकर
ताकता रहा क्षितिज,
सूरज
फिर
छला गया
एक दिवस और।

आँगन-आँगन
कितना रोशन था,
खुशियाँ थीं
आसमान तक,
छमक-छमक
नाचती हवाएँ थीं
पूरब से
पश्चिम की तान तक,
मुआ वक़्त
कल-परसों की तरह
उम्मीदें
सारी झुठला गया
एक दिवस और।

देखा
दिनभर चारों ओर
राहों पर
कितनी रफ़्तार थी,
मंज़िल की
ओर चली जा रही
भीड़
सब जगह अपरम्पार थी,
गोधूली के
ग़ायब होते ही
क्षणभँगुर
मधुर
सिलसिला
गया
एक दिवस और।

आओ,
सपने
बुन लें आँख-आँख,
गिन लें
पल रात-रात भर,
वैसे ही
हो लें हम हू-ब-हू,
थे जो,
कल रात-रात भर,
घाव
हरे कोई सहला गया
एक दिवस और।

पता- होमटेक ग्लोबल,
सरफाबाद, नोएडा-73 (उत्तर प्रदेश)-201301
मो0-9520268288

उच्छवास

➲ प्रकाश गोधवानी

तुम्हारी स्मृतियाँ
किसी चिड़िया की भाँति
वक्त-बे-वक्त
मन की मुंडेर पर अनायास
बैठकर कलरव करने लगती है
और मैं खो जाता हूँ
उन सुनहरे पलों में
जो तुम्हारे साथ बिताये थे
हमेशा चलना ही साथ नहीं होता
कुछ कदमों का साथ भी साथ होता है
और तुम्हारा वो साथ
आज भी मुझे आह्लादित करता है

तुम्हारी स्मृतियाँ
विवाद नहीं हर्ष उत्पन्न करती है
जीने को सम्बल प्रदान करती है
चिड़ियायें तो दिन ढलते ही
अपने नीड़ों को लौट आती है
और तब, साँझ होते ही
तुम्हारी स्मृतियों की बारात आ जाती है
मैं सब कुछ भुला
थिरकने लगता हूँ उन पलों के साथ
जो जब लौटकर कभी नहीं आने
सच है अब कोई मिलने की आस नहीं
पर केसे विस्मृत कर सकता हूँ
वो बासन्ती स्पन्दन और ऊष्ण उच्छवास

पता- एफ-2104, राजाजीपुरम्,
लखनऊ-226017
मो0- 7704900176

साहित्य के सामाजिक सरोकार

➲ ओम प्रकाश मिश्र

साहित्य श्रोताओं और पाठकों को प्रीति (आनंद) तथा साहित्यकार को कीर्ति (यश) देता रहा है। प्रश्न उठता है कि वह समाज को क्या देता है, तत्कालीन समस्याओं को उकेरने और सुलझाने में वह कितना योगदान करता है उसकी चेतना को कितना ऊर्ध्वमुखी बनाता है? हम जानते हैं कि राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और विज्ञान की तरह साहित्य भी एक साधन है जो साहित्यकार के हाथ में आकर अपेक्षित परिणाम दे सकता है। हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों में साहित्य का सामाजिक सरोकारों से कितना जुड़ाव रहा और उसकी उपलब्धियाँ क्या रही यह विश्लेषण का विषय है।

साहित्य के वीरगाथा काल में देश के विभिन्न भू-भागों में राजपूतों का शासन था। वर्चस्व को लेकर उनमें प्रायः लड़ाइयाँ होती रहती थीं। राज्याश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता तथा उदारता का पद्यमय बखान अतिशयोक्तिपूर्ण शैली में करते थे। खुमान रासो, परमाल रासो, पृथ्वीराज रासो आदि प्रबंधात्मक काव्य इसी प्रवृत्ति की प्रसूति है। उस समय के राजतंत्र में प्रजा थी, जनता नहीं। तत्कालीन साहित्यकारों ने प्रजा पर दृष्टिपात ही नहीं किया। संक्षेप में, उस समय के साहित्य में सामाजिक सरोकार के दर्शन नहीं होते।

राजवंशों के पतन के पश्चात देश में अनेक मुस्लिम वंशों का शासन रहा। यह हिंदी साहित्य का भक्तिकाल है। इनमें मुगल वंश के बादशाहों ने देश पर तब तक शासन किया जब तक ब्रिटिश हुक्मरानों ने उन्हें नष्टनाबूद नहीं कर दिया। तत्कालीन पीड़ित, निराश और शोषित समाज के लिए भक्त कवियों ने राम और कृष्ण को उनके अवलम्बन के रूप में प्रस्तुत किया। उनके समक्ष प्रजा को नैराश्य सागर से निकालकर आशा के द्वीप तक ले जाने का सामाजिक सरोकार था। इनमें गोस्वामी तुलसीदास (1532-1623 ई.) का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने साहित्य का जो उद्देश्य या सामाजिक सरोकार प्रस्तुत किया वह आज भी प्रासंगिक है। 'मानस' के बालकाण्ड में उन्होंने लिखा-

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

(कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।)

वीरगाथा काल के कवियों की तरह तुलसी 'नर के मनसबदार' नहीं थे। वे धरती के राजदरबारों के ऊपर भगवान राम के दरबारी थे। तुलसीदास के ही समकालीन कवि रहीम (1556-1626 ई.) थे। वे बादशाह अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक थे। उनका साहित्य धार्मिक उदारता तथा प्रजाहित से जुड़ा है। उनका निम्नलिखित दोहा उनके साम्प्रदायिक सद्भाव का बोधक ही नहीं बल्कि उनके प्रचार-प्रसार में भी साधक रहा-

धूरि धरत निज शीश पे कहु 'रहीम' केहि काज।

जेहि रज मुनि पतिनी तरी सोइ ढूँढ़त गजराज।।

जहाँगीर जब बड़ा हुआ तब उसने सल्तनत हासिल करने के लिए अपने भाइयों की हत्या कर दी। उसके दरबारी रहीम को इससे बड़ा कष्ट हुआ। दर्द से छटपटाकर उन्होंने लिखा-

'रहिमन' राज सराहिए ससि सम सुखद जो होय।
कहा वापुरो भानु है, ताजो तरैयन खोय।।

बादशाह जहाँगीर को जब इस दोहे के अर्थ का ज्ञान हुआ तब उसने 'रहीम' को हूकूमत के खिलाफ बगावत के अपराध में सारे ओहदों और खिताबों से वंचित कर दिया। रहीम चित्रकूट आ गए। बाद में बेगम नूरजहाँ की सिफारिश पर रहीम को कन्नौज की जागीर दे दी गई। यह अपमान और कष्ट रहीम ने इसलिए झेला कि उन्होंने प्रजाहित की पैरवी की थी। उनके अनुसार शासन को शशि के समान शीतलता प्रदान करने वाला होना चाहिए। उस समय के दो चार कवियों को छोड़कर शेष की साहित्य सर्जना का उद्देश्य समाज को जगाने और उठाने का नहीं था। उद्देश्य था मुगल शासकों के दरबार में हाजिरी लगाकर कुछ पाना। इसी प्रवृत्ति का वर्णन अकबरकालीन श्रीधर नाम कवि ने अपने छंद की इन दो पंक्तियों में किया है-

अबके सुलतान भये फुहियान से बाँधत पाग अटब्बर की।
नर की नरकी कविता जु करै तेहि काटिए जीभ सुलब्बर की।।

रीतिकाल के अधिसंख्य कवि राजदरबारी थे। उनका साहित्य नायिका भेद, नखशिख वर्णन, बारहमासा वर्णन आदि तक सीमित था। केवल बिहारी लाल और भूषण ऐसे कवि थे जिन्होंने परार्थ की भी चिंता की। आमेर के राजा जयसिंह जब अपनी नवविवाहिता के प्रेम में डूब गए और राजकाज शिथिल पड़ने लगा तब कविवर बिहारी लाल (1595-1963 ई.) ने निम्नलिखित दोहा राजा तक पहुँचाया-

नहि पराग, नहि मधुर, मधु नहि विकास, इहि काल।
अली कली ही सो बंध्यो आगे कौन हवाल।।

दोहा पढ़कर राजा की आँखें खुल गईं और वे पूर्ववत राजकाज चलाने लगे। बिहारी के उस दोहे ने राजा को प्रजाहित में कार्य करने के लिए प्रेरित किया। इसी काल के कवि भूषण के काव्य का मुख्य विषय देशप्रेम था। वस्तुतः वे हमारे प्रथम राष्ट्रकवि हैं। अत्याचारी औरंगजेब से लड़ने वाले शिवा जी की देशभक्ति और शौर्य उनकी कविताओं का प्रमुख बिन्दु है। इससे उस समय के त्रस्त समाज का मनोबल गिरने से जरूर रूका होगा।

भारत में अँग्रेजी राज ('दिनकर' ने इसे बनिया राज लिखा है) की स्थापना के साथ ही हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल शुरू हुआ। भारत देश से उपनिवेश हो गया। यहाँ का धन विदेश जाने लगा। फलतः भारत आर्थिक दृष्टि से खोखला होता गया। इस तथ्य को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) ने अपनी काव्यकृति 'भारत दुर्दशा' में निरूपित किया। मुंशी प्रेमचंद (1880-1936 ई.) ने अपने उपन्यास (गोदान) तथा सद्गति, सवा सेर गेहूँ, कफन और पूस की रात की कहानियों में पात्रों की दरिद्रता, ऋणग्रस्तता, विवशता आदि का चित्रण कर अपने साहित्य को सामाजिक सरोकार से जोड़ा। मैथिली शरण गुप्त (1883-1964 ई.) ने भारत-भारती में देश के गौरवशाली अतीत, पतनोन्मुख वर्तमान और अनागत के उज्ज्वल बनाने पर बल देकर अपने देश प्रेम का परिचय दिया।

अँग्रेजी राज में साहित्यकारों के समक्ष सबसे बड़ा सामाजिक सरोकार था भारत से अंगरेजों को भगाने के लिए अपनी कविताओं से देशवासियों को त्याग बलिदान के लिए प्रेरित करना। इनमें पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्यामलाल पार्षद और पं0 वंशीधर शुक्ल की कविताओं ने न जाने कितने युवकों को अपना वर्तमान बिगाड़कर देश के भविष्य को बनाने की प्रेरणा दी। क्रान्तिकारियों के बलिदान, गाँधी के नेतृत्व तथा देशभक्तों के

त्याग के फलस्वरूप देश को 14/15 अगस्त (अर्धरात्रि) को आजादी मिली। देश के विभाजन के फलस्वरूप भारत और नवनिर्मित पाकिस्तान से आबादी का इधर से उधर आने-जाने के दौरान हुए रक्तपात, परिजनों का विछोह और घर त्याग की पीड़ा को यशपाल ने अपने उपन्यास 'झूठा सच' और भीष्म साहनी ने 'तमस' में चित्रित किया। आजादी के बाद त्याग का स्थान भोग ने ले लिया। राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गिरावट आने लगी। देश की राजनीति में आई गिरावट और राजनेताओं के छल-प्रपंच कुछ उपन्यासकारों, व्यंग्यकारों और कवियों के साहित्य सृजन के सरोकार हो गए। विकास कुमार झा का उपन्यास 'सत्ता का प्रपंच' तथा राजकृष्ण मिश्र का 'दारूलशफा' राजनीति में आई सिद्धांत हीनता का जीवन्त वर्णन है। व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की पुस्तक 'विकलांग श्रद्धा का दौर', शरद जोशी की 'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे' और प्रेम जनमेजय की 'बेशर्म एवं जयते' ऐसी व्यंग्य कृतियाँ है जो समाज की विकृतियों, विद्रूपताओं और विसंगतियों को उजागर करती हैं। पिछले कुछ दशकों में लिखे गए कुछ उपन्यास ग्रामीण अंचल की व्यथा-कथा पर केंद्रित है। इनमें राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी', नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' प्रमुख हैं। इसी अवधि में दुष्यन्त त्यागी, सुदामा पांडे 'धूमिल', गोरख पांडे, पं0 वैद्यनाथ मिश्र उर्फ नागार्जुन तथा रामनाथ सिंह उर्फ अदम गोंडवी ने अपनी काव्य कृतियों का केंद्र बिन्दु आम आदमी को बनाया।

मेरी मान्यता है कि साहित्य के सामाजिक सरोकार का केंद्र बिन्दु मनुष्य है। कभी किसी संत ने कहा था "सबारे ऊपर मानुष सत्य, तहारे ऊपर नाहि।" साहित्य के क्षेत्र का भी यही आदर्श है। पिछले कुछ वर्षों में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, प्रेम, सेक्स, हिंसा पर बहुत लिखा गया। यह सब कुछ जातिगत और वर्गगत नेता बनने, स्त्रियों के झंडावरदार होने और सस्ती लोकप्रियता बटोरने के उद्देश्य से किया गया। इनसे कहीं अधिक जलते हुए प्रश्न रहें हैं-ग्रामों की उपेक्षा, तीन लाख किसानों द्वारा आत्महत्या, बूढ़ों की बेबसी, आय और सम्पत्ति की असमानता, शिक्षा का व्यवसायीकरण, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति पर हमला। कविता, कहानी तथा उपन्यास में उक्त प्रश्न शिद्दत के साथ उठाए ही नहीं गए। साहित्य की विविध विधाओं में गाँव गायब है। आर्थिक असमानता से जन्मी नक्सलवाद की समस्या पर कोई स्तरीय पुस्तक अनुपलब्ध है। झारखण्ड के आदिवासियों पर महुआ माझी का 'गोड़ा नीलकण्ठ हुआ' लगभग अकेला उपन्यास है।

वास्तविकता यह है कि अधिकांश साहित्य सृजन धनार्जन, पुरस्कार, पद और शोहरत पाने के लिए किया जा रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'निबंधों की दुनिया' में लिखा "जो साहित्य अपने-आपके लिए लिखा जाता है उसकी क्या कीमत है मैं नहीं कह सकता" फिर उन्होंने आगे लिखा 'दीर्घकाल में ज्ञान के आलोक से वंचित इन मनुष्यों को हमें ज्ञान देना है, शताब्दियों से गौरव से हीन इन मनुष्यों में हमें आत्मगौरव का संचार करना है। अकारण अपमानित इन मूक नर कंकालों को हमें वाणी देना है। रोग, शोक, अज्ञान, भूख, प्यास, परमुखापेक्षिता और मूकता से इनका उद्धार करना है। साहित्य का यही काम है।" क्या इससे हटकर साहित्य का कुछ और सामाजिक सरोकार हो सकता है?

पता- 610/368 जी केशवनगर,
सीतापुर रोड लखनऊ-226020
मो0- 9559419018

साहित्य में मौलिकता

➲ डॉ. बद्री प्रकाश पंचोली

'रामचरितमानस' की चतुर्थशती मनाई जा रही थी। सूचना केंद्र के सभा भवन में आयोजन था। मुख्य अतिथि के रूप में वेदमनीषी डॉ. फतह सिंह को जोधपुर से बुलाया था। आते ही मंच पर पहुँचकर उन्होंने बोलना आरंभ कर दिया। बोले-रामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड है, पर तुला दास ने 'अयोध्या' का प्रयोग तब किया जब श्रीराम का राजतिलक हो गया। श्रीराम के बिना साकेत, अवधपुरी-आदि नाम तो प्रयुक्त होते रहे; पर श्रीराम राजा बनकर सिंहासन पर बैठे तब अयोध्या अयोध्या बनी। वेद में कहा गया है-

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

देवपुरी अयोध्या भी तभी अयोध्या है जब उसमें आत्मा राम विराजे।

कालिदास के विषय में कहा गया है-शृंगारे ललितो, द्गारे कालिदासत्रयी किमु। वाराणसी के प्रो0 राम द्विवेदी ने कहा-कालिदास शृंगार और ललितोद्गार के कवि नहीं है। यदि वे श्रृंगार के कवि होते तो वे अपनी नायिकाओं के शृंगार का बार-बार वर्णन करते। कालिदास ने ऐसा कुछ नहीं किया। कालिदास ने अपनी प्रत्येक नायिका का वर्णन एक ही श्लोक में किया है।

उक्ति प्रचलित है-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्राऽपि चतुर्थोङ्कः तत्र श्लोक चतुष्टयः।।

अभिज्ञान शाकुन्तल के चार अंक कन्या की विदाई के है, लोक में कन्याएँ स्वयं गाती है-

उड़ जाऊंगी री माँ पंख लगाय थोड़ा दिनो की पाहुए और कोयल रानी सिद्ध चाल्या।

इन गीतों को सुनकर गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर रो पड़े थे। इन गीतों की करूणार्द्रता के कारण ऐसा संभव हुआ। कन्या की विदाई की दृष्टि भी करूणा प्लाहि करने वाली होती है।

उज्जयिनी में श्रीनिवास रथ ने कालिदास समारोह मनाया तब वे पश्चिम का भारत के साथ सम्पर्क होने की दूसरी शताब्दी मना रहे थे। अभिज्ञान शाकुन्तल के पाँचवे अंक में दौवारिक कहता है-

अविश्रामो हि अयं लोकतंत्राधिकारः।

अर्थात् लोकतंत्र में कर्त्तव्यपथ पर कहीं कोई विश्राम नहीं है। मैंने इस विचार सूत्र की व्याख्या की। उसकी 300 से अधिक विद्वानों ने प्रशंसा की।

प्रो0 रामद्विवेदी ने कहा-कुमारसंभव में कालिदास ने पार्वती के शृंगार का नखशिख वर्णन दो बार किया है। यह देवसेनापति स्कन्द की माता का शृंगार वर्णन है। देव सेना पति की माता का यह शृंगार वस्तुतः वीरमाता का शृंगार है। यह शृंगार नहीं वीररस का संकेतक है। प्रो0

द्विवेदी के अनुसार कालिदास शृंगार-ललितोद्गार के नहीं वीररस के कवि हैं।

यह एक मौलिक दृष्टि है।

जयशंकर प्रसाद का गीत है-

ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे

इसको प्रसाद की पलायनवादी (कर्मविरति) दृष्टि का परिचायक माना गया है। इसे परायणवादी भी कह सकते हैं।

ऋग्वेद में वरुण के सूक्त में आता है-परा हि में विमन्यवः पतन्ति वस्मइष्टये। अर्थात् मेरी विशेष कर्म और वास इष्टियाँ परा में विमन्यु बनकर जाती हैं।

मन्यु क्रोध का वह रूप है जो कर्म दृष्टि को कुण्ठित नहीं करता। वरन् कर्मप्रेरणा का विषय बनता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है-क्रोध बैर का मुरब्बा है। पर मन्यु नाम वाला क्रोध बैर पैदा नहीं करता। वह सामाजिक एकता का दिग्दर्शक बनता है।

महाभारत किसका जय काव्य है? नारायण की जय। नर की जय और नरोत्तम की जय।

वेद व्यास का कथन है-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परयीऽनम्।।

उन्होंने यह भी कहा-

श्रूयतां धर्म सर्वस्वँ श्रुत्वा चैवाव धार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

गुरू नानकदेव ने कहा-एक नूर ते सब जग उपजा। स्पष्ट है कि यह सृष्टि सुंदर रूप में प्रकट हुई है। वेद मानवता का संविधान है। उसकी उक्ति है-

पश्य देवस्य काव्यं न मयार न जीर्यति।

साहित्य में सामाजिक और व्यक्तिगत हित की बात समाहित होती है। साहित्य घिसी-पिटी बातों के लिए नहीं होता। उसमें मौलिकता होती है। वेद में ईश्वर को कवि कहा गया है-कविं पुराण अनुशासितारम्।

काव्यशास्त्रियों ने काव्य के हित प्रतिपादित किये हैं-काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे कान्तासम्मिततयो उपदेशभुजे सद्यः परनिर्वृतये। यहाँ स्कूलहित सिद्धि से लेकर परत्व की निवृत्ति की सूक्ष्मतम भावना भी आ गई है। इसको काव्य की मौलिकता कहा जाना चाहिए। साहित्य में साधारणीकरण होता है। कान्तासम्मित उपदेश की बात में हृदयतत्त्व की प्रधानता है। जैसी श्रद्धा वैसी निष्ठा वेदवाणी में मातृसम्मित उपदेश है। इसीलिए वेद को माता कहा जाता है-स्तुता मयावरदा वेद माता। यह वेद की मौलिकता है।

शास्त्र में आचार्य सम्मित उपदेश होते हैं वे अपनी शैली के कारण मौलिक हैं। शंकराचार्य का शारीरिक भाष्य है, रामानुजाचार्य का श्रीभाष्य है, वल्लभाचार्य का अणुभाष्य है-यही इनकी मौलिकता है। लिखी हुई इबारत को दुहराने में कोई मौलिकता नहीं होती।

महाकवि बाणभट्ट ने कादम्बरी को पूरा करने की योग्यता किसमें है- यह जानने की इच्छा से अपने बेटे से पूछा तो पढ़े-लिखे बेटे ने कहा-शुष्कं वृक्षं तिष्ठत्यग्रे। दूसरे साधारण रूप से शिक्षित पुत्र ने कहा-नीरस-तरूवरो विलसति पुरतः। स्पष्ट है कि मौलिकता दूसरे बेटे के कथन में समाहित है।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुदैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।

यह क्षण-क्षण की नवीनता की अनुभूति ही साहित्य की मौलिकता है।

पता- बी-6 दातानगर, रेम्बल रोड़
अजमेर-305001 (राजस्थान)
मो0- 9415364218

'रंग' के रंग

➲ त्रिवेणी प्रसाद दुबे 'मनीष'

'रंग' शब्द हिंदी भाषा का एक ऐसा अनूठा शब्द है, जो अपने अनेकार्थी अस्तित्व के साथ बहु-आयामी भी है। इसका प्रयोग आम बोल-चाल की भाषा में आम सरल भौतिक संदर्भ में भी होता है और विशेषज्ञों की सभा में महत्त्वपूर्ण मसलों को रेखांकित करने के लिए भी होता है। अनेक प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों में भी इसका सुंदर संतुलित समावेश है।

'रंग' शब्द संस्कृत मूल का शब्द है। हिंदी मानक शब्दकोशों के अद्यतन संस्करण में 'रंग' शब्द के बीस अर्थ समाविष्ट हो चुके हैं। अधिकांश कोशों में रंग का प्रथम अर्थ 'राँगा नामक धातु' अंकित है। इस अर्थ में यह सीसे के रंग वाले मुलायम धातु का बोध कराता है। इसका एक अर्थ 'नाचना-गाना' भी है। इस अर्थ में यह अनेक सांस्कृतिक संदर्भों में प्रयुक्त होता है। सांस्कृतिक संदर्भों में 'नृत्य या अभिनय के स्थान' को भी 'रंग' नाम से संबोधित किया जाता है। इस संबोधन में नाट्यशालायों एवं अभिनय के विशिष्ट स्थलों का भाव सम्मिलित है। 'रंगभूमि' के रूप में वह खेल, तमाशे या उत्सव के स्थान का आभास देता है। एक अर्थ में 'रंग' रणक्षेत्र को भी आच्छादित करता है।

'रंग' का सबसे अधिक प्रचलित और प्रयुक्त अर्थ है 'पदार्थ का (उसके आकार से भिन्न) वह गुण जिसका ज्ञान केवल आँखों के द्वारा होता है, वर्ण जैसे हरा, लाल, काला इत्यादि।' अँग्रेजी में इसका अनुदित शब्द 'कलर' है। इस अर्थ में इस शब्द का बहुत व्यापक वैश्विक उपयोग होता है जो इंद्रधनुष के सात रंगों से लेकर अनगिनत लोगों, विभिन्न जीवों और सभी पदार्थों के वर्ण को परिभाषित और परिचालित करता है। इससे तनिक भिन्न प्रवाह में इसका एक अर्थ 'वह पदार्थ जिससे कोई चीज रँगी जाती है' और 'बदन और चेहरे की रंगत, वर्ण' है। इस अर्थ में इससे संबंधित चार विशेष मुहावरे बौद्धिक एवं सांस्कृतिक मानव समूहों में प्रतिष्ठित हैं। एक है 'चेहरे का रंग उड़ना या उतरना' जो 'लज्जा से चेहरे का तेज कम होने' की स्थिति को दर्शाता है। दूसरा है 'रंग चढ़ना' जिसका अर्थ 'प्रभावित होना' है। तृतीय मुहावरा है 'रंग निखरना' जो चेहरा साफ और चमकदार होना' बताता है। चौथा मुहावरा है 'रंग बदलना' जो 'क्रुद्ध होना या रूप या वेश बदलना' का बोध कराता है।

रंग का एक विशेष अर्थ 'युवावस्था, जवानी' भी है। इस अर्थ से 'रंग चूने' और 'रंग टपकने' जैसे मुहावरे लोकप्रिय हैं जो क्रमशः 'जवानी में होने' और 'यौवन उमड़ने' का बोध कराते हैं। रंग का एक अर्थ 'शोभा और सौंदर्य' भी है और एक अर्थ 'आतंक, घात' भी है। भीषण घात करने अथवा धाक जमाने के लिए 'रंग जमाने' का मुहावरा समूहों, समारोहों और मित्र-मण्डलियों में प्रायः

प्रयोग होता रहता है। 'रंग डालना' या 'रंग बाँधना' प्रभाव डालने के भाव में और 'रंग लाना' 'प्रभाव या गुण दिखलाने' के भाव में प्रयोग किया जाता है।

'रंग' का एक अतिविशिष्ट अर्थ 'प्रभुत्व, समृद्धि, मान आदि बढ़ा-चढ़ा होने की अवस्था या भाव' है। इसी भाव से अभिभूत लोग अपने मित्रों और सहयोगियों से यह कहते सुनाई देते हैं कि 'आज-कल हर जगह आपका रंग है।' इससे भिन्न इस शब्द का एक अर्थ 'क्रीड़ा, आनंद, उत्सव' भी है। इस भावार्थ को दो प्रभावशाली मुहावरों में सम्मानजनक स्थान मिला है। उनमें से एक है 'रंग रचाना' जो 'उत्सव करने' का संदेश देता है और दूसरा है 'रंग में भंग पड़ना' जो 'आनंद में बाधा डालने' का परिचायक है। 'युद्ध-लड़ाई' का भाव समेटे इसका एक अर्थ 'रंग मचाने' की शब्दावली में 'खूब युद्ध करने' का आभास देता है।

रंग का एक अर्थ 'उमंग, मौज' और एक अर्थ 'आनंद, मजा' भी है। इन भावों को धारण किये यह 'रंग जमना' के माध्यम से 'खूब आनंद आने' का सूचक है। किंतु इसका एक अर्थ 'दशा, हालत' भी है जो 'धीरे-धीरे रंग बदल रहा है' और 'उसका रंग बदल गया' में उभरता है। इससे भिन्न इसका अर्थ 'अनुराग, प्रेम', 'ढंग, चाल' और 'भाँति, प्रकार' भी है। किसी के 'रंग में बींधना' किसी पर पूरी तरह से अनुरक्त होने के भाव में प्रयोग किया जाता है। इसी तरह 'रंग काछना', 'नया ढंग अपनाने' के संदर्भ में प्रयुक्त होता है।

'रंग' अपने अंतिम बीसवें अर्थ में 'चौपड़ की गोटियों के दो वर्णों में से कोई एक' का बोध कराता है। इसी भाव में मुहावरा 'रंग मारना' 'बाजी मारने' का संचार करता है।

रंग शब्द के विभिन्न अर्थों एवं भावों से कतिपय विशेष हिंदी शब्दों का जनन हुआ है। रंगमंच से जुड़ा व्यक्ति 'रंगकर्मी' नाम से संबोधित होता है। रंग-ढंग, 'चाल-ढाल अथवा लक्षण' का द्योतक है। नाटकों के लेखन, मंचन अथवा प्रस्तुति-संबंधी चेतना को 'रंग-चेतना' कहा जाता है। 'रंगत' शब्द 'रंग, वर्ण', 'दशा, अवस्था' और 'अर्थछटा' के लिए प्रयोग किया जाता है। 'रंगस्थल' रंगभूमि का पर्यायवाची है। किंतु 'दार' के साथ मिलकर 'रंगदार' के रूप में यह ऐसे गुंडे का रूप धारण करता है जो जबरदस्ती धन वसूलता हो। इसी संदर्भ में गुंडों को दिया जाने वाला धन 'रंगदारी' कहलाता है। इस प्रवाह में 'रंगना' का उल्लेख आवश्यक है।

इसका एक अर्थ है 'किसी चीज को घुले हुए रंग में डाल या डुबाकर रँगीन करना या उस पर रंग चढ़ाना'। इसका दूसरा अर्थ है किसी को अपने प्रेम में फंसाना और तीसरा अर्थ 'अपने अनुकूल करना अथवा किसी पर आसक्त होना' है।

'रंगबाती' शरीर पर लगाने के लिए सुगंधित वस्तुओं की बत्ती है जबकि रंग-बिरंगा 'अनेक रंगों का चित्रित' या 'अनेक प्रकार का, तरह-तरह का' का सूचक है।

'रंगभूमि', 'खेल, तमाशे या उत्सव का स्थान' या नाट्यशाला या 'रणक्षेत्र' का नाम है किंतु रंगमहल 'भोग विलास करने के स्थान का बोध कराता है। इसी संदर्भ में रंगरली, 'आमोद-प्रमोद' अथवा 'आनंद की प्राप्ति के लिए की जाने वाली क्रिया' को कहते हैं। 'भोगविलास का प्रेमी अथवा विलासी' रंग-रसिया माना और पुकारा जाता है। किंतु 'रंगराज' शब्द सदैव विशेष ध्यान का आकांक्षी है क्योंकि उसका मानक अर्थ 'श्रीकृष्ण' है। इस रूप में यह भगवान श्रीकृष्ण की सभी कलाओं का लौकिक बोध कराता है। 'रंगराता' शब्द 'भोगविलास में लगा हुआ, ऐश-आराम में मस्त अथवा प्रेमयुक्त, अनुरागपूर्ण मानव' को दर्शाता है।

'रंगरूट', 'रंगरेज' और 'रंगसाज' भी काफी चर्चित रहते हैं। रंगरूट 'सेना या पुलिस आदि में भर्ती होने

वाले सिपाही' अथवा 'किसी काम में पहले-पहल आकर लगे हुए व्यक्ति, को नौसिखुआ' कहते हैं। कपड़ा का व्यवसाय करने वाला 'रंगरेज' कहलाता है। रंग बनाने वाले और चीजों पर रंग चढ़ाने वाले 'रंगसाज' पुकारे जाते हैं। रंगने की क्रिया, भाव या मजदूरी, 'रंगाई' कहलाती है जबकि 'रंगामेजी' का अर्थ 'रंगों का मिश्रण' या 'लीपापोती' है। 'रंगारंग' अनेक रंगों का या तरह-तरह का, विविधतापूर्ण' का नाम है जबकि 'रँगावट' का अर्थ रंगने की क्रिया का भाव है। छद्मावेशी मानव के लिए 'रँगा सियार' संबोधन का प्रयोग होता है जबकि 'रँगा हुआ' रँगदार या विलासप्रिय या चमत्कारपूर्ण, मजेदार मानव अथवा परिवेश को कहते हैं। मौज-मस्ती करने वाला मानव रँगीन-मिजाज कहलाता है जबकि 'रँगीला' 'रंगीन या रसिक या सुंदर' का स्वरूप है। 'रंगोली' के दो अर्थ हैं जो अपने आप में अनोखे हैं। इसका एक अर्थ है 'रंग-बिरंगे चूर्णों से बनाए हुए बेल-बूटे या चित्र' और दूसरा अर्थ है 'अभिनेत्रियों-अभिनेताओं की अनूठी छवियाँ या चटपटी बातें।

इस प्रकार बीस भिन्न अर्थों वाला अनेकार्थी शब्द 'रंग' और उसके कतिपय शब्दों से युग्मित स्वरूप वास्तव में बहु-आयामी है। उनमें सावन की हरियाली के दर्शन के साथ, बासंती उन्माद भी है, रंग-पर्व के सभी रंगों का घोल भी है और दीपावली की सम्मोहक 'रंगोली' भी है। एक ओर उनमें भौतिक उमंगों के बहुरंगी वर्ण हैं तो दूसरी ओर उसमें रंगहीन परमब्रह्म का दर्शन कराता रंगहीन अध्यात्म भी है। रंगों के इस अद्भुत खेल में ही लोगों पर रंग चढ़ता, उतरता, सँवरता, निखरता, उड़ता, बिखरता, बनता है और नष्ट होता है। उसका भौतिक स्वरूप एक शारीरिक आभास है पर उसका आध्यात्मिक आयाम, एक ऐसा उत्तम स्वरूप है जो रंगहीन परमेश्वर का बोध कराते हुए मुक्ति का मार्ग सुझाता है।

जीवन और मृत्यु के मध्य डोलते सभी उत्सवों और पर्वों के रंगारंग आयोजनों में रंगों और रागों के अलौकिक संगम, सदा रँगराज का ध्यान दिलाता रहता हैं।

पता :- 3/98 विपुल खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ- 226010
मो0- 9452242469

जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग-से
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कम्पन-सा निद्रित
सरोवर में।
- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

स्वस्थ पर्यावरण, सुरक्षित जीवन

➲ दिनेश कुमार तिवारी

पर्यावरण का सामान्य अर्थ भौतिक परिवेश से है जो पृथ्वी के जीव जगत को आवृत्त किये हुए है तथा जिसके प्रभाव से जीवन स्पन्दित होता है। जो तथ्य मानव के जीवन और विकास को प्रभावित करते है, उन सम्पूर्ण तथ्यों का योग पर्यावरण कहलाता है। वैसे तो पर्यावरण का सीधा-सा शाब्दिक अर्थ बाह्य आवरण होता है क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर-अर्थात मिट्टी, पानी, अग्नि, आकाश, हवा और इसी हवा में मिश्रित तमाम गैसों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं और अभिक्रियाओं के फलस्वरूप मानव शरीर की रचना हुई है। शाब्दिक अर्थों पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि क्षिति का अर्थ धरती या भूमि से है। इसी धरती के भीतर खनिजों, रसायनों और विविध गैसों का भण्डार है। इसी के ऊपर अनेक जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ हैं। जल से तात्पर्य नदी, तालाब, झील, झरनें, सागरों तथा महासागरों से है। पावक यानि अग्नि शक्ति यानि ऊर्जा से है जो ब्रह्माण्ड की समस्त गतिविधियों को संचालित करती है। पृथ्वी से 100 कि0मी0 ऊपर पायी जाने वाली ओजोन परत से सटी विभिन्न गैसों की उपलब्धता ही वायु या समीर है, इन्हीं गैसों में ऑक्सीजन भी उपस्थित है। अंग्रेजी का कास्मास ही आकाश या गगन है।

पर्यावरण को समूचे जैव समुदाय का नियामक कहा गया है अपने प्राकृतिक पर्यावरण के कारण ही धरती को जीवित जगत का गौरव प्राप्त है। अब तक की गयी वैज्ञानिक खोजों और सौर मण्डल के ग्रहों के बारे में की गयी खोजबीन से यही पता चलता है कि जीवन केवल इसी धरती पर ही है। वस्तुतः किसी भी जीवधारी के लिए जीने की अनुमति उसका पर्यावरण ही देता है स्वस्थ एवं सुंदर पर्यावरण के बिना स्वस्थ एवं सुंदर जीवन असम्भव है। सृष्टि की छोटी से छोटी इकाई से लेकर बड़ी से बड़ी इकाई तक सभी पर्यावरण के अंग है। कहने का तात्पर्य यह है कि सृष्टि में सजीव हो या निर्जीव सभी का कहीं-न-कहीं एक-दूसरे से बहुत गहरा संबंध है।

जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगीकरण के कारण रोज की जिंदगी में सुविधाओं और प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का उपयोग करते समय हम यह भूल जाते हैं कि हमारे क्रिया-कलापों से क्या क्षति हो रही है, यथा खनिज निकालते समय अथवा वनों को अंधाधुंध काटते समय मनुष्य यह नहीं समझता है कि वह प्रकृति का दोहन कर रहा है। हम विकसित मनुष्य अपने ही बारे में भूल चुके हित है, पर हमारा पर्यावरण ही है जो पृथ्वी पर जीवन के विकास, संवर्धन और रक्षा के लिए ऐसी दशा निर्मित करता

है जिसके बिना जीवन की परिकल्पना भी असंभव है।

जिस समय संसार में कम प्राणी थे प्राकृतिक परितंत्र कम ही नष्ट होते थे परंतु जनसंख्या बढ़ने के साथ, रहने के लिए व सड़क आदि बनाने के लिए स्थान की आवश्यकता, मकान बनाने के लिए सामग्री व ईंधन की आवश्यकता और खेती के लिए भूमि की आवश्यकता बढ़ती गयी जिसके कारण अंधाधुंध जंगलों व पेड़ों की कटाई की गयी बदले में शहरीकरण व औद्योगीकरण के चलते कंक्रीट के जंगल उगने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे उसका स्वरूप बदल दिया गया और धीरे-धीरे संतुलित परितंत्र समाप्त होने लगे क्योंकि ऊर्जा और दूसरे पदार्थों का संतुलन मनुष्यों व जन्तुओं द्वारा नष्ट कर दिया गया। मिट्टी के ऊपर की उपजाऊ सतह हवा व वर्षा के जल द्वारा अपरदन से नष्ट होकर वनस्पति विहीन हो गयी। प्राकृतिक वनस्पति के विनाश के कारण अपरदन बाढ़ रेत का इकट्ठा होना अधिक तेजी से होता है। स्वच्छ जल के तालाबों व नदियों का परितंत्र बाढ़ अपशिष्ट पदार्थ व औद्योगिक फैक्ट्रियों से निकलने वाले कचड़ों, मलमूत्र व बेकार बचे हुए पदार्थ से बदल जाता है जैसे यमुना नदी में ओखला के पास गाजियाबाद के कारखानों से बेकार पदार्थों की निकासी, आगरा व कानपुर में चमड़ा उद्योग का प्रदूषित जल से जैविक समुदाय का सम्पूर्ण नाश हो रहा है। विद्युतगृह, कारखानों व नगर निवासियों के घरों से कचरों व मलमूत्र का निकास नदी नालों द्वारा होता है।

धरती की सतह से लगभग दस हजार कि0मी0 तक का वह आकाशीय भाग जिसमें विभिन्न प्रकार की गैसें विद्यमान होती है वायुमण्डल कहलाता है। जिसके पाँच भाग हैं-

(1) **अधोमण्डल** - मौसम आदि का बनना, आँधी, तूफान, बादल गर्जन तथा तड़ित की क्रियाएँ इसी मण्डल में घटित होती है। इस भाग में ऊँचाई के साथ-साथ तापमान कम होता जाता है।

(2) **समताप मण्डल** - इस मण्डल की शीर्ष सतह ओजोन की होती है जो सूर्य से आने वाली किरणों में से पराबैगनी किरणों को रोक लेती है और इस भाग में ऊँचाई के साथ-साथ तापमान बढ़ता जाता है।

(3) **मध्य मण्डल** - इस मण्डल में सूर्य की किरणों से उत्पन्न ऊर्जा और ओजोन की पर्त का संघर्ष होता है।

(4) **आयन मण्डल** - यह मण्डल अंतरिक्षीय विकिरण से जीव मण्डल की रक्षा करता है तथा रेडियो तरंगों के अवशोषण और परावर्तन को प्रभावित करता है।

(5) **बाह्य मण्डल** - इस मण्डल में हाइड्रोजन गैस की प्रधानता होती है।

वातावरण को नष्ट करने में औद्योगीकरण, नगरीकरण, परिवहन से निकलने वाला धुँआ भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो कि प्रदूषण फैला रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि "पर्यावरण प्रदूषण विज्ञान की देन है महा-उद्योगों की समृद्धि का बोनस है, मानव को मृत्यु के मुख में धकेलने की अनचाही चेष्टा है, यह मनुष्य की प्रगति का नहीं वरन प्रतिगति का प्रतीक है।"

औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप आज उद्योगों तथा घरों दोनों में जीवाश्म ईंधनों, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ आदि का उपयोग काफी बढ़ गया है इस समय हम प्रति वर्ष लगभग 5 अरब टन जीवाश्म ईंधन जलाते हैं, इसमें प्रति वर्ष 4% की वृद्धि हो रही है। इस प्रकार देखा जाय तो पिछले कुछ वर्षों में उष्मारोधी गैसों की मात्रा वायुमण्डल में बढ़ जाने के कारण वायुमण्डल का ताप बढ़ गया है। भू-मण्डल को गरमाने से रोकना अब यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। अंधाधुंध औद्योगिक और

हरे-भरे वनों को कटाने से कुछ वर्षों में मुम्बई और अमेरिका का फ्लोरिडा शहर तथा आस्ट्रेलिया डूब जायेगा। CO2 जैसी कुछ गैसों की वायुमण्डल में विशेष वृद्धि के कारण यह नया खतरा पैदा हुआ है। ये गैस सूर्य से पृथ्वी पर आने वाली गर्मी को उस अनुपात में वापस ब्रह्माण्ड नहीं जाने देती जिससे वायुमण्डल का ताप संतुलन बना रहे।

सूर्य के प्रकाश में पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा जल ग्रहण कर ऑक्सीजन देते हैं। यह पौधे जितनी मात्रा में CO2 ग्रहण करते हैं उतनी ही मात्रा में ऑक्सीजन बाहर निकालते हैं। यह ऑक्सीजन जल के अणु से आती है। सूर्य से आने वाली पराबैगनी किरणें ऑक्सीजन के अणु से संयोग कर ओजोन गैस बनाती है। यही ओजोन आज हमारी रक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सूर्य तथा अन्य स्रोतों से पृथ्वी की ओर आने वाले प्रकाश के साथ-साथ पराबैगनी किरणें भी आती हैं जो बहुत ही हानिकारक होती हैं, जो हमारे शरीर पर पड़ने से उसमें कई विकार उत्पन्न कर देती है, किंतु वायुमण्डल में वर्तमान ओजोन मण्डल इन पराबैगनी किरणों को ऊपर ही रोक लेता है।

ओजोन मण्डल के ओजोन गैस में 1% की कमी होने पर पृथ्वी पर आने वाली पराबैगनी किरणों में 2% की वृद्धि हो जायेगी जिसके कारण कैंसर रोगियों की संख्या में 10,000 की वृद्धि हो जायेगी। प्राणी अंधे हो जायेंगे। पेड़-पौधों पर प्रकाश संश्लेषण का विपरीत प्रभाव पड़ने के कारण वे नष्ट हो जायेंगे। जलवायु में भी अनेक परिवर्तन होंगे। इन सब कारणों से समस्त सृष्टि का विनाश हो जायेगा। औद्योगिकीकरण का वनों के विनाश पर अप्रत्यक्ष प्रभाव, कारखानों से होने वाले SO2 की मात्रा बढ़ जाने से अम्लीय वर्षा होने लगती है। यूरोप तथा यू.एस.ए. में 3.1 करोड़ हेक्टेयर वन क्षेत्र अम्लीय वर्षा के शिकार हुए है। इस कारण वन रूग्ण हो गये हैं, बिना कटाव के भी ये वन वस्तुतः विनष्ट हो गये हैं। कीटनाशकों के कारण तो भूमिगत जल मछलियाँ जानवर तक प्रभावित होते है जो अंततः कृषकों, कृषि मजदूरों व मनुष्यों के जीवन को भी प्रभावित करता है।

अमेरिका की यूनियन कार्बाइड कंपनी ने भोपाल में कृषि की कीटनाशक दवाइयाँ बनाने का कारखाना स्थापित किया था, 2 और 3 दिसम्बर, 1984 की रात लगभग 45 टन खतरनाक गैस मिथाइल आइसोसाइनेट के रिसाव से रात को सो रहे हजारों लोग हमेशा के लिए मौत की नींद सो गये, इतना ही नहीं त्रासदी का असर लोगों की अगली पीढ़ियों तक ने भुगता और आज भी भुगत रहे हैं। मगर सबसे दुखद बात यह है कि हादसे के जिम्मेदार आरोपी को कभी सजा नहीं हुई। इसे देश की सबसे भीषण औद्योगिक दुर्घटना माना जाता है, मरने वालों की संख्या 16,000 से भी अधिक थी किंतु अधिकारिक पुष्टि 3,000 ही माना जाता है। 5 लाख जीवित बचे लोगों को जहरीली गैसे के संपर्क में आने के कारण साँस की समस्या, आँखों में जलन या अंधापन, चर्मरोग और अन्य विकृतियों का सामना करना पड़ा।

इस समय हम रासायनिक पदार्थों के एक वर्ग का उपयोग बहुत अधिक कर रहे हैं जिसे क्लोरो फ्लोरो कार्बन कहते हैं, ये पदार्थ वायुमण्डल में ऊपर जाते हैं तथा वायुमण्डल के ऊपरी भाग में उपस्थित ओजोन की परत को क्षति पहुँचाते हैं। औद्योगिक नगरों में कभी-कभी साँस लेने हेतु शुद्ध वायु की इतनी कमी हो जाती है कि खतरे की घण्टी बजाकर लोगों को घर से बाहर न निकलने की चेतावनी दी जाती है।

निःसंदेह आज हम पारिस्थितिकीय संकट का सामना कर रहे हैं। मनुष्य ने पर्यावरण को इतना अधिक

परिवर्तित कर दिया है कि इससे मानवता तथा अन्य जीवों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया है। प्राकृतिक संतुलन के पुनः स्थापना के प्रयास में हम तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि जनसंख्या वृद्धि पर रोक नहीं लगायी जाती। भारत भी उसी राह पर चल रहा है जिस राह पर पश्चिमी देश चल रहे हैं। संसाधन संरक्षण से अनगिनत भारतवासी अपने संसाधनों का अंधाधुंध निर्यात और प्रयोग कर भविष्य के प्रति बेखबर हैं। अतः जन वृद्धि के नियंत्रण के साथ संसाधन संरक्षण आज की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

पर्यावरण के भली-भाँति तेजी से बदलते दौर में हमें जान लेना चाहिए कि इनके लुप्त होने का सीधा असर मानव सभ्यता पर पड़ना सम्भव है। विश्वभर में आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण के चलते प्रकृति के साथ बड़े पैमाने पर जो खिलवाड़ हो रहा है उसके मद्देनज़र आमजन को जागरूक करने के लिहाज से ठोस कदम उठाने की दरकार है हमें यह स्वीकार करने से गुरेज नहीं करना चाहिए कि इस तरह की समस्याओं के लिए कहीं-न-कहीं जिम्मेदार हम स्वयं हैं।

कोरोना काल में लॉकडाउन के दौर ने पूरी दुनियाँ को यह समझानें का बेहतरीन अवसर दिया था कि इंसानी गतिविधियों के कारण ही प्रकृति का जिस बड़े पैमाने पर दोहन किया जाता रहा है उसी की वजह से कराहती रही है लेकिन उन चेतावनियों को दरकिनार किया जाता रहा है। वर्ष दर वर्ष जिस प्रकार मौसम बिगड़ते मिजाज के चलते समय-समय पर तबाही देखने को मिल रही है, उससे हमें समझ लेना चाहिए कि प्रकृति संतुलन पर जो विपरीत प्रभाव पड़ रहा है उसकी अनदेखी के कितने भयावह परिणाम होंगे।

प्रकृति का संतुलन बनाये रखने के लिए जल, जंगल, वन्य जीव और वनस्पति इन सभी का संरक्षण आवश्यक है। दुनिया भर में पानी की कमी के गहराते संकट की बात हो या ग्लोबल वार्मिंग के चलते धरती के तपने की, जीव-जन्तुओं के अनेक प्रजातियों के लुप्त होने की, इस तरह की समस्याओं के लिए केवल सरकारों का मुँह तकते रहने से हमें कुछ हासिल नहीं होगा प्रकृति संरक्षण के लिए हम सभी को अपने-अपने स्तर पर अपना योगदान देना होगा।

सड़कों पर रेंगती वाहनों की लम्बी-लम्बी कतारों से वायुमण्डल में जलते जहर की या सख्त अदालती निर्देशों के बावजूद खेतों में जलती पराली से हवा में घुलते हजारों लाखों टन धुएँ की, हमारी आँखें तब तक नहीं खुलती जब तक प्रकृति का बड़ा कहर हम पर नहीं टूट पड़ता। अधिकांश राज्यों में सीवेज ट्रीटमेंट और कचरा प्रबन्धन की कोई पुख्ता व्यवस्था नहीं है। पेड़-पौधे कार्बन-डाई-आक्साइड को अवशोषित कर पर्यावरण संतुलन बनाने में अहम् भूमिका निभाते रहे हैं लेकिन पिछले कुछ दशकों में वन क्षेत्रों को बड़े पैमाने पर कंक्रीट के जंगलों में तब्दील कर दिया गया है। सरकार और अदालतों द्वारा पर्यावरण के लिए गम्भीर खतरा वाली पॉलीथीन पर समय-समय पर पाबंदी लगाने के लिए कदम उठाये गये लेकिन हम पॉलीथीन इस्तेमाल करने के इस हद तक आदी हो गये हैं कि हमें आस-पास के बाजारों से सामान लेने के लिए भी घर से कपड़े या जूट का थैला साथ लेकर जाने के बजाय पॉलीथीन में सामान लाना ज्यादा सुविधाजनक लगता है। अपनी सुविधा के चलते हम बड़ी सहजता से पॉलीथीन से होने वाले पर्यावरणीय नुकसान को नजरंदाज कर देते हैं।

पता- कम्पोजिट विद्यालय रामदत्तपुर
अटरावाँ पूरा अयोध्या
मो0- 9454970755

वीर सिंह का साहित्य चिंतन

➲ डॉ. नव संगीत सिंह

डॉ. भाई वीर सिंह बीसवीं सदी के एक प्रसिद्ध पंजाबी लेखक और युगपुरूष हो चुके हैं, जिनको भारत के दार्शनिक डॉ. एस. राधाकृष्णन ने 'भारत की सनातनी विद्वता का प्रतिनिधि' कहा है। डॉ. मुल्कराज आनंद ने भाई साहब को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में नामित किया है जो रचनात्मक गति को जीवन और दुनिया के संतुलन का आधार समझते थे। श्री हरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय ने भाई साहब को 'पाँच दरियाओं की भूमि के छठे दरिया' की उपाधि दी है। डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने लिखा है कि वे सिक्ख नव-चेतना के ऐसे स्तम्भ थे, जिन्होंने अपने जीवन, कविता, गल्प और गद्य के माध्यम से बहुतों के जीवन को प्रेरित किया और पंजाबी साहित्य में अभिव्यक्ति के नए मानक स्थापित किए।

भाई वीर सिंह का जन्म 5 दिसम्बर, 1872 ई. को अमृतसर में डॉ. चरण सिंह के घर माता उत्तम कौर की कोख से हुआ था। उनका वंश दीवान कौड़ा मल से संबंधित है, जो अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लाहौर के दीवान और मुल्तान के शासक थे। उनके दादा काहन सिंह (1788-1878) संस्कृत के विद्वान थे और उन्होंने ब्रजभाषा में काव्य रचना की। भाई साहब के पिता डॉ. चरण सिंह (1853-1908) संस्कृत और ब्रजभाषा के विद्वान थे। भाई साहब के नाना ज्ञानी हजारा सिंह (1828-1908) गुरूवाणी के प्रसिद्ध टीकाकार थे।

स्पष्ट है कि भाई वीर सिंह के पैत्रिक-धन में दीवान कौड़ा मल का राजसी महत्त्व, बाबा काहन सिंह का साधुत्व, डॉ. चरण सिंह का बौद्धिकतावाद और ज्ञानी हजारा सिंह का पारमार्थिक ज्ञान शामिल था। प्रिंसिपल संत सिंह सेखों के अनुसार, "ऐसे पैत्रिक-धन वाला व्यक्ति 19वीं शताब्दी के भारतीय जागृति आध्यात्मिक वातावरण में एक महान कार्य के लिए पैदा हुआ और यह महान कार्य निश्चित रूप से भाई वीर सिंह के हिस्से में चिन्हित किया गया था।"

भाई साहब ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा ज्ञानी हजारा सिंह और उनके साथियों से प्राप्त की। आठ वर्ष की आयु तक उन्होंने गुरू ग्रंथ साहिब का पाठ भी कर लिया था। 1891 में उन्होंने अमृतसर के मिशन स्कूल से प्रवेश (10वीं) परीक्षा उत्तीर्ण की और जिले में टॉप करने के लिए उन्होंने जिला बोर्ड द्वारा स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। इस परीक्षा को उत्तीर्ण करने के दो वर्ष पूर्व (1889 में) उनका विवाह बीबी चतुर कौर से हुआ था, जिनके गर्भ से करतार कौर और सुशील कौर नामक दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। मैट्रिक के बाद उन्होंने सरकारी नौकरी के बारे में नहीं सोचा, क्योंकि अपने पिता के प्रभाव और उनके सफल जीवन से उनके मन में समाज की खुली सेवा की धुन बज

रही थी। साहित्य में उनकी रुचि बहुत अधिक थी और उन्होंने उसी के अनुसार अपने व्यवहार को चुना। अपने पिता के एक सहयोगी वजीर सिंह के साथ उन्होंने 'वजीर हिंद प्रेस' नामक एक प्रिंटिंग हाउस शुरू किया। फिर खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी की नींव रखी। 1899 में उन्होंने साप्ताहिक 'खालसा समाचार' प्रकाशित किया, जिसके माध्यम से उन्होंने पंथक समाचार को प्रकाशित करने के साथ-साथ सिख सिद्धांतों, गुरुवाणी और गुरुमति की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करने का काम शुरू किया।

भाई साहब ने साहित्य के क्षेत्र में बहु-आयामी भूमिका निभाई। कविता के अलावा उन्होंने उपन्यासों, नाटकों, गद्य, संपादन और सटीक के क्षेत्र में काफी गंभीर कार्य देकर नई नींव डाली। उनके प्रमुख कार्यों का विवरण इस प्रकार है-

कविता : निनाण भरजाई दी शिक्षादायक वार्तालाप, राणा सूरत सिंह, लहरां दे हार, मटक हुलारे, बिजलियाँ दे हार, प्रीत वीणा, कंबदी कलाई, कंत महेली दा बारामहा, मेरे साइयां जीओ।

उपन्यास : सुंदरी, बिजय सिंह, सतवंत कौर, बाबा नौध सिंह।

नाटक : राजा लखदाता सिंह।

गद्य : गुरू नानक चमत्कार, श्री गुरू कलगीधर चमत्कार, अष्ट गुरू चमत्कार, गुरबालम साखियाँ (पातशाही पहली), बुरबालम साखियाँ (पातशाही दसवीं), सर्वप्रिय सिख धर्म, भर्तृहरि हरि-जीवन ते नीति, देवी पूजन पड़ताल, संत गाथा भाग, भाई गुरदास सकंध।

संपादित और अन्य कार्य : गुरप्रताप सूरज ग्रंथ, सिखां दी भगतमाला, प्राचीन पंथ प्रकाश, पुरातन जन्मसाखी, पंज ग्रंथी स्टीक, गुरू ग्रंथ साहिब के पहले 600 पृष्ठों की टीका।

उनकी रचनाओं के हिंदी और अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुए। उनकी बहुत-सी रचनाएँ उनकी मृत्यु के पश्चात विभिन्न लेखकों द्वारा संपादित की गईं।

उनके जीवन, कार्य और व्यक्तित्व पर बहुत-से लेख, शोध पत्र, पुस्तकें और शोध प्रबंध प्रकाशित हो चुके हैं मेरा मानना है कि वे एक ऐसे आधुनिक साहित्यकार हैं, जिनकी रचनाओं पर निरन्तर शोध होता रहता है। कई पाठकों को यह बात भी दिलचस्प लगेगी कि श्री हरमंदिर साहिब अमृतसर में श्री गुरू ग्रंथ साहित के सामने जो सुदर फूल सजाए जाते हैं, वे आज भी भाई वीर सिंह के घर की फुलवारी से आते हैं।

अपने समय के अनेक विद्वानों से उनके साहित्यिक संबंध रहे। आधुनिक काल के प्रारंभिक पंजाबी कवियों मौला बख्श कुश्ता, चरण सिंह शहीद, प्रो. पूरन सिंह, धनी राम चात्रिक आदि की रचनात्मक प्रतिभा को निखारने में भाई वीर हि का विशेष योगदान था। प्रो. पूरन सिंह ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा, "उस सौभाग्य समय में, एक महान व्यक्ति (भाई वीर सिंह) के दर्शन हुए। और उनकी कृपा से पंजाबी साहित्य का सारा बोध और ज्ञान आ गया। कविता भी मिली और कृपा भी। मधुर साध वचन से मुझे पंजाबी भाषा अपने-आप आ गयी।"

भाई साहब की कविताओं के विषय व्यापक हैं, जिनमें उन्होंने अपने काव्य सिद्धांतों के साथ-साथ कविता के रूप, सौंदर्य, नैतिक शिक्षा, व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति, प्रकृति का चित्रण आदि की व्याख्या की है। उन्हें लघु कविताओं के प्रमुख कवि और गुरूमति के प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त है। उनकी कविताओं के कुछ पहलू पाठकों के लिए रुचिकर हो सकते हैं-

वैरी नाग तेरा पहला झलका, जद अखिआँ विच वजदा।

कुदरत दे कादर दा जलवा, लै लैंदा इक सजदा।

जिंद जे ढहंदी खेड़ियों, ढह पैंदी देह नाल।
खेड़ा जिंदड़ी इक हन, इक दुहां दी चाल।

रही वासते घत्त, समें ने इक ना मंत्री।
तृखे आपणे वेग, गया टप बंत्रे बंत्री।

बैठ वे ज्ञानी! बुद्धि-मंडले दी कैद विच
'वलवले दे देश' साडियाँ लग गइयाँ यारियाँ।

सुपने विच तुसीं मिले असानुं, असां धा गलवकड़ी पाई।
निरा नूर तुसीं हथ ना आए, साडी कंबदी रही कलाई।

कविता दी सुंदरताई, उच्चे नछत्तरीं वस्सदी।
आपणे संगीत लहरे, आपणे प्रकाश लस्सदी।

धोबी कपड़े धोंदिया, वीरा हो हुशियार।
पिछले पासियों आ रिहा, मुँह अड्डी संसार।

1949 में उन्हें पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया; स्वतंत्र भारत की स्थापना के बाद पंजाब के राज्यपाल ने उन्हें पंजाब विधान परिषद के सदस्य के रूप में नामित किया; 1953 में उनकी पुस्तक "मेरे साइयां जीओ" को भारतीय साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित किया गया, जो किसी पंजाबी पुस्तक को दिया जाने वाला पहला पुरस्कार था; 1954 में उन्हें सिख शैक्षणिक सम्मेलन बाम्बे द्वारा 'अभिनंदन ग्रंथ' प्रदान किया गया; 1956 में उन्हें भारत सरकार द्वारा 'पद्म विभूषण' से सम्मानित किया गया।

1957 की शुरूआत से भाई साहब शारीरिक रूप से कमजोरी महसूस करने लगे थे। 1 जून को उन्हें बुखार हो गया और 10 जून को उनका निधन हो गया। वे अपने पीछे अपने व्यक्तित्व और कार्यों का ऐसा वैभव छोड़ गए हैं, जो युगों-युगों तक मानवता का मार्गदर्शन करता रहेगा।

पता- अकाल यूनिवर्सिटी,
तलवंडी साबो-151302 (बठिंडा)
मोबाइल नं0- 9417692015

स्वर सरगम सँवार सुखमाती,
कोमल स्वागत-गीत सुनाती।
नव निकुंज नवदल अनुरंजित,
गुन-गुन मधुपावलि गुण गाती।
सुरतरु से तरु नत शिर शोभित,
लेकर पत्र-पुष्प की माला।
आयी नव वासन्ती बाला।।

- विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'

निखट्टू

➲ मूल- डॉ0 सदानंद देशमुख
भाव0 भगवान वैद्य 'प्रखर'

मिल का भोंपू भयावह आवाज में चीखा। पूरा गाँव सिहर उठा। लक्ष्मण पवार की नींद खुल गयी। इस भोंपू की आवाज के साथ नींद खुल ही जाती है उसकी। पिछले पाँच वर्षों से...! पहले सुबह जागना यानी मुर्गे की बांग सुनकर उठना होता था। पर वह ठहरा, आखिर पशु...! उसका समय कुछ पक्का नहीं होता था। पर अब सहकार महर्षि शिंगणे साहब की कृपा से गाँव में कपड़ा मिल शुरू हो गयी। उसके कारण अब लगता है जैसे शहर में रह रहे हैं।

...खेत-खलिहान में काम करने वालों को अब कपड़ा-मिल में नौकरी लग गयी। किसान-मजदूरों के बच्चे सूट-बूट में रहने लगे। साहब बनकर चकाचक दिखने लगे।... अपना भी एक फायदा हुआ। वो ऐसा कि ठीक चार बजे नींद खुल जाती है। उस कारण दिन के सारे काम खूब अच्छे से निबट जाते हैं।

...ठीक समय पर जाग जाना। चूल्हा जलाना। पानी गरम करना। मुँह धोना। चाय पीना। गोबर-सानी करना और कैन में दूध भरके होटल का रास्ता पकड़ना। उसके पहले पत्नी को जगा देना। वह जाग गयी कि खुद चलने लगना। एक कोस पर बस-स्टैण्ड। वहाँ दूध गिनकर दे देना। लौटते तक खासा दिन चढ़ जाता है। उसके बाद अपने घर के काम। दस बजे रोटी-झोटी खाना और भैंसे खोलकर चराने के लिए खेत का रास्ता पकड़ना। कितने ही दिनों से यही क्रम बना हुआ है। अपना सब कुछ कैसे ठीक समय पर चलता रहता है।

...इस प्रकार सोचते हुए लक्ष्मण पवार उठ बैठा। सुबह के काम निबट चुके। कैन में दूध लेकर स्टैण्ड की ओर चल पड़ा।... याद आया, पत्नी को कुछ बतलाना है। तुरंत पीछे लौट पड़ा। पत्नी कंडे की राख लेकर दाँत मलने बैठी थी। उससे कहा,

"वह निखट्टू उठा कि नहीं अभी? न उठा हो तो आवाज दे दो उसे। कहना, शादी तय हो चुकी है तुम्हारी। अब तो हमारी छाती पर बैठकर मूंग दलना बंद करो...!"

"ऐसा क्यों कहने लगे, राम पहर में। निकल गया लगता है दिन! शुरू हो गया उल्टा-सीधा बकना।" कहते हुए पत्नी उसी पर बिगड़ पड़ी। मुँह की राख भरी लार 'थू... थू' करते हुए थूक दी।

"निखट्टू ही है वह। एक दम गत्रे के सिरे पर बढ़ आया निखट्टू। ऐदी खटारा! इतना बड़ा बीस साल का घोड़म्या हो गया। पर फुकट का खाना... धरती पर सोना! हमारा पूरा खानदान मेहनत-कशों का था। बाप-दादा के जमाने से खेत जोतते आये। पशुओं के साथ पशु बनकर पशुवत मेहनत की है। एक दिन बिनाकाम का नहीं बीता।

और नसीब में ये ऐसी औलाद आयी... एक दिन काम नहीं करता...।"

"आपही ने सर चढ़ाकर रखा उसे। कह रहे थे, कॉलेज पढ़ने दो... पढ़ने के लिए भेजा। 'बाबू...बाबू' करके लड़ियाते रहे। अब लड़का काम भूल चुका है तो इसमें दोष किसका? तुम्हारा कि मेरा?"

हमेशा की तरह दोनों में वाद-विवाद आरंभ हो गया। दोनों एक से बढ़कर एक। झगड़ा शुरू हो गया कि कोई पीछे हटने को तैयार नहीं। झगड़ा करते-करते दोनों पस्त हो जाते। कुछ दिनों के लिए बोलचाल बंद रहती। आजकल उनके विवाद का कारण था, युवावस्था प्राप्त कर चुका उनका इकलौता लाड़ला...!

लक्ष्मण ने अपने पुत्र को दुनियाभर की गालियाँ बकना और पन्याग बाई ने पुत्र का पक्ष लेना-यह तय था।

तो लड़ते-झगड़ते अचानक लक्ष्मण के ध्यान में आया कि विवाद के लिए यह समय उपयुक्त नहीं है। सुबह-सुबह कहाँ 'कट-कट' बढ़ाते बैठना... 'थूऽऽ... ऐसी जिंदगानी पर'... ऐसा कहकर उसने दूध की कैन उठा ली और वह चलने लगा।

जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए बस-स्टैण्ड पर पहुँच गया। अंबादास बगाडे की होटल में दूध गिनकर दे दिया। उसके बाद, आदतन सामने रखी बेंच पर बैठ गया।

सामने लंबा-चौड़ा नागपुर-पुणे हाइ-वे था। कार, ट्रक आदि गाड़ियाँ धूम भागमी रहती थीं। इधर से उधर और उधर से इधर।... ऐसी भागमभाग करने की बजाय तो इधर वालों ने इधर और उधर वालों ने उधर ही रहना चाहिए! काहे के लिए करना यह सुलतानी भाग-दौड़! भयावह आवाज के साथ रास्ता दहलाकर भागते ट्रक्स! ट्रक्स, जीप, मेटाडोर... एक गया कि उसके पीछे दूसरा चला आएगा। चला जाएगा। कभी-कभी जोर से आवाज करके धरती दहलाकर जाने वाले ट्रक की आवाज से घबड़ाहट होती। बे-मतलब कलेजा धड़-धड़ करने लगता। तब वह अपनी दूध की कैन उठाकर घर के रास्ते भागने लगता।

"लो लक्ष्मणराव चाय!" कहते हुए बगाडे ने आधा कप चाय पेश कर दी।

"अरे, इसकी क्या जरूरत थी? मैं लेकर आया हूँ चाय...।"

"ले लो... फिर से आधा कप! चाय से कोई पेट थोड़े ही न फटता है? और... घर की चाय से होटल की चाय बेहतर होती है, बंधु...!" कहते हुए बगाडे उसके पास बैठ गया। फिर बोला,

"आपका बेटा आता है तो खाली चाय ही नहीं पीता। गीली मिसळ भी खाता है। आलू बड़े खाता है। आप ही बैठते हो कंजूसी करते। वो तो भक्कम उधारी करके जाता है, आपके दूध के पैसों के भरोसे...।"

"इसी कारण मैंने उसे अब भेजना बंद कर दिया है।"

"तब भी उसकी उधारी शुरू ही रहती है, हाँ...!" इस माह नब्बे रूपये बिल हो गया है उसका। दोस्त-भाइयों को भी चाय-पानी पिलाता है, वह...। आपके कान पर डाल दे रहा हूँ। नहीं तो बाद में चिलाएंगे आप! कहेंगे... मैं कुछ नहीं जानता...!"

उसकी बात सुनी और उसका सिर भन्न गया। ...मैं पेट काटकर काम-धाम करता रहता हूँ। कुछ खाता नहीं... पीता नहीं। और यह परोपकारी पुत्र चला, दूसरों को खिलाने-पिलाने! बाप के भरोसे बेटा उदार! स्साला... इसका इलाज भी करें तो क्या करें!"

"इसके बाद बिल्कुल बंद कर दो, उसकी उधारी। ताकीद दे रहा हूँ मैं आपको। नहीं तो मैं दूध के पैसों में से

एक धेला काटने नहीं दूँगा। करते बैठो आप उससे वसूल।. .. काट कर ले लेना उसके हाथ-पाँव।"

"अरे बंधु, यह भी क्या बात हुई? इकलौता बेटा है। उसके नसीब से दूध का बंधान भी जारी है। तो खाने-पीने दो उसे। बंधानवालों ने खाया-पिया तो जरा हमारा भी धंधा बढ़ता है।"

कहते हुए बगाड़े उसके समीप खिसक कर बैठ गया। और लक्ष्मणबुवा का मुँह ताकने लगा। पुत्र द्वारा उधारी किये जाने की बात सुनकर उसके मुँह का स्वरूप बिगड़ गया था। किसी प्रकार चाय के घूँट लिये जा रहा था। कप की चाय का स्वाद कसैला हो चुका था।

बेटे की हरकत से क्षण भर उसका मन खट्टा हो गया। पर जल्द ही संभल गया। क्योंकि यह झटके उसके लिए नये नहीं थे। बेटे की बहुत उधारी हो चुकी! मधुकर क्षीरसागर के पान-टप्परी की। दिलिपराव आप्पा के शराब-दुकान की। होटल की। अच्छा हुआ, सिनेमा-टाकीज में उधारी नही चलती! नहीं तो इस निखट्टू ने वहाँ भी अच्छी-खासी उधारी कर रखी होती! और उसकी की हुई उधारियाँ चुकाते-चुकाते मेरा दम निकलने लगता...!

चाय समाप्त करने के बाद उसने कप टेबिल पर रख दिया। होटल के लड़कों ने अब झाडू लगाना आरंभ कर दिया था। भट्टी तेज हो चुकी थी। अंबादास काळे बेसन भिगोकर माल निकालने की तैयारी में लगा था। बगाड़े का बेटा गल्ले पर बैठा था। उसने टेप-रिकार्डर तेज आवाज में कर रखा था। उस पर 'दिल धक्...धक् करने लगाSS...' गीत जोर-जोर से बज रहा था। इर्द-गिर्द की मधुकर क्षीरसागर, जयराम पाखरे, मेहबूब भाई की होटल्स भी शुरू हो चुकी थीं। प्रत्येक होटल में, पान-टप्परी पर तेज आवाज में स्पीकर चीख रहे थे। भिन्न-भिन्न गीत तेज आवाज में बज रहे थे। इस कारण बस-स्टैण्ड पर विचित्र शोर मचा हुआ था। किसी का किसी से कोई तालमेल न था।

सामने के हाइ-वे से गुजरनेवाले ट्रक, जीप, मेटाडोर आदि वाहन रास्ते के किनारे खड़े रहते थे। ड्राइवर, कंडक्टर उतर कर मुँह हाथ धोते। चाय-पानी पीते। बड़े, गीली मिसळ आदि खाते थे। चाय पीते थे। होटलवालों का धंधा जोरों पर था।

यह सब देखकर लक्ष्मणबुवा को बड़ा कौतूहल होता। 'पाँच साल पहले भकास दिखने वाला गाँव अब एकदम शहर हो चुका है। हमारे बचपन में यहाँ शमशान था। यहाँ मुर्दे जलाते थे या दफन किया करते थे। अब तो रौनक आ गयी है। खामगाँव शहर का पिल्ला ही हो, जैसे...!' उसके मुँह से निकला।

सुनते ही अंबादास बगाड़े पेट पकड़कर हँसने लगा।

"क्या आप भी रोज-रोज वही-वही बात करते रहते हैं। कुछ और कहा करो, बंधु! वह विषय अब पुराना पड़ चुहा है..." कहा उसने।

सुनकर लक्ष्मण पवार मन ही मन शर्मिंदा हो गया। वह ये बात रोज-रोज बगाड़े से कहता रहता। बगाडे हँस देता। और वह हँसा कि यह शर्मिंदा हो जाता।

उसके बाद काफी देर तक उसकी समझ में न आया कि क्या कहा जाए! समझ में न आने वाले गाने सुनता रहा। तभी एकदम ताजा घटना याद आ गयी। बतलाने लायक। बतलाना ही चाहिए!

"अपने निखट्टू को आखिर लगा ही दिया मैंने, काम पर।"

"किसे? मुरल्या को?"

"तब और किसे ?"

"अरे भाई, किसके काम पर रख दिया उसे? किसका कल्याण कर रहा है वो?"

"अपने परवीन सेठ के किराना दुकान पर!"

"अरे वाह! अच्छा हो गया। अब तो चिंता दूर हो गयी, आपकी...।"

"तो क्या करें? बेवकूफ को कॉलेज में भेजा। लगा था, इकलौता बेटा है। उसे पढ़ाना चाहिए। बढ़िया नौकरी में लगाना चाहिए। साहब बनाना चाहिए। इसलिए खुद तंगी में रहकर उसे पैसे भेजे। चिखली के कॉलेज में रखा। लेकिन, उसके पर निकल आये। पट्ठा मेरे ही सिरपर हाथ घुमाने लगा...। हर रोज चिखली जाना। अप-डाउन करना। ऐसे तीन साल बीत गये। हर साल कहता, पास हो गया... पास हो गया। पर इस साल सुरंगलीकर गुरूजी के अवि ने बतलाया कि आपका मुरली बारहवीं में ही है... हर साल सिनेमा देखता है। 'फेल' होता है...।"

कहते हुए लक्ष्मणबुवा बुरी तरह क्षुब्ध हो गया।

"ठीक ही हुआ तब तो। अब तो लगा देना चाहिये भैंस-वैस चराने के लिए। हर किसी को पढ़ाकर काहे सरकार का बोझ बढ़ाते हो, भाई!"

कहते हुए बगाडे खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँसा और ग्राहक की ओर मुड़ गया। क्योंकि अब लक्ष्मणबुवा से बात करने में कोई लाभ न था। ग्राहकी बढ़ने लगी थी।

'क्या किया जाए' कहते हुए लक्ष्मणबुवा बेहद उदास हो गया। रास्ते से गुजरते वाहन, होटल, पान-टप्परियों पर बजने वाले गानें-इनके कारण उसका सिर फटने लगा था। कुछ समय बाद वह उठा और दूध की खाली कैन उठाकर गाँव की ओर चल दिया।

...गाँव के बाहर दूर, यहाँ हाइ-वे पर बस स्टैण्ड। सामने डामर की सड़क। पठार पर से होते हुए इस दिशा से उस दिशा की ओर और उस दिशा से इस दिशा की ओर जाती हुई। छाती पर, पीठ पर उभरे कोड़े के निशान के समान दिखने वाली यह डामर की काली सड़क पठार की पीठ पर रेखांकित हो गयी थी।

इस ओर चिखली, उस ओर खामगाँव-ऐसे गयी थी। एक शाखा निकलकर ठेठ कपड़ा मिल के सामने आकर खड़ी हो गयी थी।

लक्ष्मणबुवा अपने ही विचार में खोया हुआ, पुत्र की चिंता में गाँव की ओर लौट रहा था। तो आड़े रास्ते पर सुरंगलीकर गुरूजी का अवि मिल गया। सीने से किताबें लगाये जल्दी-जल्दी स्टैण्ड की ओर बढ़ा चला जा रहा था।

"चिखली की बस निकल गयी क्या, लक्ष्मण चाचा?" उसने पूछा।

"अभी नहीं। कहाँ... कॉलेज में जा रहे हो क्या?"

"हाँ, अब बी.ए. फाइनल है।" कहते हुए वह तेजी से आगे बढ़ गया।

"मतलब... अपनी मराठी भाषा में कौन-सा किलास हुआ?"

सुनकर अविनाश को हँसी छूट गयी। बोला,

"पंदरहवीं क्लास...।" और लक्ष्मणबुवा को टालते हुए आगे निकल गया।

उसकी बात सुनकर लक्ष्मण पवार के कलेजे पर खरोंच पड़ गयी।... अवि और अपना निखट्टू साथ-साथ ही तो थे! पर निखट्टू ने बारहवीं में ही तीन साल लगा दिए। पास होने का नाम नहीं। केवल चकाचक कपड़े पहनना, सिनेमा देखना, होटल में खाना-इनके लिए घर के मटके में से दूध के बंधान के पैसे चुराकर ले जाना। इस प्रकार के धंधें शुरू किये। बदमाश निकलेगा ये लड़का... बिल्कुल चोर... उचक्का। हरामखोर हो गया अपना पोट्टा! उसकी बजाए बचपन में ही अपने साथ खेत-खलिहान के काम लगा देना चाहिये था। भैंस के पीछे लगाकर दूध के धंधे में एकदम 'टिरेन' कर दिया होता। चूक हो गयी मुझसे। हो

गयी गलती... जबरदस्त पश्चाताप से विकल हो गया। कलेजा फटने लगा। घायल मन से आगे बढ़ता रहा। '... कहता है, नौकरी लगा दो। इसके बाप के घर में पड़ी है क्या, सरकारी नौकरी...!'

इस बीच सामने के रास्ते से वारकरी आते हुए दिखायी पड़े। तीन मालाधारी। गोमेधर के मंदिर की ओर जा रहे हैं। उनके हाथ में वीणा... विट्ठल...विट्ठलSS रामकृष्ण हरी... एकदम प्रसन्न! अपने आप में मगन। कोई चिंता नहीं। आत्ममग्न तुकाराम महाराज के तीन रूप! उनकी ओर देखकर उसे ईर्ष्या होने लगी। क्या मैं भी हो जाऊँ वारकरी? न लड़के की चिंता न संसार की।... पर मुझसे दस जनम में भी नहीं हो पाएगा, ये सब। मैं तो पूरी तरह सांसारिक मायाजाल में उलझ चुका हूँ।... मन ही मन वह चौथा वारकरी हो गया। उन तीनों के साथ होकर चलने लगा। उसे बड़ा अच्छा लगने लगा। पर फिर गोशाला में बंधी भैंस... खेत का टुकड़ा... पत्नी... लोफर बेटा; सब आँखों के सामने तैर गया। उसके कारण फिर विकल हो गया। वारकरी अभंग कहते हुए बढ़े चले जा रहे थे।

तुका म्हणे ऐसे। मावेचे मइंद
त्यापासी गोविंद। नाही नाही...

सचमुच मैं माया का गोला हूँ... मेरे मुख में गोविंद नहीं... अपने पास पुण्य-संचय नहीं... मैं ऐसा ही रहूँगा... संसार के मायाजाल में कीड़े-मकोड़ों की तरह बिलबिलाता हुआ!

जैसे-तैसे वह घर पहुँच गया। क्या राजकुमार अब भी उठे हैं कि नहीं! परवीन सेठ को कल ही बोल कर आया था। कह रहे थे, कल अल्सुबह ही भेज देना दुकान पर।

वह भीतर उस कमरे में गया, जहाँ मुरल्या सोता था। देखा तो मुरल्या एकदम गायब...!

"क्यों री, मुरल्या कहाँ गया? गया क्या किराना दुकान पर, परवीन सेठ के...?" उसने पत्नी से पूछा।

"नहीं, डबड़ा लेकर मैदान में गया है।" पत्नी बोली।

अब वह बैठा पुत्र की बाट जोहते। तभी द्वार पर मोटर साइकिल की फाट्-फाट् आवाज सुनायी दी। परवीन सेठ आया था, फटफटी लेकर।

"अरे क्यों भई, लक्ष्मणबुवा! कब भेज रहे हो बेटे को? मैं आपकी राह देखते बैठा हूँ, बंधु...। दूसरा आदमी नहीं बतलाया। हमारा सुधाकर छूट गया काम पर से, इस कारण मुश्किल हो गई, भाई। नहीं तो क्या जरूरत थी आपके द्वार पर आने की?" कहते हुए प्रवीण सेठ ने गाड़ी स्टैण्ड पर लगा दी।

"नहीं... अब लेकर ही जाओ आप अपने साथ। शादी तय की है उसकी। सोचा, उस भय के कारण ही क्यों न हो, लड़का लाइन से लग जाएगा। सीधा रास्त पकड़ेगा।"

"आप निश्चिंत रहो। मैं लगाता हूँ, उसे बराबर काम से।"

कहते हुए प्रवीण सेठ खाट पर आकर बैठ गया। दोनों ने चाय पी। गप्पे शुरू हो गयीं।

"कितनी बार देती हैं भैंस दूध-ऊध? एक तो बिना दूध की ही दीख रही है।"- प्रवीण सेठ ने भैंसों की ओर देखते हुए कहा।

"भैंसे मत कहिए... लक्ष्मी हैं वो हमारे घर की। हाथी कहिए, हमारे दरवाजे पर बंधे...।" कहते हुए लक्ष्मणबुवा का गला रूंध गया। तृप्त... तृप्त हो गया।

"पहले से ही मुझे दूध-दही का खूब शौक। उसके लिए भैंसे पालीं। कभी खण्डित नहीं होने दिया घर का दूध। और होने भी नहीं दूँगा मैं, जब तक जिंदा हूँ तब तक...। इस दूध-दही के कारण ही हम लोगों का स्वास्थ्य इतना

उत्तम है। मैं, मेरी पत्नी और मुरल्या...; हम सब कैसे एकदम तंदुरस्त हैं... ये सब इस दूध के कारण ही।... खाने के लिए और है ही क्या इस हाइब्रीड के जमाने में...!"

"पर चारा-पानी की भी वैसी ही व्यवस्था होनी चाहिए न!"

"उसके लिए पाँच एकड़ में से तीन एकड़ खास भैंसों के लिए परती रखता हूँ। किसी की मेंड़ पर जाने का काम नहीं। बंधान है, होटल में। पैसे आते हैं काम पुरते। कोई चिंता नहीं है...।" कहते हुए लक्ष्मणबुवा मन ही मन खुश हो गया।

"ये दूध देने वाली भैंस कितने की होगी? मतलब बाजार भाव से कितने पैसे मिल सकेंगे इसके?"

प्रवीण सेठ के ऐसा पूछते ही लक्ष्मणबुवा का सिर भन्ना गया। क्रोध से लाल हो गया वह। पर प्रगट ऐसा कुछ दिखने नहीं दिया। कहने लगा,

"अब... ये भैंस की कीमत काहे लगा रहे हो, प्रवीण सेठ आप? मैं कोई बेचने वाला थोड़े ही न हूँ, भैंस! बिल्कुल भी नहीं...।"

"कुछ नहीं, मैं तो यूँ ही पूछताछ करने लगा। वैसे, बाजार में कितने में मिलेगी ऐसी भैंस! मतलब भरपूर दूध देने वाली...!" प्रवीण सेठ ने प्रश्न किया।

"हाँ... ऐसा भले पूछो आप। मिलेगी... कम-अज-कम चार हजार में।"

'स्साला... मुझे लेनी पड़ती है एक भैंस। जमकर दूध देने वाली। फिलहाल दोनों भैंसों ने दूध देना बंद कर दिया है। इसके अलावा, हमारा काम रहता है, नौकर-चाकरों के भरोसे। बारा भाई की खेती... हाथ में कुछ नहीं दे पाती...। ये दुकान का धंधा है इस कारण हमारी शान है। आप खुद करने वालों का और हमारा, इसमें फर्क पड़ता ही है। हमारे घर की भैंस इतनी कुछ तंदुरस्त नहीं होतीं। और फिलहाल तो मोल लिया हुआ ही दूध जारी है। एकदम पतला... पतला... यानी बिल्कुल पानी ही समझो न!... मुझे लेनी पड़ी है, ऐसी भैंस...!"

ऐसा कहकर प्रवीण सेठ भैंस की ओर देखने लगा। टकटकी लगाकर देखता रहा तो लक्ष्मणबुवा को उसकी नजर असह्य हो गयी।... कहीं नजर न लग जाए, भैंस को! दूध देना न बंद कर दे! किसी-किसी की नजर ऐसी बुरी होती है कि पत्थर भी फूट जाता है। ये तो ठहरी भैंस...! बंद कर देगी दूध देना।... नहीं तो कहीं मर ही न जाए! पर, इससे कहना भी कैसे कि इस प्रकार न देखो भैंस की ओर! मुझे तो अपना बेटा रखना हे, इसके यहाँ काम पर। कुछ तो जुगत करनी ही पड़ेगी! भैंस पर से उसकी नजर हटनी चाहिए।

वह थूकने का बहाना बनाकर अपने स्थान से उठा ओर उसके बाद प्रवीण सेठ के ठीक सामने पहाड़ के समान आकर बैठ गया। उसकी नजर भैंस पर न पड़े, इसकी खबरदारी लेने लगा।

इसका इस प्रकार जारी था तो खुले मैदान की ओर से मुरल्या आ गया। बाल्लस-बाल्लस भर बढ़े हुए उसके केश सीधे कंधे तक पहुँच चुके थे। नींद से उठने के बाद संवारे न थे। एकदम अस्त-व्यस्त दिखायी दे रहा था। पर इस प्रकार दिखना उसे खूब भाता था। गाँव में से गुजरते समय कंधे उचकाते हुए चलता था और 'नायक नहीं SS खलनायक हूँ मैं' यह गीत गाता था। 'मैं संजय दत्त हूँ' ऐसा उसे लगता था। उसी प्रकार रहता भी था वह। चुस्त पैण्ट... ढीला-ढाला शर्ट... हाथ की मुट्ठियाँ भींचकर चलता था। मानो, वह मुट्ठी किसी के सीने पर पड़ने वाली है, इस प्रकार जतलाता था।

उसने शर्ट पैण्ट के भीतर नहीं खोंचा था। यूँ ही

खुला छोड़ दिया था। और एक हाथ की मुट्ठी भींची न थी। क्योंकि उस हाथ में शौच का टमरेल था। पर, दूसरे हाथ की मुट्ठी भींची हुई थी। शट की बाँह में कलाई पर दो-एक फोल्ड मारे हुए। प्रवीण सेठ को देखकर उसके माथे पर शिकन उभर आयी। उसने बे-मतलब खकार कर थूक दिया।

उन दोनों को लांघकर पानी लेने के लिए वह घड़े की ओर मुड़ा। वहाँ दो भैंसें बंधी हुई थीं। एक दूध देने वाली तो दूसरी दूध न देने वाली। उनके पीछे से गुजरते हुए एक ने पूँछ उछाली जो असावधान मुरल्या को लगी। वह बौखला गया। पहले ही गुस्साया था। गुस्सा उतारने के लिए उसने भैंस की पीठ पर जोर-जोर से कोहनी से गुद्दे जमाना शुरू किया। भैंस पीठ से नीचे... नीचे झुक गयी। विकल हो गयी। और टुँर्रव... टुँर्रव... आवाज करने लगी। उसकी वह हालत देखकर अपनी ही पीठ पर कोहनी की मार बैठे समान लक्ष्मणबुवा तिलमिला उठा।

"अरे... अरे ऐसा क्यों कर रहे हो, भले आदमी... अपनी लक्ष्मी है, वो अपनी अन्नदाता है... क्यों उसके हाल कर रहे हो..." कहते हुए वह आगे बढ़ा।

तो मुरल्या ने हाथ का टमरेल दूर कहीं उछाल दिया। वह खडांगSS... खडांगSS आवाज करते हुए पत्थर पर जा कर गिरा। पिचक गया। उसका चेहरा-मोहरा बदल गया।

"क्यों तैश में है, गड़ी?" प्रवीण सेठ ने प्रश्न किया। उस पर कोई कुछ नहीं बोला। वातावरण एकदम तनावपूर्ण, नीरव हो गया।

"चलो, जल्दी सब निबटाओ मुरलीधर। दुकान खुली है। और आरूण सेठ को खामगाँव जाना है।" काफी देर बाद प्रवीण सेठ जल्दी मचाते हुए बोला।

"क्या निबटना...! मैं नहीं आऊँगा आपके दुकान-फुकान पर...; मुझे बिल्कुल पसंद नहीं वो पुड़िया बांधने की थर्ड-क्लास नौकरी।"

"तब कौन-सी नौकरी चाहिए तुम्हें? बैरिस्टर की कि थानेदार की? अरे मेरे बाप, बहुत हो गए तुम्हारे ये नखरे... बस हो गया... अब कोई संड-मुसंडे नहीं रहे तुम। अब शादी तय हो गई है तुम्हारी। दो से चार हाथ होने वाले हैं तुम्हारे। अब कुछ कमाई-धमाई करने लगो, अपनी खुद की...।"

सुनकर मुरल्या एकदम तन गया। बोला,

"शादी! शादी!! शादी!!! किस चूतिया ने कहा था तुमसे मेरी शादी पक्की करने के लिए?" कहते हुए उसने दनादन पैर पटके और राख का ढेला उठाकर क्रोध में दाँत मांजने लगा।

"अरे, अच्छा हुआ जो उस खळेगाँव के भले आदमी ने तुम्हें लड़की दी। नहीं तो कौन लड़की देने वाला था ऐसे बिगड़े नवाब को?"

ऐसा कहकर लक्ष्मणबुवा ने प्रवीण सेठ की ओर देखा। उसने दहशत में मुरल्या की ओर देखा। उसे लगा, अब वह रॉकेल का भपका निकालती मशाल की तरह धधक उठेगा। पर, मुरल्या उधर नाली पर बैठकर जीभ रगड़ रहा था। व्हॉSS... व्हॉSS आवाज करते हुए मुख खंगाल रहा था। 'ओS ओS ओSS बोS बोSS...' आवाज कर रहा था। पेट की अंतड़ियाँ उलीची जाने पर समूचे देह को शॉक लगने जैसा झटका बैठ रहा था। पेंदे में झटका खाकर फिर शांत होता जा रहा था। उस कारण शायद पिता का कहा सुन न पाया हो वह! अन्यथा चुप न रहता! प्रवीण सेठ ने सोचा। और ...अब मुरल्या बौखलाया नहीं! यह देखकर उसे सुकून मिला।

प्रवीण सेठ को शिद्दत से लग रहा था कि मुरल्या ने जल्दी निबटना चाहिये। पर, मुरल्या ने इत्मीनान से

मुखमार्जन किया। चाय पी। कंघी की। गर्दन पर के केश बार-बार कंघी चला कर संवारे। अब वह एकदम 'जंटलमन' हो गया।

"चलो भैया, जल्दी...।" कहते हुए प्रवीण सेठ खड़ा हो गया। शरीर को हिला-डुलाकर जल्दी मचाने लगा।

"कहाँ जाना है? जाओ न आप, जहाँ जाना हो!" मुरल्या ने ठसक से कहा।

"अरे मेरे भाई, ऐसा काहे कर रहे हो! दुकान पर चलो... कल ही तुम्हारा बाप तुम्हारी नौकरी पक्की कर आया। हमारे दुकान के आदमी हो तुम। महीना भी तय हो चुका है... चा-सौ रुपए। दो माह हो गए कि पाँच-सौ कर देंगे।"

सुनते ही मुरल्या दोनों हाथ लंबाकर, मुट्ठियाँ भींचकर ठो... ठो... करके हँस पड़ा। एक ही स्थान पर संजय दत्त की तरह शान से दो-तीन डग भरे। इधर से उधर... उधर से इधर। फिर किसी नाटक अथवा सिनेमा का डॉयलौग बोले समान चिल्लाया।

"अरे, चार-सौ रुपये, खाली चार-सौ रुपये महीना! उसकी बजाए तो स्साला तिजोरी फोड़ना पुरता है, किसी मालदार की। किसी का खून करना पुरता है। कुत्ते छोड़कर भी पता नहीं चल पाएगा; ऐसे आइडिया हैं, अपनी खोपड़ी में, खून करने के। तीन घण्टे में तीन लाख वसूल करेंगा ये मुरल्या... पूना-मुंबई जाएँगा...।"

इतना कहकर वह फिर हाथ फैलाकर, मुट्ठियाँ भींचकर चलने लगा। ठाठ से। रौबदार... एकदम खलनायक संजय दत्त दिखायी देने लगा। इसी बीच उसने गर्दन पर सुरक्षित रखे जटा समान बालों में उंगलियाँ घुसायीं और घोड़े की अयाल सहलाये समान खुद अपनी अयाल सहलायी। इस प्रकार भक्कम शान बघारने लगा। इसी प्रकार शान बघारते हुए भैंस के समीप गया। तो वह एकदम बिदक गयी। एक ओर खिसक गयी। ये कहीं फिर मारने न लगे-इस विचार से भयभीत हो गयी।

उसकी बातें सुनीं। उसकी चोरी करने की, खून करने की भाषा सुनीं। और लक्ष्मणबुवा एकदम पस्त हो गया। उसे लगा, बर्फ के ढेर पर से हाथ पकड़कर कोई उसे घसीटते हुए ले जा रहा है। सिहरन-सी दौड़ गयी पूरे बदन में। कलेजा धड़कने लगा। सीने के पिंजड़े में से कलेजा निकाल कर बाहर फेंक दिए समान तिलमिलाने लगा वह। मन ही मन ज्वालाग्नि में दहकने लगा।

"मैं नहीं आने वाला। बिल्कुल नहीं आऊँगा। मुझे पसंद नहीं है वह डेढ़ दमड़ी की नौकरी। बिल्कुल भी पसंद नहीं।" इस प्रकार वह फिर जोर से चिल्लाया। इस कारण पास बंधी भैंस बिदक गयी। पीठ में से झुककर दोहरी-दोहरी हो गयी।

"तो फिर कौन-सी नौकरी चाहिये बे तुम्हें?" मन ही मन क्रोधित होते हुए लक्ष्मणबुवा ने पूछा।

"पुलिस! पुलिस की नौकरी माँगता है, ये शेन्य। नहीं तो गुंडों का बॉस बनना चाहता है, पुना-मुंबई जाकर!" कहते हुए उसने फिर गर्दन पर की अयाल को उंगलियों से सहलाया।

"अरे, हम लोगों को मिलने से रही वह नौकरी? जो मिल जाए, वही कर लेनी चाहिये... अपने प्रवीण सेठ के दुकान पर की..."

"क्यों नहीं मिलेगी? बारहवीं पास है ये शेन्या... मास्तर कु धमका के, कॉपी करके पास हुआ... मास्तर कु चाकू दिखाया। गाईड निकाली। सब लिव डाला। मास्तर ने बाद में अपने तरफ देखाच नहीं। डर गया खलनायक को.. .; इसलिए बोलता, हम नहीं करेंगे ये नवकरी..."

"ऐसे-कैसे नहीं करोगे नौकरी? प्रवीण सेठ, आप इसे लेकर ही जाओ। जबरदस्ती लेकर जाओ।... बिल्कुल

घर मत आने दो... रात दिन काम लो इससे... काम नहीं किया तो कर-कर काटो इस को और पकाकर किसी को खिला दो..."

इस प्रकार खीझकर बोल दिया लक्ष्मण पवार ने। उसके इस प्रकार कहने से मुरल्या भड़क गया।

"मैं कहता हूँ, मुँह संभाल कर बोलो आप... मुँह संभाल कर। पट्ठा ही काट कर पकाएगा किस को... पट्ठे को हाथ लगाने की हिम्मत नहीं है किसी में...!"

कहते हुए उसने एकदम आवाज चढ़ा दी। बाद में बाप भी चीख-चीखकर बोलने लगा। बाप-बेटे का इस प्रकार विवाद शुरू हो गया। तो पन्यागबाई दौड़ते-भागते बाहर आ गयी। दोनों को समझाने लगी। चीखने-चिल्लाने लगी। इससे द्वार पर शोर बढ़ गया। पास-पड़ोस के लोग चुंबक से खींचे समान उस ओर आने लगे। इस बात से मुरल्या ने अपमानित महसूस किया। वह मुट्ठियाँ भींचते हुए द्वार पर खड़े लोगों की ओर मुड़ा। तो लोग तुरंत भाग निकले। कुछ दूर जाकर फिर यहाँ का तमाशा देखने लगे।

"अरे चल भाई, मुरलीधर... पुलिस की नौकरी मिलने तक यह नौकरी कर लो। फिर चाहे तो खुशी से चले जाना। मेरे पास फिलहाल आदमियों की कमी है, इस कारण...। नहीं तो कौन खुशामद करने वाला था तुम्हारी...!"

ऐसा कहते हुए प्रवीण सेठ उसे ठेलते-ठेलते दूर तक चलाते लेकर गया। जबरदस्ती मोटर साइकिल पर बिठाया। भुर्र... भुर्र करते मोटर साइकिल शुरू हुई। दोनों चले गये।

इसी के साथ, लक्ष्मणबुवा ने लंबी साँस ली। उसे लगा जैसे बहुत बड़े संकट से छुटकारा मिल गया! उसने बड़ी राहत महसूस की।

रात को मुरल्या दुकान से लौटा तो अच्छी बात की। भोजन किया। फिर पान-टप्परी पर पान खाने के लिए गया। लक्ष्मणबुवा को वह सुबह वाला 'बिगड़ा नवाब' नहीं लगा। शांत हो चुका था। इस कारण लक्ष्मणबुवा मन ही मन खुश हो गया।

अब बेटा लाइन से लग जाएगा... उसे प्रवीण सेठ की दुकान भा गयी। अब शादी होने के उपरान्त तो और भी लाइन पर आ जाएगा। अब उसे कुछ भी नहीं बोलना... टोका-टोकी नहीं करना। कमाऊ पूत की दो बातें सुन लेना...!

आठ दिन बीत गये। मुरल्या की कोई शिकायत न थी।

समय पर जाग जाता। समय पर दुकान पर चला जाता। उसके इस प्रकार के व्यवहार से लक्ष्मणबुवा बड़ा सुकून महसूस कर रहा था। अपना बेटा अब लाइन पर आ गया, यह बढ़ा-चढ़ाकर वह पूरे गाँव को बतला रहा था।

कुछ दिन बीत गये। शाम का समय था। लक्ष्मणबुवा भैंस का चारा-पानी कर रहा था। उसी समय लक्ष्मण सेठ की मोटरसाइकिल फट्-फट् आवाज करते हुए आंगन में आकर खड़ी हो गयी। प्रवीण सेठ के साथ-साथ दो और व्यक्ति मोटरसाइकिल से उतरे।

"आइए... आइए मालक... आइए!" लक्ष्मणबुवा ने बड़ी अदब से आगे बढ़ते हुए कहा। पर प्रवीण सेठ काफी क्रोध में दिखायी पड़ रहा था। चेहरा गाजर के समान लाल भड़क हो गया था और बेताल होकर गुस्से में फुत्कार रहा था।

"मुरल्या कहाँ है?" उसने क्रोध से पूछा।

"मुरल्या? मुरल्या तो कुछ घर नहीं आया! मुझे लगा, वह दुकान में ही है। और आप क्यों इतने गुस्से में हैं, भला?... क्या बात है?" कहते हुए लक्ष्मणबुवा थरथराया।

प्रवीण सेठ अपने मित्र की ओर देखते हुए बोला,

"तो मुरल्या घर नहीं आया। मतलब कहना चाहिए, वह फरार हो गया।... पर जाएगा कहां? चलो, अब पुलिस-स्टेशन में रपट लिखाते हैं।... पुलिस तो पाताल से भी खोजकर निकालेगी स्साले को...।"

"जी..., पर मामला क्या है? क्या हुआ है? पुलिस का नाम क्योंकर लिया जा रहा है?" कहते हुए लक्ष्मणबुवा ऐसा कांपने लगा जैसे आँधी की चपेट में आया वृक्ष!

"तुम्हारे बेटे ने चोरी की है। प्रवीण सेठ की दुकान में।" प्रवीण सेठ का एक कोंडूबा नामक पहलवान दोस्त ऐंठ कर से बोला।

"क्या कहा, चोरी!" हवा निकले बलून के समान लक्ष्मणबुवा एकदम पंक्चर हो गया।

"हाँ, चोरी! डेढ़ हजार रुपयों की। पेशाब के लिए मैं जरा-सा दुकान से बाहर गया था। सोचा, अपना ही आदमी है। क्या करेगा! पर, उसने डेढ़ हजार रुपयों का बंडल उड़ा लिया। और भाग गया। मैंने होलसेल बेपारी को देने के लिए बंडल गिनकर रखा था। तो उस पर उसने हाथ मार दिया और भाग गया, पैसे लेकर चतुर बिल्ले की तरह!"

"अरे भाई... ऐसा कैसे किया उसने...?"

"उसकी नीयत ही थी वैसी। उसने उस रोज कैसी बातें की थीं, चोरी करने की... खून करने की... तिजोरी फोड़ने की? मुझे लगा, यूँ ही गप्प मार रहा है। पर, सचमुच कर दिखाया उसने।... पर, जाएगा कहाँ बच्चू... डलवाता ही हूँ उसे बर्फ की सिल्ली पर!"

कहते हुए प्रवीण सेठ मोटरसाइकिल के समीप गया। उसके पहलवान दोस्त आस्तीन ऊपर करके यूँ ही घर में झाँकने के समान करने लगे। लक्ष्मणबुवा को कंपकंपी छूट गयी। खड़े-खड़े उसे लगा, वह इधर से उधर और उधर से इधर फेंका जा रहा है। सिर में गोल-गोल भौंरा घूमने लगा...।

क्या किया जाए, कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने यूँ ही अपने घर की ओर देखा। घर में पत्नी थी ही नहीं। दो दिन के लिए मायके में अपने भाई के घर गयी थी। मुरल्या की शादी के लिए भाई-भौजाई को निमंत्रण देने। और उसकी अनुपस्थिति में मुरल्या ने ये ऐसा झमेला खड़ा कर दिया था। क्या किया जाए! लक्ष्मणबुवा को कुछ सूझ नहीं रहा था।

"चलो भाइयों, अब पुलिस-स्टेशन चलें...।" कहते हुए प्रवीण सेठ ने गाड़ी को किक् मारी।

तभी लक्ष्मणबुवा ने तेजी से भागकर प्रवीण सेठ का हाथ पकड़ लिया। वह उसकी चिरौरी करने लगा।

"आप ऐसा न करोऽऽ... न करो ऐसाऽऽ... ऐसे से मेरी इज्जत चली जाएगी रिश्ते-नाते में। उसे जेल में मत डालो... उसके नाम की रपट न लिखवाओ... आठ दिन बाद उसकी शादी है; उसमें बाधा न डालो... न डालो बाधा... मैं आपके पिता की उम्र का हूँ पर आपके पाँव पड़ता हूँ... हाथ जोड़ता हूँ... ऐसा न करो आप...!"

कहते हुए वह एकदम प्रवीण सेठ के पाँव छूने के लिए झुका। प्रवीण सेठ को यह ठीक न लगा। अपने पिता की आयु का एक सज्जन व्यक्ति अपने पाँव छू रहा है.. उसका कोई अपराध न होते हुए... पुत्र की हरकत के कारण...! प्रवीण सेठ एकदम पीछे खिसक गया। नीचे झुककर उसने लक्ष्मणबुवा के हाथ थाम लिये। एक हाथ से गाड़ी संभालने लगा पर, वह नहीं संभली। फिसलकर एक ओर हो गयी। ऐसा होते समय हैण्डल लक्ष्मणबुवा की खोपड़ी में लग गया। वह विह्वल हो गया।

बेचैन हो गया वह। उसे रोना आने लगा। रोने ही लगा वह। आँखों की नमकीन अश्रुधारा मुँह में जाने लगीं।

गुच्छेदार मूँछ पर आँसू ओस की बूँदों की तरह चमकने लगे।

प्रवीण सेठ ने किसी प्रकार गाड़ी स्टैण्ड पर लगायी और लक्ष्मणबुवा को लेकर वह उसके घर के भीतर आ गया।

"क्या आप बदनामी से बचना चाहते हो?" उसने लक्ष्मणबुवा का कंधा थपथपाते हुए पूछा।

"हाँ, बच्चे की शादी है। आप उसे पुलिस-स्टेशन में देंगे तो उसका रिश्ता गड़बड़ा जाएगा। उसके बाद कौन जोड़ना चाहेगा रिश्ता उसके साथ? शादी न हुई तो वह और बिगड़ जाएगा। उसकी पूरी जिंदगानी की मिट्टी हो जाएगी, भाई। मैं लौटा दूँगा आपके पैसे। पर, आप उसे माफ कर दो।"

कहते हुए लक्ष्मणबुवा पूरी तरह शरण में आ गया। प्रवीण सेठ उसका कंधा थपथपाता रहा। मन ही मन विचार करता रहा। तो उसकी नजर एकदम द्वार पर बँधी भैंस पर पड़ गयी। कुछ समय व्यतीत होने के बाद प्रवीण सेठ बोला, "इस झंझट से निजात पाना है तो एक ही इलाज है, लक्ष्मण चाचा।"

"बोलो... बोलो, आप जो कहोगे, मुझे मंजूर है।"

"मुरल्या मेरी दुकान से चुरा कर ले गया है, डेढ़ हजार।... पर, मैं रपट लिखाऊँगा... पुलिस आएंगी। कोर्ट-कचहरी होगी... आपको बहुत खर्च आएगा। इस प्रकार आपके आठ-दस हजार तो सहज ही खर्च हो जाएँगे। ज्यादा... पर, कम नहीं...!"

"हाँ, हो ही जाएँगे...।" लक्ष्मणबुवा भोले पन से सिर हिलाते हुए बोला।

"हो जाएंगे कि नहीं...?"

"हाँ... हाँ... हो जाएँगे...!

"तो इस सारे चक्कर से बचने के लिए आप अपनी दूध देने वाली भैंस मुझे दे दो...।"

"क्या बोले... भैंस!" लक्ष्मणबुवा जोर से ऐसे चीखा जैसे उसकी पीठ में लात जमा दी गयी हो! हैरत में पड़ गया, वह!

"हाँ भैंस! और वह भी दूध देने वाली... वो बिना दूध देने वाली नहीं ले जाऊँगा मैं... भैंस मिल गयी कि फिर मैं कहीं, कोई कम्प्लेंट नहीं करूँगा।... पुलिस-स्टेशन में नहीं जाऊँगा उस कारण आप बदनामी से बच जाएँगे... आप और आपका बच्चा सही सलामत रह पाएँगे...।"

उसकी बातें सुनीं और लक्ष्मणबुवा की खोपड़ी जैसे सुन्न हो गयी। अपनी गर्दन पर सिर है ही नहीं बल्कि किसी ने पत्थर उठाकर रख दिया है, ऐसा लगने लगा उसे और वह सामने के काष्ठ के खंभ पर दनादन सिर पटकने लगा...।

पता- डॉ0 सदानंद देशमुख
मु.पो.जानेफळ-443304
ता. मेहकर, जिला-बुलडाणा (महाराष्ट्र)
मो0-9420564982

पता- भगवान वैद्य 'प्रखर'
30 गुरूछाया कॉलोनी, साईंनगर,
अमरावती-444607 (महाराष्ट्र)
मो0-9422856767/8971063051

लोक जीवन में गोदना

डॉ0 मन्नू राय

किसी भी समाज की वास्तविक पहचान उसकी लोक संस्कृति से होती है। वह लोक संस्कृति, जिसमें रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, संगीत, कला और साहित्य के माध्यम से उसकी गौरवमयी परम्परा सामने आती है। जहाँ तक लोक जीवन में गोदना का वैविध्य व वैशिष्ट्य का संदर्भ है तो लोक-संस्कृति में लगभग सभी जातियों में गोदना प्रथा आदिकाल से प्रचालित है, यह प्रथा धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों से जुड़ी हुई है।

लोक संस्कृति में 'गोदना' का वैविध्य व वैशिष्ट्य निरूपित करने के क्रम में यह आवश्यक हो जाता है कि प्रथमतः हम यह जान लें कि लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय क्या है? भारतीय एवं पाश्चात्य सभी मतों का समाहार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और प्राकृतिक जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उसे उत्पन्न करते हैं।'

ऐसे में कहा जा सकता है कि लोक संस्कृति के अर्न्तगत पूरे मानव समाज के क्रियाकलापों, आचार-विचारों, तौर-तरीकों एवं मेधागत क्रियाओं का अध्ययन न होकर कुछ विशेष समुदाय के लोगों के ही विश्वास, परम्पराओं, मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों का अध्ययन किया जाता हैं । प्रस्तुत आलोच्य समुदाय एक ऐसा समुदाय होता है जो सभ्यता के युग में साँस लेते हुए उसकी छाया से दूर रहता है, आधुनिक समाज में रहकर भी आधुनिकता से अछूता रहता है एवं वैज्ञानिक युग में रहकर भी विज्ञान परक दृष्टि से प्रायः वंचित रहता है।

गोदना ऐसे ही जनों की संस्कृति की एक महत्वपूर्ण एवं मंगलकारी रस्म है। इसका कोशगत अर्थ है - (क्रि0) 1- चुभाना, गड़ाना, 2- ताना मारना, अंकुश देना, 3- बदन में सुई चुभोकर और सूराख में नील आदि का पानी भरकर सुन्दरता के लिए बिंदी, फूल आदि बनाना। गोदना शब्द का शाब्दिक अर्थ चुभाना होता है। शरीर में सुई चुभाकर उसमें काले या नीले रंग का लेप लगाकर गोदना कलाकृति बनाई जाती है। प्राचीन संस्कृति के विद्वानों का मानना है कि गोदना की प्रथा अत्यन्त प्राचीन हैं। भारत के सम्पूर्ण आदिवासी और ग्रामीण क्षेत्र में गोदना शारीरिक अलंकरण के रूप में विद्यमान है। व्यावहारिक धरातल पर आजकल गोदना का स्वरूप टैटू ने ले लिया है। यद्यपि टैटू यानी गोदना करवाने की विधि आज फैशन के तौर पर युवा पीढ़ी उसका उपयोग कर रहा है। "भारतीय लोक संस्कृति में

तिल और गोदना, यह दोनों ही सौन्दर्य के प्रमुख उपादान माने गए हैं, इनसे सुन्दरता में पर्याप्त अभिवृद्धि होती है तथा यही खूबसूरती के सागर में ऐसा अनोखा तुफान लाते हैं, जिससे सौन्दर्य प्रेमियों के सरस मानस में कभी आसानी से बेचैनी उत्पन्न हो जाती है तो कभी सलोनी रमणियता से इठलाने लगती है।" एक ऐसी अंलकरण प्रणाली का नाम गोदना है, जिसका सम्बंध सीधे लोक संस्कृति से जुड़ता है। जहाँ त्वचा चित्रांकन का नाम गोदना है। चुभाना या गोदना, किसी कार्य के लिए बार-बार जोर देना चुभती या लगती हुई बात कहना, ताना मारना, नील या कोयला के पानी में सुई को डुबोकर शरीर को विविध प्रकार से चिन्हित करना और गोदना से बनी आकृति ना केवल भारत में अपितु संसार के विभिन्न मानव कुटुंब में प्राचीन काल से लेकर आज तक निरन्तर प्रतिपादित होता आ रहा है। शिक्षित, अशिक्षित ग्रामीण शहरी समस्त परिजनों के शरीर को गोदना अलंकृत करता आ रहा है।"

गोदना का चलन प्रथमतः कब और कहाँ हुआ, इसका कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है लेकिन अनुमान से कहा जा सकता है कि पंवरिया, भाट, पनेरी आदि की भाँति 'गोदनहारी' लोग एक पारम्पारिक पेशे से जुड़े लोग होंगे, जो 'गोदना' के व्यवसाय द्वारा ही अपनी जीविका चला रहे होगें ।

प्राचीन काल में प्रायः सभी पेशा जाति विशेष से संबंधित थे, पर उस धंधा में संलग्न लोगों की जाति विशेष की पहचान शायद अभी तक नहीं हुई है। भोजपुरी क्षेत्रों में नट जाति की स्त्रियों को अधिकतर गोदना का व्यवसाय करते देखा जा सकता है। वैसे तो गोदने गए थें यह बताना कठिन है कि इसकी शुरूआत कब और कैसे हुई होगी? मालूम पड़ता है कि इस प्रथा की शुरूआत अपने कुनबे की पहचान के लिए हुई होगी। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में लगभग सभी जातीयों में गोदना प्रथा का प्रचलन है। आपके हाथों में नाम या कोई धार्मिक शब्द अथवा चिह्न अंकित कराना, उस प्रथा को बल देता हैं। अध्येताओं के अनुसार ईसा से 1300 वर्ष पहले मिश्र एवं साइबेरिया में गोदना की प्रथा प्रचलित थी। 54 वर्ष ईसा पूर्व रोगन सम्राट जुलियस सीजर ने जब-जब ब्रिटेन पर आक्रमण किया था, तब उसने लिखा था कि ब्रिटेनवासी गोदना गोदवाते है।" उस दरम्यान तो अनेक विश्वविख्यात लोंगो ने अपने शरीरों पर गोदना गोदवाए थे। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जॉन कैनेडी ने भी अपने शरीर को गोदना से सजाया था। डेनमार्क के राजा ने अपने शरीर पर 500 चिह्न गोदवाये थे, इस तरह के सैकड़ों उदाहरण है।

भारत में गोदना सिन्धु घाटी सभ्यता के बाद आर्य लोगों के आगमन के बाद माना जाता है। इसके पीछे किंदन्तीय प्रचलित है कि जब आर्य लोग भारत में आक्रमण किये, यहाँ के मूल निवासियों पर अत्याचार के साथ इनकी महिलाओं के साथ में दुराचार भी करते थे और सुन्दर महिलाओं को अपनी पटरानी बनाने के लिए साथ ले जाते थे। इससे परेशान होकर यहाँ के मूलनिवासी अपने स्त्रियों को कुरूप दिखाने के लिए उनके शरीर में गोदना गोदवाना शुरू कर दिये, जो धीरे-धीरे सभी वर्गो और जाति के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक पक्ष में जुड़ गया।

गोदना सौन्दर्यवृद्धि का एक विशिष्ट साधन माना गया हैं। इसके साथ कई पुरातन आज भी संबंध रखते हैं। लोगों की ऐसी मान्यता है कि गोदना का प्रचलन आदिवासी जातियों में ही है पर ऐसी बात नहीं है। विदेशों में भी इस अलंकरण से लोकजीवन के निर्धारण में जुड़ी हुई है। इसे ऐसा अंलकरण माना जाता है जो शरीर के साथ ही जाता है। सोना, चाँदी, पीतल, तांबा तथा अन्य रत्न-आभूषण मनुष्य के साथ नहीं जाते हैं बल्कि यही गोदना इनके साथ जाता है। फिर गोदना को ना कोइ चुरा सकता है, ना कोई ले सकता है। इसे ना कोई उतार सकता है और ना अपना हिस्सा माँग सकता है। इतने सस्ते में स्थायी आभूषण गोदना के अतिरिक्त संसार में और कोई दूसरा अंलकरण हो ही नहीं सकता। लोक मान्यता के अनुसार टोने-टोटके

और भूत-प्रेत आदि से बचाव के लिए गोदना को जनजातीय समाज में रक्षाकवच की तरह अनिवार्य माना जाता हैं। लोक मान्यता के अनुसार गोदना नहीं गोदवाने पर मरने के बाद यमदूत ऊपर में सब्बल के साथ गोदते हैं। जनजातियों में यह कथा प्रचलित है कि गोदना जिन्दगी में अच्छा साथी दिला कर धरती पर स्वर्ग लाते हैं और मरने पर यमराज की आत्मा से बचाते है।

गोदना में मुख्यतः बाँस, पिहारी, वन अदरक, तेलियाकंद, वन प्याज, सिंघाड़ा, काली हल्दी, टिखूर, बैचाँदी आदि प्रमुख रूप से प्रयोग किया जाता है। इन्हीं जड़ी-बूटियों के सहारे महिला-पुरुष अपने शरीर की सुन्दरता के लिए गोदना गुदवाते हैं। गोदना गुदवाने के लिए वीजा वृक्ष के रस, राम टिल्ग के कागज में 10-12 के समूह को डूबोकर शरीर की चमड़ी में चुभोकर की जाती है। खून बहने पर रमटिला का तेल लगाते हैं। ऐसी धारणा है कि गोदना गुदवाने से गठिया, बातया, चर्म रोग नहीं होते हैं। गोदने की सुई को सबसे पहले गर्म पानी से धोया जाता है और उसे कीटाणु रहित किया जाता है। कहीं-कहीं कीटाणु रहित करने के लिए गोबर का भी उपयोग किया जाता है, उसके पश्चात् सैमीरंग और कोयले के रंग का भी उपयोग किया जाता है। सुई भी रखती है, जिससे शरीर में छेद करती हैं, उसके बाद उसमें रंग लगा देती हैं। गोदने में दर्द भी होता हैं पर बाद में ठीक हो जाता है । गोदना की प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती चली आ रही है।

दरअसल जिस उपकरण से बनाया जाता है, उसे सुई अथवा सुआ कहा जाता है। तीन या चार सुई को विशेष ढंग से सरसों के तेल में चिकना किया जाता हैं, जिसे चिमटी कहा जाता हैं। काजल बनाने की विधि को काजल बिठाना कहते है। काजल बनने के बाद उसे पानी में घोल दिया जाता है फिर गोदना बनाने की शुरूआत की जाती है। स्त्रियाँ दोनों पाँव में अँगूठे से लेकर छोटी अँगुली तक तीन स्थानों में तीन-तीन दिन में गोदन बनवाने जाती हैं। एड़ी के ऊपर चारों ओर तीन-तीन दिन में लगाये जाते हैं। दोनों हाथों में हथेली के पीछे तीन बिन्दू वाले निशान व अँगूठे के नीचे बिच्छू का निशान बनवाया जाता है। कलाई के चारों ओर और कोहनी के नीचे बाजू में थोड़ी दूरी पर त्रिभुज आकार में निशान लगाये जाते हैं। बाजू के ऊपर एक आकृति बनाई जाती है।

गोदना रूपी गहना शरीर में हमेशा साथ रहता है। इसी लिए इसे श्रृंगारी गहना या स्वर्ण अंलकरण भी कहते हैं। एक समय था जब गोदना प्रथा का प्रचलन अधिक था। अब धीरे-धीरे यह प्रथा दम तोड़ती जा रही है। नए पीढ़ी के लोग इस प्रथा को स्वीकार नहीं करते हैं। कई लोंगों से चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि इस प्रथा को हमारे पूर्वज अधिक मानते थे। गोदना के बारे में चाहे जैसी भी धारणा हो लेकिन एक बात है कि आदिवासी भले ही रूढ़ीवादी हैं, चाहे जाने-अनजाने में अपनी पुरानी संस्कृति और परम्परा को आज भी बचाए हुए है। लुप्त होती गोदना प्रथा को जीवित रखने से ही जनजाति संस्कृति को भी संरक्षित किया जा सकता है। इस डूबती हुई गोदना प्रथा को जीवित रखने से ही लोक संस्कृति का संवर्धन हो सकता है।

निष्कर्षतः गोदना के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि गोदना एक अमर श्रृंगारी गहना, यादगार प्रतीक चिह, रोगों से मुक्ति और दर्द निवारक का सार्थक उपाय है। गोदना को जीवित रखने से ही हमारी पुरानी संस्कृति बची रहेगी ।

पता- सहायक शिक्षक
राजकीय उत्क्रमित मध्य-विद्यालय, पिठौरी
पो0- अधैला, जिला-सिवान (बिहार)
पिन कोड-841436
मो0- 8292229480

लोकमाता अहिल्याबाई होलकर

➲ डॉ. राकेश चन्द्र गुप्त 'विक्रमी'

मानव-सभ्यता के आदिकाल से नारी का कार्यक्षेत्र घर माना गया है। वही संतान की जननी, पालन करने वाली और संरक्षिका है। पुरूष को वह जैसा बनाती है, वह प्रायः वैसा ही बन जाता है। इस दृष्टि से यदि उसे मानव जाति की निर्माणकर्ती कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वैसे प्रकृति ने नारी को सब प्रकार की शक्तियाँ और प्रतिभाएँ पूर्ण मात्रा में प्रदान की है, पर गृह-संचालन की जिम्मेदारी के कारण उसमें मातृत्व और पत्नीत्व के गुणों का ही विकास सर्वाधिक होता है। उसको अपने इस क्षेत्र से बाहर निकलने की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है, पर जब आवश्यकता पड़ती है तो वह अन्य क्षेत्रों में भी ऐसे महानता के कार्य कर दिखाती है कि दुनिया चकित रह जाती है।

यद्यपि वर्तमान समय में परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाने के कारण स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के पेशों में प्रवेश कर रही हैं और शिक्षा, व्यवसाय, कला, उद्योग-धंधे, सार्वजनिक सेवा आदि अनेक क्षेत्रों में पर्याप्त संख्या में स्त्रियाँ दिखाई पड़ने लगी हैं। यद्यपि हमारे देश में अभी यह प्रकृति आरम्भिक दशा में है, पर विदेशों में तो करोड़ों स्त्रियाँ सब प्रकार के जीवन-निर्वाह के पेशों में भाग ले रही हैं। यदि यह कहा जाए कि इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशों की तीन चौथाई से अधिक स्त्रियाँ गृह-व्यवस्था के अतिरिक्त अर्थोपार्जन और समाज-संचालन के अन्य कार्यों में भी संलग्न हैं, तो इसे गलत नहीं कहा जा सकता।

पर एक क्षेत्र ऐसा अवश्य है, जिसमें हमारे देश तथा अन्य देशों की स्त्रियों ने बहुत कम भाग लिया है, वह है, सेना और युद्ध का विभाग। हमारे देश में बहुत समय से नारी को कभी इस कार्य के लिए उपयुक्त माना ही नहीं गया। लोगों का मानना है कि अधिकांश में घर के भीतर रहने से स्त्रियों में वह गुण उत्पन्न ही नहीं हो पाता, जो सैनिक कार्यों के लिए आवश्यक है।

पर फिर भी कोई यह नहीं कह सकता है कि स्त्रियाँ इस क्षेत्र में कुछ कर ही नहीं सकती। यद्यपि सामाजिक परिस्थितियाँ तथा नियमों के कारण ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं, पर समय-समय पर ऐसी वीरांगनायें उत्पन्न हुई है, जिन्होंने वीरता तथा युद्ध संबंधी कार्यों में पुरूषों से अधिक साहस और योग्यता दिखलाई है। ऐसी एक वीरांगना अहिल्याबाई होल्कर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अहिल्याबाई होल्कर 18वीं शताब्दी की एक प्रेरणादायक महिला थीं जिनका पूरा जीवन आज के युवाओं का प्रेरणा स्रोत है।

अहिल्याबाई होल्कर का जन्म वर्ष 31 मई, 1725 को महाराष्ट्र राज्य के चौड़ी नामक गाँव में हुआ था। वह एक सामान्य से किसान की पुत्री थी। उनके पिता मान्कोजी

शिन्दे सादगी के साथ अपना जीवन व्यतीत करते थे। अहिल्याबाई बचपन से ही सीधी-साधी और सरल ग्रामीण कन्या थी। अहिल्याबाई होल्कर का भगवान में पूर्ण विश्वास था और व प्रतिदिन शिवजी के मंदिर में पूजन आदि करने जाती थी। इतिहासकार ई. मार्सडेन लिखता है कि साधारण शिक्षित अहिल्याबाई 10 वर्ष की अल्पायु में ही मालवा में होल्कर वंशीय राज्य के संस्थापक मल्हारराव होल्कर के पुत्र खण्डेराव के साथ परिणयसूत्र में बँध गई थी। अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा से उन्होंने सास-श्वसुर, पति व अन्य संबंधियों के हृदयों को जीत लिया। समयोपरान्त एक पुत्र व एक पुत्री की माँ बनीं। अभी यौवनावस्था की दहलीज पर ही थी कि उनकी 29 वर्ष की आयु में पति का देहान्त हो गया। मल्हार राव के लिए पुत्र की मृत्यु की वेदना असहनीय थी, वहीं अहिल्याबाई ने सती होने का प्रण लिया कि प्राणों से प्रिय पति अगर जीवित नहीं है तो मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है। श्वसुर मल्हार राव के समझाने के बाद अहिल्याबाई ने सती होने का विचार त्यागा और जी-जान से प्रजा की सेवा करने का दायित्व निभाया। राजसी सुखों का त्यागकर दुखी, पीड़ितजन की सेवा को ही उन्होंने अपने जीवन का परम लक्ष्य बना लिया।

कुशल शिक्षक श्वसुर मल्हार राव के संरक्षण व मार्गनिर्देशन मे शिष्या, पुत्रवधू अहिल्याबाई अब राजकाज में कुशल हो रही थी। मल्हार राव अपने जीते जी पुत्रवधू को देश-दुनिया की भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति से परिचित कराना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने उसे देशाटन के लिए भी भेजा। अब वे स्वयं लगान वसूलती, न्याय करती, आदेश निकालती और जनता के दुख-दर्द को दूर करने का हर संभव प्रयास करती। मल्हार राव कुशल शासक थे। कई बार युद्धों में व्यस्त होने के कारण राज्य से जब वे बाहर रहते तो पत्रों के माध्यम से अहिल्याबाई का मार्गदर्शन भी करते थे।

सन् 1766 ई. में वीरवर श्वसुर मल्हार राव भी चल बसे। कालांतर में देखते ही देखते पुत्र मालेराव, दोहित्र नत्थू, दामाद फणसे, पुत्री मुक्ता भी माँ को अकेला ही छोड़ चल बसे। परिणामतः वह अपने जीवन से हताश हो गई। ये सभी आघातों को सहन करना किसी लौह महिला के लिए भी सहनीय नहीं होगा। जीवन का आनंद जाता रहा। फल-फूल से लदे वृक्ष पर माना पतझड़ ने बसेरा बना लिया था। तब भी अपनी प्रजा के हित व संरक्षण के लिए रानी उठ खड़ी हुई। अपने साम्राज्य के संरक्षण के लिए जो कुछ भी संभव था वह उन्होंने किया।

अहिल्याबाई होल्कर ने 1757 में होल्कर राज्य की बागडोर संभाली। श्वसुर मल्हार राव से मिले संस्कारों व मार्गदर्शन का यह प्रभाव रहा कि रानी अहिल्याबाई में एक कुशल शासक के सभी गुण विद्यमान थे। प्रजा के हित में उठाए कदमों ने उन्हें लोकमाता की उपाधि दी। प्रजा की भलाई, सुरक्षा, सुख सुविधा जुटाना, बाहरी आक्रमण, विद्रोहियों और डाकुओं से राज्य की रक्षा करने के हर संभव प्रयास रानी ने किए। एक ओर जहाँ राज्य को चोर डाकुओं से सुरक्षित रखा, वहीं दूसरी ओर राज्य के शत्रुओं से भी।

अहिल्याबाई ने महिलाओं की सेना भी तैयार कर उन्हें हथियार चलाना, रणव्यूह का प्रशिक्षण देना भी प्रारम्भ किया। रानी ने अपने शत्रु दादा राघोबा को एक पत्र लिखा, "आप मेरा राज्य हड़पने आए हैं। यह आपको शोभा नहीं देता। आप एक नारी के साथ युद्ध मत कीजिए नहीं तो यह कलंक मिट नहीं पाएगा। मैं एक असहाय नारी हूँ यह समझकर आप आए हैं, तो इस बात का पता युद्ध भूमि में चलेगा। मैं एक स्त्री हूँ। मैं अपनी महिला सेना के साथ युद्ध भूमि में आपका मुकाबला करूँगी। आपका भला इसी में है जैसे आए हैं वैसे ही चुपचाप वापस चले जाएँ।" दादा

राघोबा ने जब यह पत्र पढ़ा तो उनके हौसले पस्त हो गए और इस तरह रानी ने बिना खून-खराबे के युद्ध जीता।

जन-कल्याण के क्षेत्र में भी रानी अहिल्याबाई ने अनेक कार्य किए। वह अपनी प्रजा को अपनी संतान मानती थी। उन्होंने अपने शासनकाल में कई कानूनों को समाप्त किया, किसानों का लगान कम किया, कृषि, उद्योग-धंधों को सुविधा देकर विकास के अनेक काम किए। चोर, डाकुओं को सही रास्ते पर लाकर उनके जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला उन्हें बसाया भी।

रानी राहगीरों, गरीबों, विकलांगों, साधु-संतों, पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं सभी का ध्यान रखती थी, यहाँ तक कि अपने सैनिकों, कर्मचारियों के कल्याण के लिए भी वह कभी पीछे नहीं हटीं। उन्होंने बद्रीनाथ, केदारनाथ, रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी, द्वारका, पैठण, महेश्वर, वृंदावन, उज्जैन, पुष्कर, पंढरपुर, चिखलदा, आलमपुर, देव प्रयाग, राजापुर आदि स्थानों पर मंदिरों का पुनर्निर्माण करवाया तथा घाट बनवाए। काशी विश्वनाथ मंदिर के साथ-साथ पूरे देश के मंदिरों का निर्माण व पुनर्निर्माण का कार्य रानी ने करवाया। त्रयंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग में तीर्थ यात्रा के लिए विश्रामगृह, अयोध्या, नासिक में भगवान राम के मंदिरों का निर्माण, सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण, उज्जैन में चिन्तामणि गणपति मंदिर निर्माण जैसे कार्य रानी ने दिल खोलकर किए। प्रसिद्ध इतिहासकार चिंतामणि विनायक वैद्य ने लिखा है "उनकी धार्मिकता इतनी उदार थी कि धर्म व नीति के हर क्षेत्र में उन्होंने अपना नाम अजर-अमर कर दिया। उनका दान-धर्म इतना महान था कि वैसा दान-धर्म आज तक हिंदुस्तान में किसी ने भी नहीं किया है।"

देवी अहिल्याबाई का सादगीपूर्ण जीवन, नीतियुक्त शासन और कुशल राजनीति का विश्व के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। सफल दायित्वपूर्ण राज संचालन करती हुई 70 वर्षीया रानी 13 अगस्त, 1795 को नर्मदा तट पर स्थित महेश्वर के किले में सदैव के लिए चिर निद्रा में सो गयी। धर्माचरण, शासन प्रबंध, विद्वानों का सम्मान व न्याय, दानशीलता, उदार धर्मनीति, भक्ति भावना, वीरता, त्याग व बलिदान, साहस, शौर्य से परिपूर्ण रानी अहिल्याबाई युगों-युगों तक अमर रहेंगी।

पता- सी-122/61, मुफ्तीपुर,
निकट शिव मंदिर, पीपल का पेड़,
गोरखपुर-273001
मो0- 9415690761

मूर्ति में जिनकी इष्ट-भावना भावना होती है वे ही विश्वासपूर्वक उसकी पूजा करते हैं इस सत्य को हृदय में उतारने के लिए विश्वास चाहिए।

- स्वामी विवेकानंद

संस्थान समाचार

हिन्दी दिवस समारोह दिनांक 14 सितम्बर, 2024

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा हिन्दी दिवस समारोह के शुभ अवसर पर शनिवार 14 सितम्बर, 2024 को एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी भवन के निराला सभागार लखनऊ में पूर्वाह्न 10.30 बजे से किया गया।

दीप प्रज्वलन, माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण, पुष्पार्पण के उपरान्त वाणी वंदना श्री सर्वजीत सिंह द्वारा प्रस्तुत की गयी।

सम्माननीय अतिथि- डॉ0 रामकठिन सिंह, डॉ0

श्रुति, डॉ0 रमेश प्रताप सिंह का स्वागत स्मृति चिह्न भेंट कर श्री आर0पी0 सिंह, निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा किया गया।

डॉ0 रमेश प्रताप सिंह ने कहा- हिन्दी भाषा में विस्तार की सम्भावनाएँ है। हिन्दी सभी भाषाओं की समुच्य है। भाषा अभिव्यक्ति का साधन होती है। आज की हिन्दी राजभाषा तक सीमित नहीं है। हिन्दी भाषा से सरल कोई भाषा नहीं हैं। हिन्दी पहले भी समृद्ध थी और आज की हिन्दी में विरासत के तत्व विद्यमान हैं।

हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी उसमें हिन्दी ही नहीं बल्कि दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी है, हिन्दी हमारी भावना, संवेदना और संस्कृति है। क्षेत्रीय, प्रान्तीय भाषा कन्नड़, नेपाली हिन्दी को विकसित होने में बाधा डालती है। केशवचन्द्र शेन ने हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर एक पहचान बनाने में बड़ी भूमिका निभायी थी। हिन्दी भाषा कभी-भी कमजोर स्थिति में नहीं रही। देश की स्वतंत्रता में हिन्दी साहित्यकारों का काफी योगदान रहा। साहित्यकारों की कालजयी ताकत भी रही जिससे देश स्वतंत्र हो गया।

डॉ0 श्रुति ने कहा - आज हिन्दी भाषा के सम्मुख कई चुनौतियाँ हैं। हिन्दी में बोलने की अभूतपूर्व क्षमता है। भारत बहुभाषी-विविध संस्कृतियों का देश है। भाषायी संस्कृति को एक सूत्र में बांधने की क्षमता हिन्दी को ही है। हिन्दी केवल एक भाषा ही नहीं भारत की संस्कृति हैं हिन्दी भारत माता के माथे की बिन्दी है। महात्मा गांधी जी ने एकभाषिता पर काफी बल दिया। हिन्दी में अन्य भाषाओं को समाहित करने की क्षमता है। हिन्दी का शब्द भण्डार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हिन्दी में संप्रेषणीयता की अद्‌भुत क्षमता है। संचार माध्यम व फिल्मों ने भी हिन्दी को

बढ़ावा दिया। अलग-अलग भाषाओं के शब्दों को हिन्दी अपने में समाहित करती चली जा रही है। हिन्दी को आगे बढ़ाने में आत्मविश्वास की आवश्यकता है। हमारी हिन्दी की भावना देशवासियों में प्रचार-प्रसार करने की आज आवश्यकता है।

डॉ0 रामकठिन सिंह ने कहा - हिन्दी को बढ़ावा देने में विज्ञान परिषद ने 1914 से निरन्तर प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'विज्ञान' ने अहम भूमिका निभायी। अहिन्दी लेखकों में गुणाकरमुले का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वर्तमान में नई शिक्षा नीति भी हिन्दी को अग्रसर करने में प्रयासरत है। हमें अपनी मातृ भाषा में लिखने, बोलने, पढ़ने, सीखने में गर्व का अनुभव होना चाहिए। उन्होंने कहा कि हमें अनुवाद के स्थान पर मूल लेखन पर बल देना चाहिए।

हिन्दी एक सक्षम भाषा है, जिसमें विज्ञान लेखन की पर्याप्त क्षमता है। उन्होंने विज्ञान विषय पर केन्द्रित अपनी कविता का पाठ किया।

डॉ0 अमिता दुबे, प्रधान सम्पादक, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान द्वारा कार्यक्रम का संचालन एवं संगोष्ठी में उपस्थित समस्त साहित्यकारों, विद्वत्तजनों एवं मीडिया कर्मियों का आभार व्यक्त किया।

कथाकार गौरापंत शिवानी एवं कवि अदम गोंडवी स्मृति समारोह दिनांक 23 अक्टूबर, 2024

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा कथाकार गौरापंत शिवानी एवं कवि अदम गोंडवी स्मृति समारोह के शुभ अवसर पर दिन बुधवार 23 अक्टूबर, 2024 को एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी भवन के निराला सभागार लखनऊ में पूर्वाह्न 11.00 बजे से किया गया।

दीप प्रज्वलन, माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण, पुष्पार्पण के उपरान्त वाणी वंदना डॉ0 कामिनी त्रिपाठी द्वारा प्रस्तुत की गयी।

सम्माननीय अतिथि- डॉ0 प्रकाश चन्द्र गिरि, डॉ0 शिवानी पाण्डेय का स्वागत स्मृति चिह्न भेंट कर श्री आर0पी0 सिंह, निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा किया गया।

डॉ0 शिवानी पाण्डेय ने कहा- रचनाकार का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। रचनाकार शिवानी का घर किसी साहित्यिक केन्द्र से कम नहीं था। शिवानी को बाल्यकाल में पढ़ने का वातावरण उन्हें परिवार से ही मिला, जिसमें उनके माता-पिता का बड़ा योगदान रहा। उनका परिवार समाज सेवा की भावना से ओत-प्रोत रहा है। शिवानी ने बचपन में ही संस्कृत भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। शिवानी को बंग्ला भाषा व संगीत का काफी अच्छा ज्ञान था। शिवानी को रवीन्द्रनाथ टैगोर का काफी सानिध्य प्राप्त हुआ। शिवानी की रचना 'कृष्णकली' में नृत्यकला के ज्ञान का रुपायन मिलता है। शिवानी ने विभिन्न धर्मों को आत्मसात किया। शिवानी के साहित्य में समन्वयवाद व संवेदनशीलता के तत्व भी उपलब्ध हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शांति निकेतन में शिवानी को हिन्दी भाषा का प्रारम्भिक मार्गदर्शन किया। शिवानी के

व्यक्तित्व पर बंकिमचन्द्र चटर्जी, अमृतलाल नागर व धर्मवीर भारती का काफी प्रभाव पड़ा।

डॉ0 प्रकाश चन्द्र गिरि ने कहा- अदम गोंडवी जी का जन्म एक मध्यमवर्गीय किसान परिवार में हुआ था। अदम गोंडवी ने कम लेखन करके भी कालजयी रचनाकार बन गये। उनकी रचना 'समय से मुठभेड़' काफी चर्चित है। उनकी रचनाओं में संप्रेषणीयता के तत्व विद्यमान हैं। वे एक सिद्धहस्त रचनाकार थे। वे छन्दबद्ध शैली में रचना करते थे। अदम गोंडवी पर आज देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध कार्य हो रहे हैं तथा पढ़ाये भी जा रहे हैं। गोंडवी जी की नज्मों में सामाजिक व्यवस्था व परिवेश के प्रति विद्रोह की झलक दिखायी पड़ती है। अदम गोंडवी की रचनाओं में उर्दू व फारसी के शब्द बहुतायत से मिलते हैं। वे काफी अध्ययनशील प्रवृत्ति के थे। अदम ने अपनी गज़लों में भूख और भुखमरी जैसी ज्वलंत समस्याओं को उजागर किया है। उनकी रचनाएँ सत्ता को झकझोर देने वाली हैं। अदम जी ने समाज की दुर्दशा को देखा व अनुभव किया फिर उस पर अपनी लेखनी चलाई। अदम जी का व्यक्तित्व काफी सरल था। अदम जी बाहर से जितना सरल दिखायी देते थे अन्दर

से विसंगतियों के प्रति अंगार से भरे भी थे।

शोधार्थियों/विद्यार्थियों में श्री जितेन्द्र कुमार, श्री देवेन्द्र सिंह, सुश्री सौम्या मिश्रा, श्री राहुल कुमार द्वारा गौरापन्त शिवानी की कहानियों एवं अदम गोंडवी जी की ग़ज़लों का पाठ किया गया।

डॉ0 अमिता दुबे, प्रधान सम्पादक, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान द्वारा कार्यक्रम का संचालन एवं संगोष्ठी में उपस्थित समस्त साहित्यकारों, विद्वत्तजनों एवं मीडिया कर्मियों का आभार व्यक्त किया गया।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, काशी वाराणसी विरासत फाउंडेशन, चेन्नई के संयुक्त में त्रिदिवसीय आयोजन, 12,13,14 नवम्बर, 2024

'भारत सिर्फ एक राजनीतिक संघ नहीं है। भारत एक भाव है जिसका निर्माण हजारों-हजार वर्षों में यहाँ के तपस्वी ऋषियों ने किया है। इस निर्माण का आधार हमारा साहित्य ही रहा है। ज्ञानी ऋषिकुल के साहित्य ने ही भारत के भाव का सृजन, संवर्धन और पोषण किया है। वर्तमान काल में, खासतौर से आजादी के बाद भारत का भाव धीरे-धीरे कम होता गया और उसका स्थान इंडिया ने ले लिया। वास्तविकता यह है कि हमें भारत के भाव को ही पुनःप्रतिष्ठित करना है। यह कार्य साहित्य और साहित्यकारों के माध्यम से ही संभव है।

ये बातें तमिलनाडु के राज्यपाल महामहिम आर. एन. रवि ने कहीं। वह उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, साहित्य अकादमी दिल्ली, काशी-वाराणसी विरासत फाउंडेशन वाराणसी के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित 'भारतरू साहित्य एवं मीडिया महोत्सव' के उद्घाटन सत्र को बतौर मुख्य अतिथि संबोधित कर रहे थे। चेन्नई में

महात्मा गांधी द्वारा 1918 में स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के ऐतिहासिक सभागार में अपने संबोधन में राज्यपाल आर.एन. रवि ने कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि इस तीन दिवसीय आयोजन के केंद्र में भारत है। आजादी के बाद भारत का भाव धीरे-धीरे कम होता गया और उसकी जगह इंडिया ने ले ली। मैं नहीं मानता की इंडिया, भारत का समानार्थी शब्द है। महाकवि सुब्रमण्यम भारती ने अपनी एक कविता में लिखा कि भारत माता 18 भाषाएँ बोलती हैं लेकिन उनके दिल की धड़कन एक है। उनकी धड़कन साहित्य है। यह दुखद पक्ष है कि हमारा साहित्य जो कभी वसुधैव कुटुंबकम के भाव से परिपूर्ण होकर सृजित होता था, आजादी के बाद बहुत तेजी से स्थानीय होता गया। आज की आवश्यकता यह है कि हम अपने साहित्य में भारत का भाव कितना दिखाते हैं। भारत सिर्फ एक राजनीतिक राज्य मात्र नहीं है। किसी राजनीतिक राज्य के लिए भूगोल, जनसंख्या, शासन और शासन का सार्वभौमिक संचालन ही अनिवार्य है लेकिन भारत इससे कहीं ऊपर है।

एक समय था जब भारत में अनेकानेका राजा-महाराजा हुआ करते थे। सबके अपने-अपने अधिकार क्षेत्र थे किंतु उस समय भी कुछ संस्थान ऐसे थे जो राजाओं के आधिपत्य में नहीं थे। उदाहरण के तौर पर हम काशी को लें। काशी किसी एक की नहीं है। सबकी है। हम रामेश्वरम को लें। रामेश्वरम किसी एक का नहीं है। यह संपूर्ण भारत के लोगों का है। मूलत भारत एक राष्ट्र है। हमें अपने साहित्य में राष्ट्र का बोध भरना है। मैं कुछ उदाहरण और देना चाहता हूँ। आदिशंकराचार्य दक्षिण भारत में हुए। उन्होंने ब्रह्म सूत्र का सृजन किया किंतु उसकी भाषा इतनी क्लिष्ट थी कि वह सामान्य लोग तो दूर बड़े-बड़े विद्वानों की समझ में भी नहीं आ रहा था। तब मिथिला के वाचस्पति ने उसपर टीका लिखी और वह जन-जन की समझ में आया। इसी प्रकार वाल्मीकि ने संस्कृत में रामायण लिखी। उनके बाद सबसे पहले दक्षिण भारत के कंबन ने उसका तमिल में अनुवाद किया। उनके भी कई सौ वर्षों के बाद महान संत गोस्वामी तुलसी दास ने श्रीरामचरितमानस लिखी। तब जाकर राम का विराट स्वरूप जन-जन में स्थापित हुआ। हमें आज भी ऐसे ही साहित्य सृजन की आवश्यकता है। समझने वाली बात यह है कि गोस्वामी तुलसीदास, रामानंद के शिष्य थे और रामानंद, रामानुज के शिष्य थे जो दक्षिण भारत के थे। कृष्ण भक्ति की बात होती है तो मीराबाई की चर्चा होती है लेकिन मीराबाई से पहले दक्षिण भारत में आण्डाल नाम की सन्त योगनी कृष्ण की महान भक्त हुई थीं। उनकी रचनाओं में कृष्णभक्ति का रस कूट-कूट कर भरा हुआ है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आज सभी भाषाओं के बीच आपसी संवाद की जरूरत है ताकि हम भारत के भाव को भली भाँति समझ सकें। यह समय भारत के लिए एक कठिन समय है। एक नये भारत का उदय हो रहा है। ऐसे समय में साहित्यकारों की भूमिका पुनः महत्वपूर्ण हो जाती है। रही बात मीडिया की तो मुझसे पूर्व के वक्ता सोशल मीडिया की आलोचना कर रहे थे। मुझे लगता है इसकी आलोचना करने की जरूरत नहीं है। सोशल मीडिया एक दोधारी तलवार है। इसका अधिक से अधिक सदुपयोग कैसे हो, इसपर सोचने की जरूरत है। आज हिंदी ही नहीं अपितु सभी भारतीय भाषाओं के प्रचार और आपसी संवाद की अत्यंत आवश्यकता है। भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर संवाद से ही भारत का भाव पुनः प्रतिष्ठित होगा। अंत में मैं कहना चाहूँगा कि 1947 में जब भारत अंग्रेजों से मिली आजादी का जश्न मना रहा था तब महात्मा गांधी चिंता में डूबे थे। उनकी चिंता यह थी कि अंग्रेज भौतिक रूप से तो भारत से जा रहे हैं लेकिन उनका प्रभाव भारतीयों के मस्तिष्क में यथावत है। हमें अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त होना होगा तभी हम सच्चे अर्थों में आजाद हो पाएंगे।

दक्षिण-उत्तर के साहित्य सेतु महाकवि सुब्रमण्यम भारती और दक्षिण भारत के महान साहित्यकार-संपादक 'चंदामामा' बालशौरि रेड्डी की स्मृति में आयोजित 'मीडिया महोत्सव' के उद्घाटन सत्र में काशी-वाराणसी विरासत फाउंडेशन के अध्यक्ष राज्यसभा के पूर्व सांसद आर.के. सिन्हा ने कहा कि महाकवि सुब्रमण्यम भारती का कार्यक्षेत्र काशी रहा। काशी में उन्होंने छह वर्ष तक साहित्य साधना की। इस आयोजन के सूत्रधार डॉ. राममोहन पाठक ने काशी में सुब्रमण्यम भारती स्मारक बनाने का जो प्रस्ताव

इस सभा में दिया है, मैं उसे पूर्ण कराने के लिए हरसंभव प्रयास करूँगा। मैं इस संबंध में संस्कृति मंत्रालय से बात करूँगा। आवश्यकता पड़ी तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से भी मुलाकात करूँगा। इस सभा में उपस्थित लोगों को मैं विश्वास दिलाता हूँ कि काशी में सुब्रमण्यम भारती का स्मारक अवश्य बनेगा। तीन दिवसीय आयोजन के उद्घाटन सत्र में साहित्य अकादमी की उपाध्यक्ष डॉ. कुमुद शर्मा, हिंदी प्रचार सभा के जीवी. हिरेमठ, ट्रस्टी सुषमा अग्रवाल, एडवोकेट भरत नागर, लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. आलोक राय, पी. राधिका, डॉ. वुडेपी कृष्णा ने भी विचार व्यक्त किए। इस सत्र का संचालन डॉ. राममोहन पाठक एवं धन्यवाद ज्ञापन एडवोकेट शरद कुमार त्रिपाठी ने किया।

तमिलनाडु के राज्यपाल आर.एन. रवि ने उद्घाटन सत्र में तीन पुस्तकों का विमोचन किया। पहली पुस्तक पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय के एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. किंशुक पाठक की कृति 'मीडिया के नये आयाम', दूसरी पुस्तक दक्षिण भारत की हिंदी लेखिका 80 वर्षीय राजलक्ष्मी कृष्णनन की कृति 'उत्कृष्ट तमिल साहित्य' तथा तीसरी पुस्तक नोएडा के कमलेश भट्ट 'कमल' की कृति 'चयनित कहानियाँ' रही।

तमिलनाडु के राज्यपाल आर.एन. रवि ने हिंदी साहित्य की सेवा करने वाले देश के विभिन्न राज्यों के साहित्यकारों को 'साहित्य सेतु' सम्मान से अलंकृत किया। यह सम्मान पाने वालों में दक्षिण भारत के हिंदी प्रचारक डॉ. एन. राजेंद्र बाबू, हिंदी प्रचारक संघ चेन्नई के जनरल सेक्रेटरी डॉ. जे. अशोक कुमार जैन, दक्षिण भारत के हिंदी प्रचारक तिरु पी. संमुगम, पी. उषारानी, पंजाब विश्वविद्यालय के डॉ. किंशुक पाठक, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के विभागाध्यक्ष प्रो. मंजूनाथ, हिन्दी में 20 से अधिक पुस्तकों की लेखिका वयोवृद्ध राजलक्ष्मी कृष्णनन, मैसूर में पुष्पा हिन्दी विद्यालय की संस्थापक डॉ. पुष्पा एल. ,असम के तेजपुर की लेखिका उषा टिबड़ेवाल, दक्षिण भारत के हिंदी प्रचारक वीएन. ईश्वरा, आदिवासी साहित्य के सृजन के लिए सोनभद्र के ओमप्रकाश त्रिपाठी शामिल हैं।

'काशी वाराणसी विरासत फाउंडेशन' का तीसरा आयोजन 'भारत : साहित्य मीडिया महोत्सव' का तमिलनाडु की राजधानी चेन्नई में 12 नवंबर 2024 को तमिलनाडु के राज्यपाल महामहिम आर.एन. रवि द्वारा दीप प्रज्वलित करके उद्घाटन किया गया। तमिल, अंग्रेजी और हिंदी भाषा में अपने मिले-जुले उद्बोधन में फाउंडेशन के

इस आयोजन की सार्थकता का उल्लेख करते हुए राज्यपाल महोदय ने कहा कि भारत की विविधता में ही उसकी एकात्मकता निहित है। वह अलग-अलग भाषाओं, अलग-अलग राज्यों, अलग-अलग संस्कृतियों और अलग-अलग समुदायों, धर्मों में एक धड़कन की तरह रहता है। हमारा साहित्य हमारी इसी धड़कन को दिखाता है। उन्होंने कहा कि वाल्मीकि के रामायण, कंबन के रामचरित्रम और तुलसीदास के रामचरितमानस की आत्मा एक है जो संस्कृत से लेकर तमिल और हिन्दी तक फैली हुई है। उन्होंने कहा कि मौजूदा इंडिया तो एक भौगोलिक और राजनीतिक क्षेत्र के रूप में हमें आजादी के दिन प्राप्त हुआ है, लेकिन भारत तो हजारों साल प्राचीन है। राज्यपाल का

कहना था कि तमिलनाडु की धरती भक्ति की जननी है। भारत में साहित्य ने निरंतर भारतीयता का सृजन और पोषण किया है। भारत को पूरी तरह समझने के लिए हमें देश की तमाम भाषाओं और उसके साहित्य की ओर जाना होगा।

साहित्य अकादमी तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के विशेष सहयोग से आयोजित इस समारोह में राज्यपाल महोदय का सम्मान श्रीमती सुषमा अग्रवाल, सामाजिक कार्यकर्ता, दिल्ली एवं दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई के महासचिव गंगाधर द्वारा किया गया। मुख्य अतिथि द्वारा हिन्दी भाषा एवं साहित्य तथा पत्रकारिता की विशिष्ट सेवाओं के लिए 11 विभूतियों को सम्मान पत्र प्रदान किए गए।

उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष तथा काशी-वाराणसी विरासत फाउंडेशन के अध्यक्ष डॉ. रवींद्र किशोर सिन्हा ने इस अवसर पर वाराणसी में सुब्रमण्यम भारती का स्मारक एवं पुस्तकालय बनाए जाने का संकल्प व्यक्त किया। अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कि देश की हिन्दी-अंग्रेजी पत्रकारिता में तमिल साहित्यकारों और पत्रकारों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। यह योगदान चाहे वह 1857 से 1947 के स्वतंत्रता संग्राम का रहा हो या आजादी के बाद इमरजेंसी के दौर का हो, तमिल का योगदान अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने याद किया कि यदि काशी में वेद-पाठ के लिए किसी विद्वान को ढूँढना हो तो वह तमिल का ही मिलेगा। साहित्य सेवा यही है कि हम जानें कि दूसरी भाषा के साहित्य में क्या हो रहा है, यही सामाजिक समरसता को सुदृढ़ करेगा और आने वाली पीढ़ी को भी इसका लाभ मिलेगा।

इससे पूर्व साहित्यकारों का स्वागत उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के तत्कालिक निदेशक श्री आर.पी सिंह, आईएएस ने किया। समारोह को साहित्य अकादमी की उपाध्यक्ष प्रोफेसर कुमुद शर्मा, लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर आलोक राय, सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता भरत नागर, गांधी शांति प्रतिष्ठान बेंगलुरु के सचिव उडोपी कृष्ण ने भी संबोधित किया। धन्यवाद ज्ञापन शरद कुमार त्रिपाठी ने किया, जबकि मंच का गरिमा पूर्ण संचालन प्रोफेसर राम मोहन पाठक, कार्यकारी अध्यक्ष, फाउंडेशन ने किया।

महात्मा गांधी द्वारा 17 जून 1918 को स्थापित राष्ट्रीय महत्व की घोषित व ऐतिहासिक संस्था दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के दीक्षा मंडपम में यह तीन दिवसीय (12-13-14 नवंबर) महोत्सव आयोजित किया गया है, जिसमें 14 राज्यों से आए साहित्यकार, विद्वान, शिक्षाविद, पत्रकार एवं मीडिया कर्मी तथा गणयमान नागरिक भाग ले रहे हैं।

उद्घाटन समारोह में चेन्नई महोत्सव की स्मारिका 'साहित्य भारत' के लोकार्पण के साथ-साथ तीन अन्य पुस्तकों 'मीडिया : नए आयाम' (डॉ. किंशुक पाठक), 'चयनित कहानियाँ' (कमलेश भट्ट कमल) तथा 'तमिल की कहानियाँ' (डॉ. राजलक्ष्मी) का भी लोकार्पण राज्यपाल और मंचासीन अन्य अतिथियों द्वारा किया गया।

उद्घाटन समारोह के बाद प्रथम विचार सत्र 'लोक, लोकतंत्र और साहित्य : बदलते सरोकार' की अध्यक्षता प्रोफेसर कुमुद शर्मा की अध्यक्षता में संपन्न विचार गोष्ठी में प्रो. एस. वी.एस. एस. नारायण राजु (चेन्नई), डॉ. नीरज गुरुमकोंडा (दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा) ने भी अपने विचार रखे। सत्र संचालन डॉ. बी. संतोषी कुमारी ने किया। इस सत्र में दो कविता पुस्तकों 'ज्योतिर्मय' (डॉ. नीलम वर्मा) व 'यात्रा जारी है' (उषा किरण टिबड़ेवाल) का भी लोकार्पण किया गया।

भोजनोपरांत आयोजित सत्र में तमिल और अंग्रेजी के साहित्यकार मालन नारायणन से अशोक शास्त्री ने तो वरिष्ठ मीडिया कर्मी सिद्धार्थ शर्मा से डॉक्टर परमानंद मिश्रा ने संवाद किया। समारोह के अंतिम सत्र के रूप में प्रतिभागी कवियों ने काव्य पाठ किया। कवि-गोष्ठी की अध्यक्षता साहित्यकार डॉ. नीलम वर्मा (नई दिल्ली) ने तथा संचालन डॉ. संजीव पांडेय (मुम्बई) ने किया। काव्य पाठ करने वाले कवियों में सर्वश्री ओम प्रकाश त्रिपाठी (सोनभद्र, उत्तर प्रदेश), डॉ. अरुण कुमार वर्मा (झारखंड), रमेश (बंगलुरु), डॉ. सौम्या (बंगलुरु), डॉ. रीता कुमारी (बंगलुरु), डॉ. दीपाली (बंगलुरु), भारत भूषण (वाराणसी), अरविंद मिश्र हर्ष (वाराणसी) व सुश्री भुवनेश्वरी (बंगलुरु) शामिल थीं।

इस अवसर पर साहित्य अकादमी द्वारा हिंदी, तमिल, अंग्रेजी साहित्य की पुस्तकों की एक समृद्ध प्रदर्शनी भी लगाई गई।

महात्मा गाँधी द्वारा स्थापित तथा राष्ट्रीय महत्व की संस्था दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई के दीक्षाँत मंडपम् में 12 नवंबर 2024 को तमिलनाडु के राज्यपाल श्री आर.एन.रवि द्वारा उद्घाटित काशी-वाराणसी विरासत फाउंडेशन के 'भारत : साहित्य एवं मीडिया महोत्सव' चेन्नई के दूसरे दिन के विचार-सत्रों में भारतीय साहित्य और मीडिया तथा लोकतंत्र पर केंद्रित गहन विचार विमर्श किया गया। 'भारतीय साहित्य में भारतीयता के मूल्य' (साहित्य संचार की वैश्विक दशा और दिशा) शीर्षक पहले सत्र की अध्यक्षता करते हुए पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, भटिंडा के एसोसिएट प्रोफेसर (पत्रकारिता) डॉ. किंशुक पाठक ने मीडिया और साहित्य दोनों की लोकतंत्र में अपरिहार्यता पर बात करते हुए कहा कि साहित्य को लोक तक पहुँचाने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने

कहाकि दोनों ही समाज को चिंतन का धरातल देते हैं, जीवन को कैसे बेहतर बनाया जाए इसके बारे में भावभूमि तैयार करते हैं। इसलिए भाषा की गरिमा का ध्यान रखा जाना जरूरी है। इस सत्र के मुख्य वक्तव्य डॉ. रंजन सिंह ने दिया। इस सत्र के अन्य वक्ताओं में श्री जी.डी. दुबे, बसवराज बारकेर, डॉ. अनुराधा गोस्वामी, डॉ. शिवम उपाध्याय, डॉ. बी संतोषी कुमारी, डॉक्टर विनय कुमार सिन्हा, राजेश कुमार गौतम शामिल थे। इस सत्र का संचालन शोधार्थी सुश्री भावना गौड़ ने किया।

आज का दूसरा सत्र 'मीडिया, लोकतंत्र और साहित्य : चुनौतियाँ खतरे और दायित्व' विषय पर केन्द्रित था। सत्र की अध्यक्षता करते हुए डॉ. ऋषभदेव शर्मा ने सचेत किया और कहा कि देखना होगा कि हम अपने लोकतंत्र को कहीं भीड़ तंत्र में तो नहीं बदल रहे। मीडिया नैरेटिव सेट करता है, इस पर विमर्श की जरूरत है। अब 'वसुधैव कुटुंबकम' 'वसुधैव बाजारम' में बदल गया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया की जनता और सत्ता के बीच सेतु है साहित्य भी मीडिया भी। लेकिन अब पत्रकारिता मीडिया है और वह मिशन नहीं, प्रोफेशन है। ऐसे समय में निष्पक्ष बने रहने की कड़ी चुनौती मीडिया के सामने है। उसके मानदंड खिसक रहे हैं।

एक बात यह

– सोहनलाल द्विवेदी

सौ बातों की एक बात यह !

कुछ धरा न केवल कहने में, केवल भावों में बहने में;
करनी की भाषा में बोलो, सौ प्रातों का एक प्रात यह !
सौ बातों की एक बात यह ।

यदि कुछ कहा, किया कुछ तुमने, एक कर्म, स्वर बने न अपने;
इससे बढ़ दुर्भाग्य न कोई, सी रातों को एक रात यह !
सौ बातों की एक बात यह ।

हो सकता, जग तुम्हें न जाने, तुम्हीं तुम नहीं जो वह माने;
क्षमा कर सकोगे न स्वयं को, सौ घातों की एक घात यह !
सौ बातों की एक बात यह ।

चलो सत्य को लेकर सम्मुख, दुख भी चमक उठेंगे बन सुख;
तुम पर जीत ज्योति की होगी, सौ मातों की एक मात यह !
सौ बातों की एक बात यह ।

त्याग वहीं, अनुराग जहाँ है, त्याग जहाँ सौभाग्य वहाँ है;
अर्जन नहीं, विसर्जन निधि है, सौ पाँतों की एक पाँत यह !
सौ बातों की एक बात यह ।

साहित्य भारती

वर्ष:28, अंक-1, जनवरी-मार्च, 2025 पंजीयन संख्या- 65194/96

साहित्य भारती

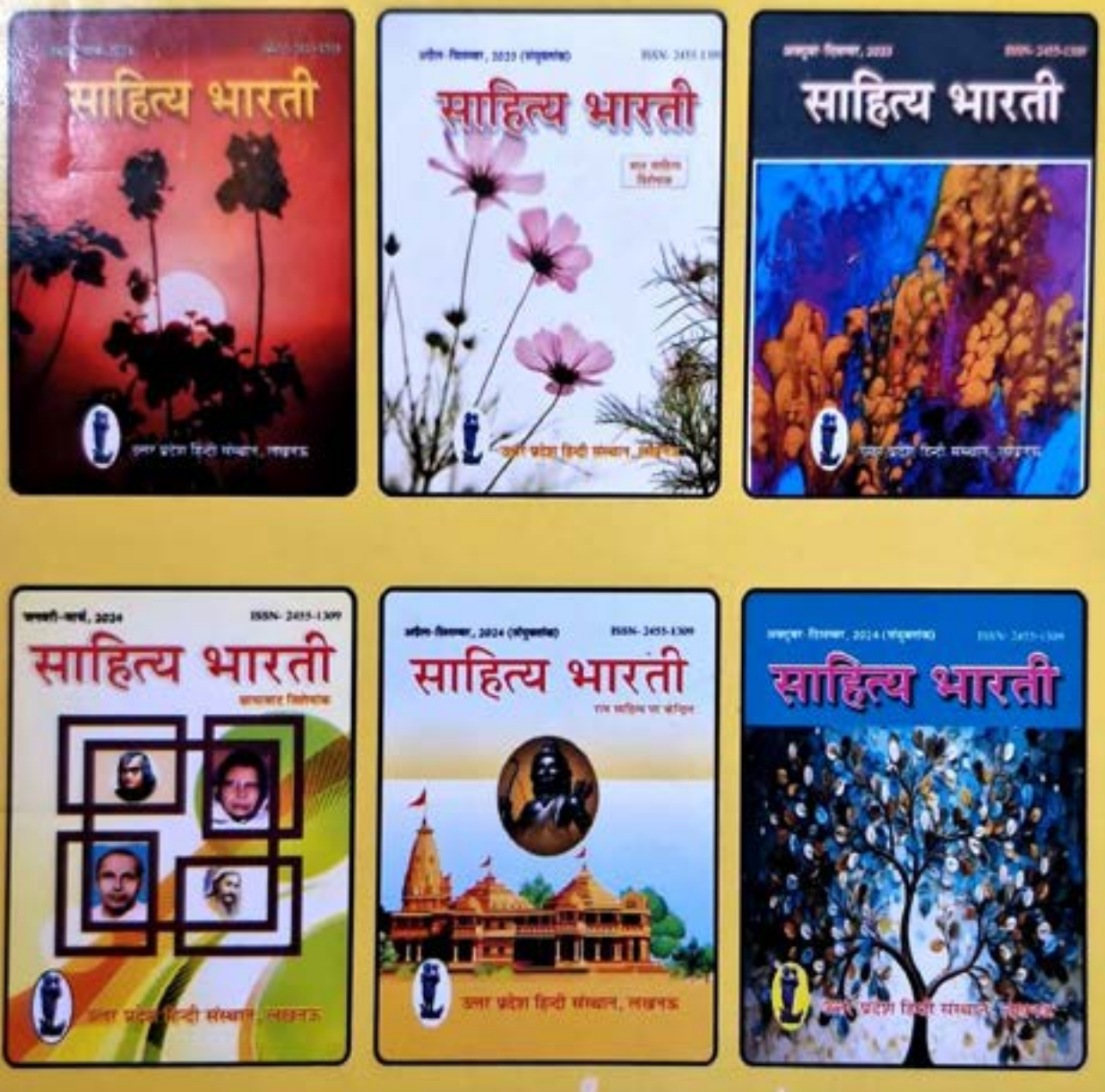

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं प्रबन्ध सम्पादक, निदेशक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा मौर्या इण्टरप्राइजेज, लखनऊ से मुद्रित तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, 6, महात्मा गांधी मार्ग, हजरतगंज, लखनऊ से प्रकाशित। सम्पादक-डॉ. अमिता दुबे

वेबसाइट : www.uphindisansthan.in ई-मेल: sahityabharti1976@gmail.com दूरभाष: 0522-2614470